इन्सान

एक आदर्श भारतीय मानव की साकार प्रतिमा

लेखक
यज्ञदत्त शर्मा
एम० ए० (हिन्दी), साहित्यरत्न

१९५१
आत्माराम एण्ड सन्स
पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक :—
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य चार रुपये
४)

मुद्रक:—
मदनलाल गुजराल
एलबियन प्रेस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रिय शर्मा जी,

श्री 'राकेश' जी ने आपका उपन्यास 'इन्सान' मुझे दिया था। पढ़ गया हूँ। आपने प्रकाशित होने के पूर्व ही इस पुस्तक के पढ़ लेने का अवसर दिया, इस कृपा के लिये अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

उपन्यास के सम्बन्ध में अपने विचार लिख रहा हूँ।

आपने अपने इस उपन्यास का बीज पंजाब के उस भयंकर उत्पात में रखा है जो भारतीय इतिहास का शायद सब से काला धब्बा है। आरम्भ में आपने इस काल का बड़ा ही रोमाञ्चकारी वर्णन किया है। आरम्भ का वर्णन बहुत सजीव हुआ है। उस लज्जाजनक उत्पात का वर्णन जब मैं पढ़ रहा था तो दो एक बार चित्त इतना विक्षुब्ध हुआ कि जी में आया कि पुस्तक बन्द कर दूँ।

रमेश और शान्ता तथा कमला और आज़ाद के चरित्र निस्सन्देह आपने बहुत आकर्षक चित्रित किये हैं। . . . . रमेश और शान्ता के मिलन के समय आपने मनोविवरणों का प्रदर्शन बड़े ही कौशल और सुन्दर ढंग से किया है।

मैं आपको इस सुन्दर रचना के लिये बधाई देता हूँ। आप में उपन्यासकार की प्रतिभा है, कथानक के सुकुमार स्थलों को पहिचानने की शक्ति है और पात्रों में आदर्श की प्रतिष्ठा करने की योग्यता है।

मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

काशी
२८-४-५१

आपका
हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक की अन्य रचनायें

१. दो पहलू	(उपन्यास)	३।।।)
२. ललिता	(उपन्यास)	१।।)
३. विचित्र त्याग	(उपन्यास)	२)
४. प्रेम-समाधि	(उपन्यास)	२।।)
५. अंतिम चरण	(उपन्यास)	६)
६. हिन्दी का संक्षिप्त साहित्य	(इतिहास)	१।।)
७. हिन्दी साहित्य का सांकेतिक इतिहास	(इतिहास)	२।।)
८. हिन्दी साहित्य आज के युग में	(समालोचना)	६)
९. प्रबन्ध-सागर	(१३४ निबन्ध)	४।।)

प्राप्ति-स्थान

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ६

आदरणीय गुरु,

डा० धीरेन्द्र वर्मा जी के चरणों में मेरा 'इन्सान' सादर स्वीकार हो।

यज्ञदत्त शर्मा

विषय सूची

पुस्तक के विषय में

'इन्सान' कहानी कहने के लिये नहीं आया। वह आया है आज के उलझे हुए वातावरण में अपना सुलझा हुआ मार्ग प्रस्तुत करने। उपन्यास का प्रारम्भ भारत-विभाजन से होता है और प्रारम्भ में उसी का चित्रण किया गया है। 'इन्सान' के प्रधान पात्र रमेश बाबू, शांता और आज़ाद भारत में आकर अपने-अपने कार्य पर जुट जाते हैं और फिर उपन्यास से विभाजन की काली छाया एक दम लुप्त हो जाती है। भारत विभाजन के काले पटल पर यदि कोई चमकदार और प्रकाशमान समस्या रही है तो वह यही है कि 'पुरुषार्थी' रो-रो कर अपनी करुण कहानी कहने के लिये नहीं बैठे बल्कि वह कर्मठता के पथ पर आरूढ़ होकर उन्नति की ओर अग्रसर हुए हैं। इस प्रकार कुछ आलोचक तथा मेरे सजीव पाठक इस प्रारम्भिक भारत-विभाजन के चित्रण को अनावश्यक भी समझ सकते हैं परन्तु बात वास्तव में यह नहीं है। उपन्यास आद्योपांत समस्या मूलक है और जिन समस्याओं का स्पष्टीकरण इसमें मैंने करने का प्रयत्न किया है उनका जन्म और विकास बहुत कुछ भारत-विभाजन पर ही अवलम्बित है। उदाहरण स्वरूप आज संसार के राजनीतिक विकास में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' जैसी प्रतिक्रियावादी संस्था का जन्म लेना, पंजाब में सिक्खों का साम्राज्य स्थापित करने की योजना बनाना इत्यादि ऐसी घटनाएं हैं जिनका भारत-विभाजन से अप्राथक्यीय सम्बन्ध है। फिर अराजकता का अवसर पाकर भारत में काम्यूनिस्ट पार्टी का वितंडावाद और तोड़-फोड़ की नीति भी इसी विभाजन के फल स्वरूप बलवती हुई। इसी अराजकता में काम्यूनिस्टों ने चीन में साम्राज्य स्थापित किया, बर्मा में विद्रोह किया और इन्डोनीशिया में चिंगारी सुलगाई। इसी लिये भारत की वर्तमान समस्याओं पर एक दृष्टि डालने के लिये यह मैंने आवश्यक समझा कि इस उपन्यास का प्रारम्भ भारत-विभाजन से ही करूं।

उपन्यास में जितने भी पात्र मैंने दिये हैं वह सब सच्चे हैं केवल नाम बदल कर उनका चित्रण किया गया है। मेरे कुछ पाठक उपन्यास को पढ़कर शायद यह भी अनुभव करें कि मैंने इस उपन्यास में काम्यूनिस्ट पार्टी का विरोध किया है परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। जहाँ तक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, मेरे उपन्यास का नायक रमेश स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है, जो मानवता का सच्चा प्रतीक है, और प्रत्येक मानव को प्रेम करता है। वह वीर है, साहसी है, कर्तव्य परायण है, योग्य है और उसमें कार्य कुशलता की पराकाष्ठा है। अन्य पात्रों के विषय में यहाँ विस्तार पूर्वक लिखना व्यर्थ ही है क्योंकि पात्रों के लिये तो मैंने उपन्यास ही लिखा

है। कहानी कहकर केवल दिल बहलाने के लिये मैं नहीं आया। मेरे पात्र चेतन अवस्था में रहते हैं, अवचेतन का प्रभाव उन पर यह मैं नहीं कहता कि परिस्थितियों में पड़कर नहीं होता परन्तु बुद्धि उनका साथ नहीं छोड़ती और वह स्वयं भी बुद्धि की कसौटी पर व्यक्त और अव्यक्त भावनाओं को कसने का प्रयत्न करते हैं। त्याग और सहनशीलता उन्हें जिस सभ्य धरातल पर ले आई है वहाँ से वह फिसलने वाले नहीं।

'इन्सान' आज के आदर्श भारतीय मानव का प्रतीक है जिसमें आदर्शवाद के लिये यथार्थवाद का गला नहीं घोटा गया और ना ही छिछोर यथार्थवाद को लेकर भारतीय आदर्शों की ही मिट्टी पिलीत की गई है।

विभाजन के समय भारत की सोई हुई दानव-प्रवृत्तियां किस प्रकार देश और विदेशी कुप्रभावों का बल पाकर जाग्रत हो उठीं और उनके हाथों में मानव किस प्रकार मदारी के बंदर की भांति नाचा इसका सजीव चित्रण इस उपन्यास में दिया गया है, राष्ट्रीय तथा सामाजिक उथल-पुथल के क्षेत्र में मानवता के अटल सिद्धांतों को लेकर 'इन्सान' का निर्माण किया है, सहानुभूति और सद्भावना के साथ भारत और पाकिस्तान के बिखरे हुए विस्तृत क्षेत्र में से यों ही कुछ सुशिक्षित और सभ्य पात्र उठा लिये हैं जिनका लक्ष्य हर सम्भव परिस्थिति में मानवता की रक्षा करना है। पारस्परिक भेद भाव और घृणा को आश्रय न देकर ऐसी विनाशक शक्तियों के प्रति विद्रोह किया गया है।

मेरा 'इन्सान' क्रांतिकारी है, प्रगतिशील है, परन्तु निर्माण के पथ पर, खंडहरों में पुष्पों के बीज बोकर नहीं, उद्यानों में लहलहाती हुई खेती उगा कर। बुद्धि की कसौटी पर कस कर वह न अविश्वास के सामने मस्तक झुकाता है और ना ही विदेशी प्रगतिवाद के हाथों की कठपुतली ही बन सकता है। उसका अपना मार्ग है और अपनी समस्याओं को सुलझाने के अपने रास्ते। वह सब की अच्छाइयों को अपनाकर अपने सांचे में ढालता है।

भारत के इस विशृंखल काल में मेरा 'इन्सान' भारतीय जीवन को शृंखलाबद्ध करने में समर्थ होगा—यह मेरा विश्वास है।

लेखक

इंसान

लाहौर पाकिस्तान में

(१)

लाहौर की गली गली और बाज़ार बाज़ार में मानव-रक्त से होली खेली जा रही थी। इंसान हैवानों पर विजय प्राप्त कर रहे थे। हिन्दुत्व और मुसलमानियत के नाम पर 'हर हर महादेव' और 'अल्लाह हो अकबर' के पवित्र नारे मानवता से गिरे हुए व्यक्ति स्वार्थ और अंग्रेजी शासन के अंतिम जाल में फँसकर इतने ऊंचे स्वर से लगा रहे थे कि सम्भवतः महमूद ग़ज़नवी और नादिरशाह के समय में भी कभी यह काण्ड देखने में न आया हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने ज़ौम में पागल था, दीवाना था। क अजीब दशा बन गई थी शहर की। धर्म का भूत मानवता के सिर पर चढ़ कर बोल रहा था और शासन की बागडोरें आ चुकी थीं शहर के छटे हुए गुंडों के हाथों में। अवारागर्दी का बोलबाला था। वही लोग जँवामर्दी का खम ठोक कर अपने अपने मुहल्लों के नायक बने हुए थे। निर्बलों की संपत्ति की रक्षा के लिये यह बन गये थे चौकीदार, धर्म के नाम पर, मज़हब के नाम पर। बिल्ली कर रही थी चूहों की रखवाली। चारों ओर आतंक छाया हुआ था। हिन्दुओं की बस्ती में मुसलमान और मुसलमानों की बस्ती में हिन्दू प्राणों को हथेली पर लेकर ही जा सकता था। यही कारण था कि मनुष्य कहे जा सकने वाले हिन्दुओं और मुसलमानों के भी सम्बन्ध आपस में विच्छेद हो गये थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बागडोरें ढीली पड़ चुकी थीं। शासन व्यवस्था का ढांचा टूटकर छिन्न-भिन्न हो चुका था।

अंत में वह दिन भी आगया जब भारत-पाकिस्तान के सीमा-कमीशन ने अपना निर्णय सुना दिया। निर्णय का सुनाना था कि भारत और पाकिस्तान में रक्त की नदियां बह गईं। मानव-दानव बन गया। निर्दयता पराकाष्ठा को पहुँच गई। दो दो और चार चार वर्ष के बच्चों को पैर पर पैर रखकर हत्यारे धर्म के पागल दीवानों ने चीर डाला। फूल से सुकमार मां के लालों को पिशाचों ने उठा उठाकर पृथ्वी पर इस प्रकार पटक दिया जैसे धोबी पत्थर पर मैले कपड़ों को छांटता है। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं को केशों से पकड़कर दीवारों में दे मारा। नादान और अनजान भारत के सपूतों को, भारत की भावी आशाओं को, भुनगों की भांति कुचल दिया गया, दल-मल दिया गया। निर्दयता का केवल यहीं पर

अंत नहीं था। नारी जाति का जो अपमान हुआ वह इतिहास में भारत और पाकिस्तान के लिये वह कलंक बनकर रह गया है कि जिसका काला दाग़ संभवतः युग-युग तक आने वाली पीढ़ियां अपने रक्त से धोकर भी न मिटा सकेंगी। भोली और सुकुमार बालिकाओं पर मनमाना बलात्कार हुआ, अत्याचार हुआ। बालिकाओं को अंग-भंग करके, हाथों को पीछे बांधकर, नंगी मर्यादा विहीन करके जुलूस निकाले गये। उन्हें देखकर दानवता अट्टहास कर रही थी, पिशाचिता मन-मग्न होकर खिलखिला रही थी, निर्लज्जता अपने पराक्रम पर पुलकायमान थी और मानवता बेचारी तो भयभीत होकर न जाने किस कोने में छुप गई थी? मानवता भयभीत थी दानवता के सम्मुख।

रात्रि का समय था, चारों ओर अंधकार ही अंधकार। शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था। बिजली के तार काट दिये गये थे, और कहीं पर भी प्रकाश की एक किरण दिखलाई नहीं दे रही थी। कभी कभी कहीं पर कुछ मशालें चमकती दिखलाई दे जाती थीं। रमेश बाबू अपने मकान की छत पर खड़े यह दृश्य देख रहे थे। तने में उन्होंने देखा कि वह मशालें एक मकान के पास पहुँचीं और थोड़ी ही देर पश्चात् उस मकान से चिंगारियां निकलने लगीं। रात्रि की स्तब्धता में एक भीषण चीत्कार हुआ और वह धीरे धीरे एक हुल्लड़बाज़ी में विलीन सा होने लगा। 'अल्लाह हो अकबर' के नारे लगे और उन्हीं के बीच धीमी धीमी चीख़ पुकारें सुनाई दीं।

रमेश बाबू कालेज के छात्र थे, एम० ए० के अंतिम वर्ष में पढ़ रहे थे। अनारकली बाज़ार में दसरी स्टोरी का एक कमरा उनके पास किराये पर था, उसी में वह-रहते थे। कुछ देर तक रमेश बाबू इस कांड को देखते रहे। मशाल वालों का दल उस जलने वाले मकान से आगे बढ़कर दूसरे मकान पर आया और थोड़ी ही देर में उस मकान से भी लपटें निकलने लगीं। कुछ समय तक रमेश बाबू सोचते रहे कि सम्भवतः अब भी पुलिस आकर इस काण्ड को रोकने का प्रयत्न करेगी परन्तु यह विचार व्यर्थ ही निकला। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा कि पुलिस वालों का एक दल भी उन्हीं गुंडों के साथ था और वह उन्हें उनके कार्य में प्रोत्साहन दे रहा था। यह देखकर रमेश बाबू के रोंगटे खड़े हो गये। उन्हें अचानक ध्यान आया कि हो न हो यही दशा आज समस्त शहर की हो। यह ध्यान आते ही उनके बदन में एक विद्युत सी दौड़ गई। सिर चकराने लगा और वह किंकर्त्तव्य-विमढ़ से वहां से चलने के लिये उद्यत हो गये। शहर की दशा तो कितने ही दिनों से बिगड़ी हुई थी। इसी लिये इधर उधर जाने में बहुत ध्यान पूर्वक जाना

होता था । रमेश बाबू ने सफ़ैद सिलवार पहनी और पहनी अपनी काली अचकन । सिर पर एक टर्किश कैप लगाई, जो पहिले से ही उनके बक्स में रखी हुई थी। फिर दिया सलाई के प्रकाश से शीशे के सामने खड़े होकर अपने ऊपर दृष्टि डाली । अब वह मुसलमान थे, उन्हें हिन्दू समझने का भ्रम किसी को नहीं हो सकता था । फिर उन्होंने अपने कमरे का द्वार खोला और धीरे धीरे सड़क पर उतर गये । नीचे उतर कर उस कमरे की ओर एक बार डबडबाई आँखों से देखा और फिर एक गहरी निश्वांस लेकर कमरे को नमस्कार किया । बिदा...... बिदा......बिदा......।

रमेश बाबू बड़ी सावधानी से पग आगे की ओर बढ़ा रहे थे । उनके हृदय में रह रह कर शांता की स्मृति जागृति हो रही थी, विचार रहे थे कि कहीं उनके पहुँचने से पूर्व ही वहां सब कुछ स्वाहा न हो चुका हो । मार्ग का दृश्य बड़ा विचित्र और भयानक था। जिधर भी दृष्टि जाती थी मकानों से अंगारे उछलते दिखलाई देते थे । कितने ही प्रकार की चीत्कार-ध्वनियां रमेश बाबू के कानों में गूंज कर रह जाती थीं। सड़क के बीच में और किनारों पर छुरों की नोकों के ग्रास बने मानव सिसक रहे थे, कराह रहे थे और कुछ पड़े थे अचेत मौन और शाँत । रमेश बाबू बड़ी ही निर्भीकता से आगे बढ़ रहे थे अपने को उन मशाल वाले शिकारी कुत्तों की दृष्टि से बचाते हुए। अचानक उनमें से किसी की दृष्टि उन पर पड़ ही जो गई; एक झुंड का झुंड गुंडों का उनकी ओर लपका परन्तु उनके वस्त्रों को देखकर एक दम ठिठक गया । उनमें से एक आगे बढ़ कर बोला, "मियां तुम कौन हो, और ऐसी रात में कहां जा रहे हो ?"

"मैं कौन हूँ यह तुम लोग मेरी शक्ल देख कर अंदाज़ा नहीं लगा सकते ? खैर यह वक्त इस तरह बर्बाद करने का नहीं है, यही दो चार दिन हैं । हमें जो कुछ करना है कर गुज़रना चाहिये। अभी अभी एक पाँच काफ़िरों का झुंड दाँई ओर वाली सड़क से गया है, तुम लोग अगर जल्दी से उनका पीछा कर सको तो उन्हें पकड़ सकते हो । उन लोगों के पास २०,०००रु० नक़द है, देर करने पर वे लोग लापता हो जायेंगे । अगर आप लोग मेरे इस काम को सँभाल लें तो मुझे दूसरे काम पर जाना है । वहाँ भी एक नौजवान इस्लामी-जाँबाज़ों का दस्ता मेरी राह देख रहा होगा ।" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक साहस के साथ कहा । उनकी मुद्रा का गाम्भीर्य उन धर्मांध व्यक्तियों को रमेश बाबू के धर्म के विषय में सशंकित न कर सका ।

रमेश बाबू की बात सुन कर एक काला मुश्टंडा, जो कि इन गुंडों का नायक प्रतीत होता था, आगे बढ़ा और रमेश बाबू की पीठ ठोक करो बोला,

"शाबास नौजवान ! तुम अपने काम पर जाओ, यहां का काम हम सँभाल लेंगे। उन काफ़िरों की क्या मजाल जो हमारे इस्लामी खूंखार पंजों से छूटकर जा सकें।" यह कहकर उन्होंने 'अल्लाह हो अकबर' का नारा लगाया और सब के सब दाँई ओर जाने वाली सड़क पर, जो कि रमेश बाबू ने बतलाई थी, पागलों की भांति बेतहाशा आंख मींचकर भाग लिये।

उनके कुछ दूर चले जाने पर रमेश बाबू ने निर्भीक-स्वांस ली और तीव्र गति के साथ अपने लक्ष्य की ओर चल दिये। मार्ग भयानक था, रात्रि के घोर अंधकार में कहीं पर बिजली की बत्ती का खोज नहीं था और फिर चारों ओर होने वाला हाहाकार और चीत्कार हृदय को दहला देता था। रमेश बाबू स्थिरता और गम्भीरता के साथ बराबर आगे बढ़ रहे थे। उनके हृदय में साहस था और शांता की प्रेम-स्मृतियाँ उनकी चाल में विद्युत की गति का संचार कर रही थीं। एक बार उन्हें ध्यान आया कि वह इस कठिन समय में आज़ाद से सहायता लें परन्तु आज़ाद के तो मुहल्ले में भी पहुँचना आज असम्भव था। सम्भवतः उसके मकान पर पहुँचने से पूर्व ही उनके बदन की बोटी २ उड़ा दी जाये और यदि वह आज़ाद के पास तक पहुँच भी जायें तब भी क्या आशा है कि उनका वह साथी आज भी मानवता के उन्हीं सिद्धांतों पर अटल होगा कि जिन पर रहने की रमेश बाबू उससे आशा रखते हैं। क्या इस्लामी-दीवानगी का भूत उसके सिर पर सवार नहीं हो गया होगा ?

कुछ विचारों की तन्मयता और अधिकतर शांता की चिन्ता में घबराये से रमेश बाबू हवा की गति से शाँता की कोठी की ओर बढ़ रहे थे। मन चाहता था कि वह किसी तरह उड़कर शाँता के पास पहुँच जाये। मार्ग में इधर उधर के भय-भीत दृश्यों से आँखें मींचे सिर को हथेली पर रखे, रमेश बाबू जा रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि आस पास में क्या हो रहा है ? जिस समय वह शाँता की कोठी के पास पहुँचे तो क्या देखते हैं कि चारों ओर लपटें ही लपटें दिखलाई दे रही हैं। कहीं-कहीं पर प्रबल चीत्कार भी सुनाई दे रहा था परन्तु ऐसे समय में उनसे कोई भी अनुमान लगाना असम्भव था। रमेश बाबू सीधे उस जलती हुई बस्ती में घुस गये और किसी प्रकार आग की लपटों को चीरते हुये उस कोठी पर पहुंच गये जहाँ शांता रहती थी।

कोठी का द्वार खुला पड़ा था। बरांडे की छत जल कर पृथ्वी पर गिर चुकी थी। इधर उधर की कोठरियां जल कर भस्म हो चुकी थीं। कहीं पर भी कोई पूरी वस्तु दिखलाई नहीं दे रही थी। रमेश बाबू ने पागल की भांति कोठी के

हॉल में घुस कर कई बार शांता शांता पुकारा परन्तु वहां पर निस्तब्धता छाई हुई थी और कहीं पर भी किसी जीवित व्यक्ति का खोज नहीं था। जलती ज्वाला के प्रकाश में रमेश बाबू ने शांता के वृद्ध पिता को छुरे का शिकार बना हुआ रक्त में लथ-पथ पड़ा देखा और पास ही पड़ा था उनका पुराना नौकर बिलासी। दोनों के शव से कुछ हटकर शांता की माता जी का शव पड़ा था और शाँता, शांता का कहीं पर भी पता नहीं था। रमेश बाबू का दिल बैठ गया। एक बार उन्होंने अपनी दृष्टि नीले आकाश पर डाली और जीवन को अंधकारमय पाया। रमेश बाबू के जीवन की प्रकाश-किरण का अब कहीं पर भी पता नहीं था। पैरों की गति स्थिर हो गई, सिर चकराने लगा और अन्त में वह एक क्षण के लिए माथे पर हाथ रखकर गिरे हुए मकान के एक पत्थर पर बैठ गए। इस समय चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। रात्रि के अंधकार में व्याप्त होकर रमेश बाबू के हृदय का अन्धकार समा गया, उसमें खो गया।

अभी बैठे एक ही क्षण हुआ होगा कि एक ओर से कुछ गुण्डों का गुल्म सा आता हुआ दिखलाई दिया। रमेश बाबू के निराश-हृदय में आया कि अब इस जीवन से क्या लाभ होगा? क्यों वह इस प्रकार छुप-छुप कर अपने जीवन को बचाकर मारे मारे फिरें। एक बार चाहा कि वह अपने को उन गुंडों के सुपुर्द करके कहें कि "लो! मानव-रक्त के प्यासे कुत्तो! यदि अब तक भी तुम्हारी प्यास न बुझी हो तो मेरा भी रक्त पी लो। सम्भवतः मेरा ही रक्त पीकर तुम्हारे हृदयों को कुछ शांति मिल सके। परन्तु साथ ही हृदय की एक वीर विचार-धारा ने इस निराशा को अपने शक्तिशाली थपेड़े से मार कर रमेश बाबू के मस्तिष्क से दूर भगा दिया। इस प्रकार मर जाना कायरता नहीं तो और क्या है? जीवन में उत्साह की एक विद्युत-तरंग सी दौड़ गई और वह कर्त्तव्यशील व्यक्ति की भाँति पत्थर से उठकर खड़े हो गए।

तब क्या उन्हें भी हिन्दू वीरों का संगठन करके इस अत्याचार का सामना करना चाहिये और इन धर्म के दीवानों का हृदय खोलकर सामना करना चाहिये? जिस प्रकार यह नीच हिन्दुओं को बिना अपराध मौत के घाट उतार रहे हैं उसी प्रकार इन पर भी हाथ साफ किया जाय और दिखला दिया जाय कि हमारी नसों का रक्त भी अभी ठंडा नहीं पड़ गया है। यह विचार आते ही रमेश बाबू के सीने में उभार आ गया और भुजदंड कुछ करने के लिए फड़क उठे।

फिर उनके मन में ध्यान आया कि क्या यह दशा केवल लाहौर की ही है? क्या केवल इसी नगर के सिर पर इस प्रकार की दानवता सवार है? क्या यह

मज़हब के नाम पर भारत की सभ्यता और मानवता को नष्ट करने वाले केवल लाहौर में ही आकर बस गए हैं ? इसी समय अचानक उनके मन में विचार आया कि लाहौर का अब भारत से कोई सम्बन्ध नहीं। यह पाकिस्तान का नगर है। यदि यह अपनी सभ्यता को खो बैठा है और यहां मानवता का ह्रास हो चुका है, तो क्यों मैं भी उसी भ्रष्ट-मार्ग पर चलकर भारत और अपने मस्तक पर कलंक का टीका लगाऊं। मैं भारत माता का सच्चा सपूत अपने आप को कभी कभी समझकर अभिमान से फूला नहीं समाता। फिर क्या आज मेरा यही कर्त्तव्य है कि मैं भी उसी कलङ्कित और अपमानित कार्य में अपने को जुटा दूं जिसकी कालिमा को आने वाले युग-युग तक पाकिस्तान न धो सकेगा ?

रमेश बाबू के चित्त में एक हलचल पैदा हो गई। हृदय एक क्षण में उड़कर भारत की सीमा में घुसने को लिए व्याकुल हो उठा। रमेश बाबू लाहौर छोड़कर निकल जाने के प्रयत्न में संलग्न हो गए। भांति भांति की अफवाहों को सुनकर उनका सिर चकरा रहा था। जब रमेश बाबू ने सुना कि भारत से आने वाली मुसलमान-शरणार्थियों की गाड़ी पर पूर्वी पंजाब में इस प्रकार हमले किये गए कि उसमें से अनेकों निरअपराध व्यक्ति मौत के घाट उतर गए तो उनका हृदय और भी प्रबल आकांक्षाओं के साथ भारत पहुँचने के लिए तड़पकर छटपटाने लगा।

(२)

आज आज़ाद को नींद नहीं आ रही थी। वह बिस्तर पर पड़ा बराबर कर-वटें बदल रहा था। भारत के विभाजन की उसके हृदय पर एक गहरी चोट थी; परन्तु फिर भी वह यह आशा रखता था कि यदि यह देश दो भी बन गए तब भी क्या हुआ ? दोनों में रहने वाले तो वही पुराने व्यक्ति हैं, जिनको पास रहते शता-ब्दियां व्यतीत हो चुकी हैं, जिनके दादे परदादे एक ही बस्ती के कुआनों और कब्रिस्तानों में लेटकर क्षार बन चुके हैं। उनका निर्माण एक ही मिट्टी और पानी से हुआ है। फिर क्यों भला उनमें यह कटु विद्वेष की भावना बनी रहेगी ?

इसी समय उनके बुजुर्ग नौकर ने नीचे से आकर आवाज़ देते हुए कहा—"हुजूर आज तो गज़ब हो गया ! खुदा जाने क्या होकर रहेगा ? पुलिस और फ़ौज दोनों बदमाश गुण्डों का साथ दे रही हैं। पास वाला हिन्दुओं का मुहल्ला गुण्डों ने जलाकर ख़ाक कर दिया और वहाँ से हाय-हाय की दर्दनाक चीख़-पुकार आ रही है। ज़रा छत पर चढ़कर देखिये, शहर में आफ़त मची हुई है।

हुजूर ! जिस शहर में जहांगीर जैसे रिआयापरवर शहंशाह का मक़बरा है वहीं पर यह जुल्म हो रहा है। शाहंशाह की रूह रो रही होगी इन मुसलमानों की काली करतूतों को देखकर।" बुजुर्ग की आवाज में एक ऐसा दर्द था कि मानो कोई राक्षस उनके अपने मकान और बाल-बच्चों को जलाकर ख़ाक कर रहा हो।

"क्या चारों ओर आग लगी हुई है ?" आज़ाद ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ ! जब से लाहौर के पाकिस्तान में आने की ख़बर मिली है उस समय से हिन्दुओं को यहाँ के गुण्डों ने गाजर मूली की तरह काटना शुरु कर दिया है। पुलिस और फ़ौज उन गुण्डों की सरदार बन बैठी है। लूटपाट करने में बराबर उनका हाथ बँटा रही है।" बहुत गम्भीरतापूर्वक बुजुर्ग ने उत्तर दिया।

"तब तो मुझे जाना ही होगा।" कहकर आज़ाद खड़ा हो गया। अपने अधूरे वस्त्र पहने और वह तुरन्त ज़ीने से नीचे उतर गया, बुजुर्ग नौकर "मालिक-मालिक, आका-आका" चिल्लाता हुआ रह गया परन्तु आज़ाद ने मानो कुछ सुना ही नहीं। वह विद्युत की गति से खटाखट करता हुआ ज़ीने से नीचे उतर गया और सीधा अपनी गैराज के पास पहुँच कर उसने मोटर बाहर निकाल ली।

मोटरकार एक क्षण में पौं-पौं करके हवा से बातें करने लगी और आज़ाद अपने इच्छित लक्ष्य पर पहुँच गया। बस्ती पर गुण्डों का साम्राज्य था। कितने ही शव पटरी पर इधर उधर पड़े थे और उन विशाल अट्टालिकाओं का सामान जो लूट से बचा था अग्नि देवता के हवाले किया जा रहा था। आज़ाद की कार सीधी शांता की कोठी पर पहुँच गई। कोठी चारों ओर से लुटेरों ने घेरी हुई थी। वरांडे और बग़ल के दो कमरों से आग की लपटें निकल रहीं थीं। कोठी के प्रधान द्वार टूट चुके थे। बहुत से बदमाश केवल माल असबाब लूट कर ले जाने में संलग्न थे। शांता के पिता छुरे के शिकार हो चुके थे और नौकर की एक मुशटण्डे से हाथापाई हो रही थी। आज़ाद के कार से उतरते ही एक बदमाश ने पीछे से आकर उस नौकर के पेट में छुरा भौंक दिया। वह भी लड़खड़ाता हुआ पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

"ख़बरदार बदमाशो" कार से उतरता हुआ आज़ाद बोला। "इस्लाम के नाम पर दाग़ लगाने वाले गुण्डो ! ठहरो मैं अभी तुम्हें मौत के घाट उतारता हूँ" आज़ाद के दोनों हाथों में दो रिवालवर थे और उसने दोनों से दो गोलियाँ इस प्रकार छोड़ीं कि दो बदमाश तड़प कर धराशाई हो गए। उनका गिरना था कि भीड़ काई की तरह फट गई और आज़ाद सावधानी से कोठी के अन्दर घुसता चला गया।

जलती हुई चिगारियों के प्रकाश में शांता ने आज़ाद को पहिचान लिया। "भैया आज़ाद! बचाओ! बचाओ! इन हत्यारों ने पिताजी को मार डाला।" इतना कहकर शाँता गतचेत सी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसी समय जलती हुई छत से एक भारी कड़ी गिरी और उसके आघात से वहीं पर शाँता की माता जी का प्राणांत हो गया। शाँता हिड़क-हिड़क कर रोने लगी। "पिताजी के साथ माताजी का भी आश्रय जाता रहा।" रोते हुए शाँता ने कहा।

"यह रोने का समय नहीं है शांता! धैर्य से काम लो! शीघ्रता करो! बाहर कार खड़ी है। अभी हमें रमेश की भी खबर लेनी है। खुदा जाने अनार-कली का क्या हाल होगा?" आज़ाद ने शांता को सँभालते हुए बहुत गम्भीरता-पूर्वक कहा।

रमेश बाबू का ध्यान आते ही शांता तुरन्त खड़ी हो गई। दोनों बाहर आकर कार में बैठ गए। अपना सर्वस्व खोकर भी शांता शांत थी, मानो सहन करने के लिए अभी और कुछ शेष रह गया है। कार बड़ी तीव्र गति के साथ चली जा रही थी। वायु-मंडल सांय-सांय कर रहा था। आज शहर के कोने २ में होली जलती दिखलाई दे रही थी। यह दानवता की होली थी मानवता के वक्षस्थल पर। आज़ाद का हृदय बैठा जा रहा था बार बार यह विचार करके कि 'जो इंसान नहीं बन सकते उन्हें अपने को मुसलमान कहने का क्या अधिकार है, हक है? धर्म के नाम पर यह स्वार्थपरता और बदमाशी का ढोंग रचा जा रहा है। इंसान अपनी दानवी आकांक्षाओं के वशीभूत होकर राक्षस बन गया है। ऐसी करतूतें करने पर पाकिस्तान पाकिस्तान न रहकर नापाकिस्तान बन जायेगा।' इस प्रकार विचारों की घोर उद्विग्नता में भी आज़ाद ने अपने को सँभाला और वह अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर हुआ।

शांता का सब कुछ समाप्त हो चुका। मां, बाप, धन-सम्पत्ति इस प्रकार चले गये मानो यह सब कुछ उसने स्वप्न में प्राप्त किये थे। अब वह थी निराधार, निराश्रित, इस संसार में अकेली अबला! भैय्या आज़ाद ने उन गुंडों से उसकी रक्षा की इसके लिये वह उसकी आभारी थी। उसके अंधकार पूर्ण जीवन में अब केवल एक ही प्रकाश-किरण की सम्भावना थी, रमेश बाबू के मिलन की सम्भावना। उस दृश्य का स्मरण करके उसका हृदय कांप जाता था कि जब उसके पिताजी अकेले वीर की भाँति सीना तानकर अपने मान-मर्यादा की रक्षा के लिये उन छुरेबाज़ों के सम्मुख डट गये थे। फिर अचानक उसे ध्यान आया

कि कहीं अनारकली में गुंडों का इसी प्रकार साम्राज्य न छाया हुआ हो ? यदि ऐसा हुआ होगा तो क्या रमेश बाबू ने डट कर उनका सामना न किया होगा ? इसी प्रकार कार चली जा रही थी, और साथ-साथ आज़ाद और शांता के मनों की विचारावलियां भी अबाध रूप से प्रवाहित हो रही थीं ?

"अब कितनी देर है अनारकली पहुँचने में ?" घबराई और भर्राई सी आवाज़ में शांता ने पूछा।

"बस हम लोग अब पहुँचने ही वाले हैं।" गम्भीरता पूर्वक आज़ाद ने उत्तर दिया।

फिर दोनों मौन हो गये और अपनी अपनी विचार-धाराओं में बहने लगे। आखिर अनारकली का बाज़ार आ गया और कार जाकर रमेश बाबू के कमरे पर चढ़ने वाले ज़ीने के सामने रुक गई। ज़ीना खुला पड़ा था। दोनों तीव्र-गति के साथ ज़ीने पर चढ़ गये। ऊपर कमरे का सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। एक ओर किताबों का ढेर पड़ा धीरे-धीरे सुलग रहा था और दूसरी ओर फ़रनीचर का ढेर। बिस्तर इत्यादि का कहीं पर भी पता नहीं था। एक कोने में एक टूटे फ्रेम से निकला हुआ एक फ़ोटो-चित्र पड़ा था। आज़ाद ने धीरे से हाथ बढ़ा कर उस फ़ोटो-चित्र को उठाया। वह वही था जिसे एक दिन तीनों ने अनारकली के ही मोहन स्टूडियोज़ में खिंचवा कर तय्यार कराया था। एक ओर शांता, बीच में रमेश बाबू और तीसरा आज़ाद स्वयं था। रमेश बाबू का वहां पर पता नहीं था। निराश होकर दोनों कमरे से नीचे उतर आये।

शांता का मन पहले से भी अधिक खिन्न होकर अनेकों प्रकार के संकल्प-विकल्पों में चकरा गया। उसके जीवन का यह अंतिम आश्रय भी आज इस कठिन समय में विधाता ने उससे छीन लिया। आज़ाद के अनेकों प्रकार आश्वासन देने पर भी शांता अपनी विह्वलता को शांत न कर सकी। उसकी आंखों से बहने वाली अश्रुओं की धारा किसी प्रकार भी बन्द नहीं हो रही थी। वह कितनी ही देर तक निरंतर रोती रही कि सम्भवतः रोने से ही हृदय का भार कुछ हल्का हो जाये सम्भवतः यह विचार कर।

"अब तो पत्थर का हृदय बनाना होगा बहिन ! पत्थर का नहीं बल्कि फ़ौलाद का। रोना तुम जैसी साहसी वीर देवियों को शोभा नहीं देता।" आज़ाद ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"परन्तु भय्या ! करूँ भी क्या ? मेरे ऊपर तो आपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा। आज संसार मेरे लिये एक क्षण में अंधकार पूर्ण हो गया। क्या

करूँ ? तुम ही बताओ ! किधर जाऊँ ? तुम ही कहो ! किसका आश्रय लूँ ? मेरा सब कुछ लुट चुका। जिस आशा पर हृदय के सब घावों को दबा कर पीड़ा को भुला देने का प्रयास करने चली थी वह भी स्वप्न हो गई..." कहते कहते शांता का गला रुँध गया और वह अब रो भी न सकी।

"बहिन ! आश्रय ! आश्रय बस एक खुदा का है और किसी का नहीं। जब तक मेरी देह में प्राण बाकी हैं तेरा कोई बाल भी बांका न कर सकेगा। तेरी मान-मर्यादा के लिये मैं अपने प्राणों की बाज़ी लगा दूँगा और मैं तुझे यकीन दिलाता हूँ कि रमेश भय्या अवश्य कहीं पर जीवित हैं। यदि खुदा ने साथ दिया तो एक न एक दिन मैं अवश्य उन्हें खोज कर तेरे सामने ला खड़ा करूँगा। अब तू मेरे साथ चल।" शांता को साहस दिलाते हुए स्वाभिमान और विश्वास के साथ आज़ाद ने कहा।

"परन्तु कहां ?" शांता ने भयभीत होकर पूछा।

"मेरे घर, और कहां ?" निर्भीकता पूर्वक सीना उभार कर आज़ाद बोला।

"नहीं भय्या ! नहीं ! यह नहीं होगा। मैं तुम्हारे सर्वनाश का कारण नहीं बनूँगी। आज की दुनियां दीवानी हो रही है। मानव दानव बन चुका है। उचित और अनुचित का अनुमान लगाने का मस्तिष्क इन गुंडे अवारा बद-माशों के पास कहां ? मुझे तुम्हारे साथ देख कर यह तुम्हारे भी प्राणों के ग्राहक बन जायेंगे।" बहुत स्थिरता के साथ शांता ने नेत्रों में आँसू भर कर कहा, "यह मैं नहीं करूँगी, नहीं करूँगी।"

"मेरे प्राणों के !" वीरता पूर्वक आज़ाद ने दांत किटकिटाते हुए कड़क कर अपनी दोनों जेबों से दो रिवालवर निकालते हुए कहा, "एक-एक बदमाश के लिये मेरी एक-एक गोली काफ़ी होगी और आख़िरी दो गोलियां मेरे और तुम्हारे लिये।" आज़ाद का मुख-मंडल दमक रहा था। केवल आज़ाद का मुख देखकर शांता के हृदय में पैदा होने वाली समस्त मुसलमान-जाति के प्रति ग्लानि और घृणा न जाने किस समय काफ़ूर हो गई। मां बाप की मृत्यु और धन सम्पत्ति का बलिदान सब इस मानवता के सामने हेच हो गये, तुच्छ हो गये। उसने आज़ाद के मुख-मंडल पर गांधी, जवाहर और आज़ाद की कांति देखी। मानवता की वह साक्षात प्रतिमा देखी जिसके सामने जाति-भेद भयभीत होकर कायरता से पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ था।

"नहीं भय्या ! नहीं ! मुझे अपनी ओर से तुम्हारे साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं। आपत्ति पड़ने पर प्राणों का मोह भी मैं हँसते-हँसते त्यागने की

क्षमता रखती हूँ। परन्तु तुम्हारे अनमोल प्राणों को इस प्रकार नष्ट होता मैं नहीं देख सकती। तुम्हारे विचारों के व्यक्ति उंगलियों पर ही गिने जा सकते हैं। आज पाकिस्तान को आवश्यकता है तुम जैसे नवयुवकों की। यदि तुम जीवत रहे तो न मालूम मुझ जैसी कितनी अबलाओं की रक्षा तुम कर सकोगे। मैं तुम्हारी शक्ति केवल अपने तक ही बांध कर सीमित नहीं कर देना चाहती। कर्तव्य तुम्हें पुकार रहा है। मुझे तुम डी० ए० वी० कॉलेज के शरणार्थी-कैम्प में पहुँचा दो। जो सेवा मुझ से बन पड़ेगी मैं वहीं पर रहकर करूँगी। जितने दिन यहाँ पर रहना होगा तुम से भेंट हुआ करेगी।" शांता ने एक निश्चित विचार प्रकट करते हुए गम्भीरता पूर्वक कहा।

"जैसी तुम्हारी इच्छा बहिन!" मन भारी करते हुए आज़ाद ने कहा, "परन्तु किसी भी मुसीबत में, किसी भी आपत्ति में जब तक तुम पाकिस्तान की सीमा में रहो, मुझे न भूल जाना। बिना भय, बिना संकोच यदि आधी रात को भी याद करोगी तो मुझे अपने पास पाओगी।" निर्भीक स्वर में आज़ाद बोला।

"तुम से भी भला डरूँगी भय्या! तुम से भी संकोच करूँगी।" कहते हुए शांता की आंखें डबडबा आईं। "अब शीघ्रता करो, समय बड़ा कठिन है। पुलिस और फ़ौज भी अपने कर्तव्यों को तिलाञ्जलि दे चुकी हैं। वह भी सोच रहे हैं कि इस अराजकता में जितना भी लूटमार का माल हाथ लग सके, घर भर लिये जायें। दुनियां भर के बदमाश आज धर्म के ठेकेदार बन कर मानवता का गला घोंट रहे हैं। तुमको रोकना है इस बढ़ती हुई द्वेश की ज्वाला को और मुझे विश्वास है कि तुम रोक सकोगे।" हृदय में एक विश्वास लेकर शांता ने स्वाभिमान पूर्वक कहा।

"मैं प्रयत्न करूँगा बहिन! और आज से अपना जीवन इसी कार्य के अर्पण कर दूँगा। लो चलो अब तुम्हें डी० ए० वी० कॉलेज छोड़ आऊँ, फिर मुझे शहर की दशा देखनी होगी।" आज़ाद स्थिरता के साथ बोला।

कार डी० ए० वी० कालेज की ओर जा रही थी। मार्ग में एक मकान पर कुछ बदमाशों की भीड़ लगी हुई थी और वह उसके दरवाजे को तोड़ना चाहते थे। भीड़ में कई आदमियों के हाथों में छुरे थे और उस मकान के अन्दर वाले प्राणियों को मौत के घाट उतारने के लिये दीवानों की तरह बड़ी बहादुरी से अपने भुजदंडों को थपथपा रहे थे।

यह दृश्य आज़ाद न देख सका। उसने कार रोकी और कड़क कर बोला, "इस्लाम के क को! भाग जाओ! वरना अभी सब को ज़मीन पर बिछा

दूँगा।" कहता हुआ आज़ाद उस भीड़ की तरफ़ अपने दोनों हाथों में दो रिवालवर लिये बढ़ा। भीड़ भाग खड़ी हुई परन्तु एक गुंडा बगली काट कर हाथ में छुरा लिये आज़ाद की तरफ़ तेज़ी से लपका। शांता अब शांत न रह सकी। वह शीघ्र कार पर से उतर ली और मोटर का हैंडिल उसने अपने हाथ में सँभाल लिया। ज्यों ही वह छुरा लिये हुए गुंडा-व्यक्ति आज़ाद की तरफ़ बढ़ा, शांता ने कसकर हैंडिल उसकी खोपड़ी पर मारा और वह लड़खड़ा कर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

आज़ाद ने यह कांड घूम कर देखा तो उसका हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठा। वह आनंद विभोर होकर बोला, "शाबाश शांता, शाबाश, तुमने खूब कमाल किया।"

द्वार के अन्दर वाले व्यक्ति यह सब देख रहे थे परन्तु फिर भी आज़ाद शक्ल से मुसलमान ही प्रतीत होता था; इसलिए फाटक खोलने का साहस नहीं हो रहा था। अब उसके मुंह से "शाबाश शांता" शब्द सुनकर उनमें साहस आया और उन्होंने द्वार खोल दिये। उसमें से दो लड़कियां और एक लड़का घबराये हुए बाहर निकले। एक सूटकेस उनके हाथ में था शायद यही उनकी साथ ले चल सकने वाली सम्पत्ति होगी। समय कुछ पूछने का नहीं था। उन्हें भी कार में ही आज़ाद ने बिटला लिया और कार फिर तीव्रगति से चलने लगी।

सब को डी० ए० वी० कालेज में सुरक्षा के साथ पहुँचा कर आज़ाद अपने घर आया। घर पर उसका वृद्ध नौकर चिंता-निमग्न बैठा था। रमेश बाबू के न मिलने का आज़ाद के दिल पर बहुत बड़ा आघात था और उसका विचार न जाने कहां कहां जा रहे थे। वह सोच रहा था कि 'यदि रमेश बाबू को गुन्डों ने मार डाला होता तो कोई कारण नहीं था कि वह लोग उसके शव को भी उठाकर अपने साथ ले गये होते। फिर वहां पर रक्त की एक बूंद भी कहीं दिखलाई नहीं दे रही थी। रही बात सामान की, सो सामान वह स्वयँ ही छोड़ गये होंगे।' इस प्रकार विचार कर आज़ाद ने अपने मन को किसी प्रकार सांत्वना दी।

(३)

शांता की तरफ़ से निराश होकर रमेश बाबू लाहौर—स्टेशन की तरफ़ चल दिये। स्टेशन की दशा बिलकुल विचित्र थी। आदमियों के शव इधर-उधर इस प्रकार पड़े थे मानो भंगियों ने बीमारी फैलाने वाले कुत्ते बिल्लियों को ज़हर की गोलियां खिला दी हों। स्टेशन पर सन्नाटा था। हिन्दू नाम की कोई चीज़ दिखलाई नहीं देती थी। साथ ही शरीफ़ मुसलमानों की भी वहां कमी थी। हर इंसान

जो भी वहां जाता था, उसके मुख पर मुर्दनी के चिह्न दिखलाई दे रहे थे। कोई अपने किसी पारिवारिक-सम्बन्धी के लिये चिंतित था तो कोई किसी के लिये। किसी की बहिन दिल्ली में थी तो किसी का भाई अमृतसर में। किसी की भाभी अम्बाले में थी तो किसी का सारा परिवार का परिवार ही सहारनपुर में फँसा हुआ था। सब परेशान थे इस बलाये नागहानी से और एक शरीफ़ सा वृद्ध मुसलमान जी भर कर कोस रहा था पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के विभाजन को। "अंगरेज़ जाता जाता भी चाल खेल गया! आख़िर यह खून खराबा करा कर ही उसने दम लिया। लेकिन कितने पागल हैं यह दीवाने भी। खामखां के लिये एक तूफ़ान बर्पा कर दिया है। अब याद आता है उस बूढे गांधी का कहना। उसने कितना गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाया था कि हिन्दूस्तान को टुकड़े होने से बचाओ। तब पाकिस्तान-पाकिस्तान के भूत ने हम लोगों के दिमाग़ खराब कर दिये थे। आज यह सब अपनी ही उस नासमझी का मज़ा चखा जा रहा है। परन्तु क्या किया जाये? मियां होना है वही जो मंजूरे खुदा होना है, लाख करे इंसान तो क्या होना है?" यह बात रमेश बाबू के सामने उस वृद्ध ने बहुत दुखी मन से कही। रमेश बाबू उस वृद्ध व्यक्ति की हां में हां मिलाते हुये बोले।

"यही बात है बुज़र्गवार! बिलकुल यही बात है। खुदगर्ज़ लोगों का मज़ा हो रहा है और इज्ज़तदार आदमी तो कहीं के भी नहीं रहे। यहां हम लोग चन्द हिन्दुओं को मार कर, उन्हें बेइज्ज़त करके, उनका धन माल लूटकर अपने मन में खुश हो रहे हैं; लेकिन हमें यह नहीं मालूम कि अभी छै करोड़ मुसलमान हिन्दुस्तान में पड़े हैं। इस पाकिस्तान ने उन बेचारों को तो तबाह ही करके रख दिया। भला उनके जान-माल की हिफ़ाज़त अब यह पाकिस्तान वहां जाकर कैसे करेगा? वहां मुसलमानों के हकूकों को मुस्लिमलीग कैसे बचायेगी?" कुछ क्रोध सा दिखलाकर रमेश बाबू ने कहा।

"यही बात है बेटा! कई रोज़ से मेरा दिमाग़ परेशान है। समझ नहीं आता क्या करूं? अभी अभी मेरे सामने स्टेशन पर आते हुए एक हिन्दू नौजवान को चन्द गुंडों ने खत्म कर दिया। मेरे दिलपर ऐसा धक्का लगा मानो कि किसी पाजी ने मेरे इकलौते बेटे के पेट में छुरा भौंक दिया हो। लेकिन मैं करता क्या? ज़ईफ़ आदमी ठहरा और फिर वह थे दस पन्द्रह। खुदा की क़सम खाकर कहता हूँ कि उस वक्त जी चाहता था कि उन हरामज़ादों को कच्चा ही चबा जाता; लेकिन........" बुज़र्गवार दांत पीस कर रह गये।

रमेश बाबू के दुखी हृदय को इस वृद्ध से बातें करके कुछ सांत्वना मिली।

उन्हें विश्वास हुआ कि अभी इंसानियत का बिलकुल ह्रास नहीं हुआ है। मानवता अभी सिसक रही है और यह सब कुछ जो हो रहा है यह एक तूफ़ानी पागलपन है, जो स्थाई न होकर अस्थाई है।

"तुम्हें कहां जाना है बेटा ?" उस ज़ईफ़ ने पूछा।

"जाना तो बहुत दूर है अब्बा! लेकिन जाया किस तरह जाये, अभी तक इसी शशोपंज में हूँ। कुछ अक्ल काम नहीं कर रही। मेरा घर बार सब कुछ दिल्ली में है। मेरे तो बहन, भाई, चचा, ताया सब वहां हैं, दिल उनसे मिलने के लिये ऐसा छटपटा रहा है कि एक लहमे में वहां पहुँच कर उनकी खबर ले लूं लेकिन यह हो किस प्रकार ? पास इतना रुपया नहीं कि हवाई जहाज़ में जा सकूं और गाड़ी ? गाड़ी पर जाना ख़तरनाक है। सुना है कि जिस तरह रेल से जाने में पाकिस्तान की सरहद में हिन्दू के लिये जान का ख़तरा है उसी तरह उधर पहुँच कर हम मुसलमानों के लिये शामत है।" रमेश बाबू बोले।

"यही सुना है बेटा ? मुझे भी दिल्ली ही जाना है। चलो एक से दो होगये। बेटा यह गुंडे लोग तो स्वार्थ के लिये हिन्दुओं को मार रहे हैं। मज़हब इनका बहाना है। लूटने में तो यह मुसलमानों को भी मारने से नहीं हिचकिचाते। एक बदमाश मेरा ही सूटकेस छीनकर भाग गया।" परेशानी में ज़ईफ़ ने कहा।

"आपका ?" बड़े आश्चर्य से रमेश बाबू ने पूछा।

"हां मेरा।" बज़ुर्गवार बहुत क्रोध में बोले।

"और आपकी इस लम्बी सुफ़ैद दाढ़ी का भी उस बेईमान ने कोई ख़याल नहीं किया। खुदा की पनाह, खुदा की पनाह।" कहते कहते रमेश बाबू चुप हो कर गम्भीर हो गये

इसके पश्चात् दोनों कुछ देर तक चुप चाप बैठे रहे। थोड़ी देर मौन रहने के पश्चात् बज़ुर्गवार फिर बोले "अच्छा बेटा अगर हम लोग रेल से ही चलें तो क्या करना होगा ?"

"जान को हथेली पर रखकर चलना होगा बुज़ुर्गवार! पाकिस्तान की सरहद तक तो कोई ख़तरे का सामना नहीं करना होगा। हां उधर पहुँचकर ज़रूर मुसीबत है। भेष बदलने पर भी काम चल सकता है। लेकिन......" कहते हुए रमेश बाबू रुक गये।

"लेकिन क्या बेटा ?" घबराई सी आवाज़ में ज़ईफ़ ने पूछा।

"मैंने सुना है कि जिस पर उन्हें शक हो जाता है। वह लोग उसकी पूरी पूरी जांच करते हैं। पूरी जांच से सब पता चल जाता है और फिर

आपके मुँह पर तो इस्लामी साइनबोर्ड लगा हुआ है डाड़ी का। यह तो दूर से ही बुलावा दे डालेगा उन पाजियों को।" रमेश बाबू बहुत संजीगदी से यह सब कुछ कह रहे थे।

"तब फिर मुझे क्या करना होगा बेटा ?" ज़ईफ़ ने बहुत गम्भीरता पूर्वक पूछा। "यह वहीं चलकर सोच विचार करेंगे बज़ुर्गवार। यहां इस तरह की बातें न कीजिये। हवा के भी कान हैं। हो सकता है कि यहां पर हमारी इस तरह की बातें करने पर किसी को कुछ शक पैदा होने लगे और परेशानी पैदा हो जाये।" रमेश बाबू के दिल का चोर कांप रहा था। इस लिये उनका इस विषय पर अधिक बातें करने को मन नहीं होता था।

"खुदा खैर करे। यह क्या कहते हो बेटा ? क्या यहां पर हमारे मुसलमान होने पर भी शक किया जा सकता है ?" बहुत घबराकर बुज़ुर्गवार ने रमेश बाबू से पूछा।

"क्यों नहीं ? कोई चीज़ नामुमकिन नहीं है। हो सकता है कि अभी चन्द गुंडे यहां आकर आपसे और मुझसे सलवारें खोलने के लिये कहें। अभी अभी आपने स्टेशन के उस सिरे पर नहीं देखा, क्या हो रहा था ?" कहते कहते रमेश बाबू चुप हो गये। वह इस मामले को अधिक तूल नहीं देना चाहते थे और ना ही इस विषय पर अधिक बातचीत ही करना उचित समझते थे।

एक गाड़ी दस बज कर पन्द्रह मिनट पर छूटने वाली थी उसी से दोनों लोग सवार हो लिये और एक ही डिब्बे में दोनों सटकर बैठ गये। डिब्बे में सभी मुसलमान थे। चलती गाड़ी में न जाने कहां से दो आफ़त के मारे हिंदू भी आकर अचानक चढ़ गये। बेचारे कांप रहे थे भय से। उन्हें तमाम डिब्बा यम दूतों से भरा हुआ दिखलाई दे रहा था। किसी प्रकार वह अपने प्राण बचाकर भाग जाना चाहते थे। गाड़ी चल पड़ी और एक गुंडे ने सब के सामने उनमें से एक को गला पकड़ कर ऊपर उठा लिया। समस्त डिब्बा सन्नाटे में था।

"पटक दो काफ़िर को गाड़ी से बाहर।" एक गुंडे ने कड़क कर कहा।

"बस एक छुरा काफ़ी होगा इस बदमाश के लिये।" दूसरी आवाज़ आई।

"भाग जाना चाहता है, हरामज़ादा। इसे मालूम नहीं कि पाकिस्तान से एक भी हिन्दू बचकर नहीं निकल सकता।" तीसरी आवाज़ आई।

"यहीं पर दफ़ना दिये जायेंगे, यहीं पर।" चौथे ने कहा।

"आखिर बन के रहा पाकिस्तान, मिट के रहा हिन्दुस्तान। फेंक दो उठाकर गाड़ी से बाहर, नाहक़ देर कर रहे हो ?" पांचवें ने कहा।

"क्यों ख़ामख्वा के लिये इस ग़रीब के खून से हाथ रँगते हो ? क्या मिलेगा तुम्हें ?" आख़िर एक आवाज़ उनके पक्ष में भी एक कोने से आई।

"अच्छा चलो इनके नाक कान काटकर छोड़ दो।" एक ने मखौल में हँस कर कहा।

रमेश बाबू चुप थे और बुज़ुर्गवार तो खून का घूंट ही पीकर रह गये। उनकी आंखों में खून उतर रहा था परन्तु यहां पर उनका वश भी भला क्या चल सकता था ?

"अरे छोड़ दो यार नाचीज़ को मारकर क्या लोगे ?" फिर किसी ने कहा। इसी प्रकार की कुछ और भी आवाजें आईं परन्तु उस गुंडे पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, मानो कहने वाले व्यर्थ के लिये अपनी अपनी बकवास कर रहे थे। न उनके समर्थन से उसका कोई सम्बन्ध था और न उनके विपरीत कहने से। वह अपने कार्य में संलग्न था। उसने पहले उसकी ख़ाना तलाशी ली। जो रुपया जेबों से निकला उसे अपनी जेबों के हवाले किया और फिर लापरवाही से उठा कर उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया। यही दशा दूसरे की भी हुई। सबकी नज़रों के सामने दो जीते जागते इन्सान इस प्रकार गाड़ी से बाहर फेंक दिये गये कि मानो दो मिट्टी के व्यर्थ ढेले हों, जिनके जीवन का कोई मूल्य न हो, जिनमें व्यर्थ के लिये भगवान ने जान डाली थी।

गाड़ी बराबर आगे बढ़ती चली गई। उन दो आदमियों के गिर जाने से उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह बराबर अपनी तीव्र गति से चल रही थी। रमेश बाबू के दिल में एक तूफ़ान उठा और वह उसको शर्बत के घूंट की तरह पी गये, एक कायर की भांति भी उसे कहा जा सकता है परन्तु वीरता का अर्थ भी वहां पर मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वह जा रहे थे इन्सानियत की उस आवाज़ की रक्षा के लिये जो दूर हिन्दुस्तान में उन्हें पुकार रही थी। गाड़ी की खटाखट के साथ रमेश बाबू के हृदय की धड़कन मिल रही थी। उन का वेश उनका साथ दे रहा था और फिर वह बैठे हुए थे उस ज़ईफ़ के साथ जिसे वह अब्बा कहकर सम्बोधित करते थे। इसीलिये किसी को भी उनके विषय में शंका करने का कारण नहीं था। सभी लोग उन्हें बाप बेटा समझने के भ्रम में थे।

डिब्बे में अनेकों प्रकार की चर्चा चल रही थी। कुछ लोग कह रहे थे कि पाकिस्तान प्राप्त करके मुसलमानों ने मोर्चा मार लिया। इस्लाम की हकूमत क़ायम करदी। परन्तु अधिकतर लोग इसके विपरीत ही थे। एक नौजवान जो

कि रमेश बाबू के दूसरी ओर वाली सीट पर बैठा था यकायक कह उठा, "मैं कहता हूँ क्या हासिल कर लिया मुसलमानों ने ? सिवाये बर्बादी के मुझे तो कुछ नज़र नहीं आता।"

"क्यों ? क्या बर्बादी है इसमें मुसलमानों की ?" दूसरे साहेब बोले।

"बर्बादी की बात पूछते हो तो सुनो, तमाम हिन्दोस्तान के मुसलमानों के हक़ूक़ों का हमने खात्मा कर लिया पाकिस्तान लेकर। पाकिस्तान के सभी हिन्दू हिन्दुस्तान में आकर रह सकते हैं लेकिन अगर कभी हिन्दुस्तान के सभी मुसलमानों को पाकिस्तान में आना पड़ा तो जानते हो क्या हालत होगी ? दाने दाने के लिये मुहताज हो जायेंगे। न पहिनने के लिये कपड़ा होगा, न खाने के लिये खाना और न रहने के लिये मकान। आपको पाकिस्तान मिलने के मानी हैं हिन्दुस्तान के मुसलमानों के इन्सानी हक़ूक़ों का भी छिन जाना। मैं पूछता हूँ क्या अब वहां के मुसलमान वहां के हिन्दुओं के रहमोकरम पर नहीं हैं ?"

"बिलकुल यही बात है।" ज़ईफ़ ने समर्थन करते हुये कहा। "हम लोग यहां हिन्दुओं को मारकर खुश हो रहे हैं। लेकिन हमें समझना चाहिये कि यदि हम यहां पर एक हिन्दू को मारते हैं तो वहां पर इसका बदला दो दो मुसलमानों को मारकर चुकाया जाता होगा। मैं पूछता हूँ आप में से कितने ऐसे हैं कि जिन का कोई न कोई रिश्तेदार हिन्दुस्तान में नहीं है ? किसी का कोई अज़ीज़ है तो किसी का कोई। क्या उन लोगों की हिफ़ाजत हम इसी इन्सानियत पर चाहते हैं जो हम लोगों ने अभी उन बेचारे दो हिन्दुओं के साथ दिखलाई थी ?"

"मियां आपको क्या मालूम है कि अमृतसर और पंजाब के उस इलाक़े में मुसलमानों के ऊपर क्या गुज़र रही है ?" कड़क कर उस गुण्डे ने लाल पीली आंखें करते हुए कहा।

"ठीक है ! जो कुछ भी हो रहा है। उसे मैं तुम से ज़ियादा जानता हूँ। यह बाल धूप में सुफ़ेद नहीं किये हैं। वहाँ पर भी ऐसा काम करने वाले तुम्हीं जैसे लोग होंगे। कोई आस औलाद वाला आदमी ऐसा काम नहीं करेगा। अपने को मुसलमान कहने वाला इंसान ऐसा काम नहीं कर सकता।" बुज़ुर्गवार एक दर्द के साथ हृदय पर हाथ रखकर बोले।

"और फिर तुम्हारा मक़सद तो सिर्फ़ उनकी जेबों की तलाशी ही लेना था।" वह नौजवान बोला जो रमेश बाबू के सामने वाली सीट पर बैठा था।

"इसके माने हैं कि मैं सिर्फ़ लुटेरा हूँ, खुदाई खिदमतगार नहीं। इस्लाम और पाकिस्तान का सच्चा बशर नहीं।" कड़क कर वह गुंडा बोला।

"नहीं ! नहीं ! नहीं !" अपना मत जरा मज़बूत देखकर जईफ़ बोले। "यह सिर्फ़ खुदगर्ज़ी की चीज़ें हैं। तुम्हारे इस काम से इस्लाम को दाग़ लगेगा, समझे ?"

अपना मत जरा कमज़ोर देख कर और अपना समर्थन किसी भी कोने से न पाकर उस बदमाश को अधिक बोलने का साहस नहीं हुआ। वह चुप चाप एक ओर ज्यों का त्यों खड़ा रह गया।

जईफ़ फिर कहने लगे, "क्या तुम समझते हो कि तुम पाकिस्तान के सभी हिन्दुओं का ख़ात्मा कर डालोगे ? इनमें से वह लोग जो अपना धन, माल, स्त्री, बच्चों और कुटुम्बियों को अपनी आँखों के सामने तड़प-तड़प कर मिटते हुए देख कर किसी तरह हिन्दुस्तान पहुँचेंगे तुम जानते हो वह क्या कुछ ग़जब बर्पा नहीं करेंगे वहां। उन में से एक एक के दिल की आग कितने कितने बेगुनाह मुसलमानों का खून बहा कर बुझेगी ? तुमने कभी सोचा है इस बात पर। लेकिन तुम्हें सोचने से क्या मतलब ? तुम्हारा मतलब तो उन लोगों की जेबें साफ़ करके ख़त्म हो गया। साथ ही अपने को इस्लाम का सपूत साबित करने के लिये उन बेचारों को मौत के घाट भी उतार दिया।" कहता हुआ जईफ़ दांत किटकिटा कर चुप हो गया।

अब सब लोग चुप चाप लज्जित से उस जईफ़ के मुँह पर देख रहे थे। वह नवयुवक उसका समर्थन कर रहा था। उसके दिल में इनके प्रति श्रद्धा हो गई थी। जईफ़ ने फिर कहना प्रारंभ कर दिया, "तुमने उन्हें गाड़ी से बाहर फैंका तो मेरा दिल टूट गया। मुझे ऐसा लगा कि मानों मेरे दोनों लड़के दिल्ली से मेरी ख़बर लेने के लिये रवाना हुए और गाड़ी चलने पर किसी बदमाश ने उनका गला पकड़ कर उन्हें गाड़ी से बाहर फेंक दिया।" कहते कहते जईफ़ की आंखों में आंसू आ गये। इस समय डब्बे के सभी लोग लज्जित थे अपनी करतूत पर। वह गुन्डा तो किसी से आँखें मिलाने के योग्य भी नहीं था। मुँह नीचा किये इस इन्तजार में खड़ा था कि अगला स्टेशन आने पर वह इस डिब्बे से नीचे उतर जाये। वहाँ पर खड़ा रहना उसके लिये कठिन हो गया और उस जईफ़ पर तो वह मन ही मन दांत पीस रहा था। जी चाहता था कि उसे कच्चे को ही चबा जाये।

(४)

शरणार्थी कैम्प की दशा बहुत ख़राब थी। सब के हृदयों में भय छाया हुआ

था। दशा एक की एक से विचित्र थी। सभी के अधूरे परिवार वहाँ पर थे। किसी को भाई से बिछुड़ने का दुःख था तो किसी को बहिन से, किसी की मां लापता थी तो किसी का पिता, किसी की स्त्री नहीं तो किसी का और कोई सगा संबंधी, ग़र्ज यह है कि परेशानी, ग्लानि, क्रोध, भय, आतंक, दयनीयता, विलाप और संताप का वहाँ ऐसा सामंजस्य था कि उसे देख कर दिल ऊपर को आता था। घायल व्यक्तियों के लिये डाक्ट्री-प्रबन्ध था परन्तु वह सब ना के ही बराबर। बड़े बड़े घरानों के बच्चे आज यहाँ पर निस्सहाय और पंगु बने अपने भाग्य को कोस रहे थे। लोगों में भाँति भाँति की टीका टिप्पणियां चल रही थीं। सभी लोग किसी प्रकार यहाँ से भारत जाने के लिये चिंतित थे। चाहते थे कि किसी प्रकार पाकिस्तान की सीमा पार कर सकें तो जान में जान आये।

"भाई रेल से जाना तो बहुत ही तो भयानक है। पता नहीं भारत के हिन्दू भाईयों को भी क्या हो गया है? इतनी कठोरता तो हिन्दुओं में कभी नहीं पाई जाती थी" एक व्यक्ति दुःख से कह रहा था।

"भाई कठोरता भी क्या करे? यहाँ से जो पहिली शरणार्थियों की गाड़ी गई, उसपर कितनी ही जगह पाकिस्तान की सीमा में गुन्डों ने रोक कर ऐसा अत्याचार किया कि अनेकों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। उनका धन माल लूट लिया और उनकी स्त्रियों की जो दशा की गई वह मुँह से कहते नहीं बनती," दूसरा व्यक्ति बोला।

"कहते हैं वह तो गाड़ी की गाड़ी ही समाप्त कर दी थी मुसलमानों ने।" तीसरा व्यक्ति बोला।

"इसी लिये तो आग लग गई वहाँ भी। लोग पहिले ही से भुने हुए बैठे थे। बंगाल के हत्याकांड का घाव अभी तक भरा नहीं था कि उस पर इस प्रकार नमक छिड़का जाने लगा। मैं तो कहता हूँ कि वहाँ से आने वाली मुसलमान शरणार्थियों की गाड़ी की यह दशा होने का बस यही कारण है, केवल यही।" चौथे ने उत्तर दिया।

"ठीक ही किया उन लोगों ने। यही उचित था। जब तक थप्पड़ का जवाब घूंसे से नहीं मिलता उस समय तक अक्ल ठिकाने नहीं आती।" पाँचवा क्रोध से कड़ककर बोला।

"तब तो आपके विचार से यही ठीक रहा ना कि जो यहाँ से हिन्दू शरणार्थियों की गाड़ी जायें उनमें जाने वालों को पाकिस्तान के मुसलमान गुन्डे मौत के घाट उतार दें और जो उधर से बेचारे मुसलमानों की गाड़ी

आयें उन्हें वहाँ के हिंदू बदमाश समाप्त करदें। इधर यह आपके धन, आपकी इज्जत और आपके साथ खिलवाड़ करें और उधर वह उन्हें छुरों का शिकार बनाते रहें।" शांता, जो कि पास ही बैठी हुई इन लोगों की बातें सुन रही थी, उससे रहा नहीं गया यह कहे बिना। फिर भी बहुत शांति पूर्वक उसने कहा।

"यही बात है बहिन जी! शायद आपको चोट कम लगी है। इसी लिये यह व्याख्यान आपके मुँह से निकल रहा है।" एक निष्ठुर व्यंग्य के साथ चौथे व्यक्ति ने तनिक क्रोध से कहा।

"चोट!" एक आह भर कर शांता बोली, "चोट की क्या पूछते हो भाई! मेरी मां, मेरा बाप, मेरा सब कुछ इस ज्वाला में जलकर स्वाहा हो गया। आज इस संसार में ऊपर आकाश है और नीचे यह शरणार्थी कैम्प की पृथ्वी—यदि यह भी तुम्हारी दृष्टि में कम चोट है तो मैं और कुछ नहीं कहना चाहती; परन्तु हाँ यह अवश्य कहूँगी कि यह सब जो कुछ दिखाई दे रहा है यह पागलपन है, दीवानगी है। इसे हम लोग जितना भड़कायेंगे यह ज्वाला उतनी ही अधिक भड़केगी और यदि शांत हो जायेंगे तो हमारा रक्त इसे अपने आप बुझा देगा।" उसी गम्भीरता के साथ शांता कहती गई।

"ठीक कहती हो बेटी! मेरा भी यही मत है।" एक वृद्ध ने सिर हिलाते हुए गम्भीरता पूर्वक कहा।

"यह जो कुछ भी हो रहा है यह सब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के ही नहीं समस्त मानव जाति के मस्तक पर एक कभी न मिटने वाला कलंक का टीका है। इसे साफ़ करने के लिये अभी बलिदान की कमी है। यह बहुत बड़ा बलिदान चाहता है, बहुत बड़ी। हमारी इस दीवानगी को युग२ तक आने वाली हमारी संतानें रोकर कोसा करेंगी।" कहती कहती शांता चुप हो गई। उसका दिल भर आया। उसके नेत्रों में आँसू थे। वह फिर कहने लगी। "मुसलमान सभी बुरे नहीं हैं, हिन्दू सभी देवता नहीं हैं। दोनों में इन्सान हैं और दोनों में हैवान भी। आज हैवानियत इन्सानितत के सिर पर चढ़ कर बोल रही है। दोनों देशों की सत्तायें शिथिल हो रही हैं। जनता—वह तो पागल है, नासमझ, बेवकूफ़। गुण्डे खुदग़र्ज़ उनकी नासमझी का फ़ायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। स्त्री-जाति का जो अपमान मैं आज अपने कानों से सुन रही हूँ उसे सुनकर दानव-हृदय भी विदीर्ण हो सकता है। परन्तु आज का मानव अपने को हिंदू और मुसलमान कहता हुआ, धर्म का ठेकेदार बनता हुआ, अपनी मां बहिनों की इज़्ज़त लेने में तनिक भी संकोच नहीं करता। मानव की नीचता पराकाष्ठा को

पहुँच चुकी है। एक नारी को अपमानित करने में, उसके हाथ अत्याचार और बलात्कार करने में, वह लज्जित नहीं बल्कि खुम ठोक कर, अपने भुजदंड फड़काकर, आनंद और बहादुरी का अनुभव करता है। हद हो चुकी है हृदय-हीनता और दानव-मनोवृत्ति की। घोर रौव बन रहा है संसार।

"मैं पूछती हूँ आप लोग अपने दिलों पर हाथ रख कर कहिये कि क्या यह मानवता है, क्या यह इंसानियत है कि यदि यहां हिंदू के साथ निष्ठुर व्यवहार हुआ है तो वहाँ पर इसका बदला चुकाने के लिये एक निरअपराध मुसलमान की नारी के साथ वही बर्ताव हो, वही व्यवहार हो।"

"बिलकुल वही होना चाहिये! बल्कि उससे भी अधिक।" क्रोध में भर कर एक सरदार जी बोले, "क्या हम इतने कमज़ोर हैं कि इनसे इस प्रकार डरते रहेंगे? हमें मरने की परवाह नहीं। हम जान को हथेली पर रखकर चलते हैं। हमारी इज्ज़त गई है, हम उसके लिये सब कुछ करेंगे। कोई ताक़त हमारे इरादों को नहीं बदल सकती। मैंने अपने पाँच बच्चों को अपने सामने ज़मीन पर लेटते देखा है। मेरी स्त्री को मेरी आंखों के सामने छुरा भौंका गया। मेरा घर लूट लिया, उस में आग लगा दी। मैं भी चाहता था कि मुझे भी कोई आकर अपने छुरे का शिकार बनाये लेकिन उसी समय एक नौजवान की कार आकर रुकी और उसने अपने रिवालवर की गोली से दो बदमाशों को ज़मीन पर लिटा दिया। गोली चलने पर सभी गुन्डे भाग खड़े हुए और वह मुझे अपनी कार में बिठला कर यहाँ छोड़ गया ज़ीवन भर रोने के लिये।" सरदार जी की आँखों में आँसू थे और उनका सिर क्रोध से पागल हो रहा था।

शांता ने बहुत शांति पूर्वक सरदार जी की सभी बातें सुनीं और बहुत गम्भीरता पूर्वक बोली, "क्या आप बतला सकते हैं कि वह कार जो आपको यहां पर छोड़ गई थी किस रंग की थी?"

"लाल रंग की।" सरदार जी ने धीरे से कहा।

"और आपको यह भी मालूम है कि वह कार वाला व्यक्ति कौन था जिसने दो मुसलमान गुण्डों को मौत के घाट उतार कर आपकी जान बचाई।" गम्भीर मुद्रा के साथ ही शांता कहती जा रही थी।

"नहीं, यह मैं कुछ नहीं जानता। मेरा दिमाग़ इतना ख़राब हो चुका था उस समय कि मैं उस बेचारे से 'शुक्रिया' कहना भी भूल गया।" सरदार जी ने बड़ी दीनता से उत्तर दिया।

"अच्छा! तब मैं बतलाती हूँ आपको उसका नाम! उसका नाम है मिस्टर

आज़ाद और वह वह एक कट्टर मुसलमान है।" शांता ने उसी गम्भीरता से कहा।

"मिस्टर आज़ाद। मुसलमान!" सब ने बड़े ही आश्चर्य से कहा। सरदार जी ने यह नाम कई बार दोहराया और अंत में मानो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वह कहने लगे, "नहीं, नहीं बेटी वह मुसलमान नहीं था। दाढ़ी अवश्य थी उसके छोटी सी परन्तु शायद वह यों ही बढ़ रही होगी, या उसने वेश बदल लिया होगा, परंतु वह मुसलमान नहीं हो सकता। तुम्हें धोखा हुआ है, भ्रम हुआ है। तुम किसी और की बात कहती हो शायद।" सरदार जी एक साँस में कह गये। मुसलमान और हिन्दू की रक्षा करे! यह उन्हें असम्भव प्रतीत हो रहा था।

"जी नहीं! मैं उसे खूब जानती हूँ! वह मेरा कॉलेज का साथी है और उसीने मेरे भी प्राण गुण्डों से बचाये हैं। मैं उसे नहीं भूल सकती। वह है इन्सान है मानव है मुसलमान नहीं।" कहते हुए शांता का हृदय गदगद हो रहा था और नेत्रों में आंसू आ रहे थे। शांता ने आज़ाद में अपने सगे भाई के दर्शन किये और सरदार जी की बात का स्मरण करके आज़ाद के प्रति उसकी श्रद्धा का ठिकाना न रहा।

यह बात सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये और सरदार जी— उनकी तो बस पूछो ही नहीं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उनका खोया हुआ धन फिर से लौट आया। आज़ाद को उन्होंने 'बेटा आज़ाद' कह कर धीरे से पुकारा। "बहिन मुझे क्षमा करना; यदि मैं तुमसे कुछ अनुचित बात कह गया हूँ तो। मैं क्रोध में पागल हो चला था।" सरदार जी शांता की ओर मुँह करके बोले।

"आज का दुखी-हृदय कोई भी बात अनुचित नहीं कहता। अनौचित्य की उसमें भावना ही खोजना मूर्खता है। आपत्ति के समय बुद्धि काम करना छोड़ देती है। इस कठिन समय में मैं आप लोगों को केवल यही बतलाना चाहती हूँ कि आप लोग यह समझ लीजिये और निश्चित रूप से समझ लीजिये कि जो लोग पाकिस्तान में हिन्दुओं का बध करके मुसलमानों के शुभचिंतक बनना चाहते हैं वही इस्लाम के कट्टर शत्रु है। भारत से आने वाले मुसलमान उन्हें गालियां देते रहेंगे। वही उनके सर्वनाश के कारण बन रहे हैं और इसी प्रकार भारत में जो लोग मुसलमानों का संहार कर रहे हैं वह नीच हमारे कट्टर शत्रु हैं। वही हमारे मार्ग में कांटे बन रहे हैं। वही हम लोगों को यहाँ से मुसलमान गुण्डों

द्वारा भगाये जाने के कारण बन रहे हैं। हमें उनसे घृणा करनी चाहिये; वह घृणा के पात्र हैं। समय इसका प्रमाण स्वयं देगा।" शाँता चुप हो गई।

"तुम सत्य कह रही हो बेटी। मैं अपनी भूल को समझ रहा हूँ।" सरदार जी ने सिर नीचा करके कहा और सभी लोग जो विपक्षी भावना रखते थे अब अपनी भूल का अनुभव कर रहे थे।

इतने में सामने से एक कार आती हुई दिखलाई दी। वही लाल कार थी और वह सीधी आकर वहीं पर रुकी। कार को देख कर शांता समझ गई कि भय्या आज़ाद आ रहा है। शांता ने खड़े होकर नमस्कार किया और नमस्कार का उत्तर देते हुए आज़ाद बोला, "कहो बहिन यह क्या पंचायत लगा रखी है। ठीक तो रही कल! मैं कुछ ऐसे कामों में फँसा रहा कि यहां आकर तुम से मिलना सम्भव नहीं हो सका। यहां एक दो बार आया अवश्य परन्तु समय इतना कम था कि तुमसे मिल नहीं सकता था।"

"शहर की क्या दशा है भय्या।" शांता ने उत्सुकता से पूछा।

"दशा क्या होती बहिन! वही दशा है। खुदग़र्ज लोगों की बन आ रही है। शासन मानो समाप्त ही हो चुका है। पुलिस को तो ला पता ही समझो, हाँ मिलिट्री कहीं कहीं पर अवश्य दिखलाई देती है,परन्तु वह भी एक अजीब ढंग से कार्य कर रही है। प्रजा की रक्षा का ध्यान किसी को भी नहीं है। अत्याचार अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। एक रुपये के लिये एक व्यक्ति की जान लेना बुरा नहीं समझा जाता। हर व्यक्ति इस नई मिली हुई आज़ादी का यह अर्थ समझ रहा है कि वह अपनी दीवानगी प्रदर्शित करने के लिये स्वतंत्र है। कोई ताक़त नहीं है जो उसके मार्ग में बाधा उपस्थित कर सके।

"मज़हब के नाम पर मज़हब के कलंक मनमानी कर रहे हैं। लाहौर की शानदार बस्ती को उजाड़ कर, जला कर, लूट कर ख़ाक में मिलाया जा रहा है। उनको कोई कुछ कहने सुनने वाला नहीं। गुण्डों का बोलबाला है। मिलिट्री बराबर लुटेरों का साथ दे रही है। सरकार के इरादे का पता नहीं चलता परन्तु दिखावट से वह रोकना अवश्य चाहती है। हो सकता है कि वास्तव में चाहती भी हो, परन्तु आज का मुसलमान इस बात का विश्वास भी भला किस प्रकार करे कि जिसके कानों में इतने दिन से मुस्लिम लीग आपसी द्वेष का ज़हर घोलती आई है आज वह कैसे समझे कि उसी मुस्लिम लीग के नेता हिन्दुओं औ उनके जान-माल की रक्षा की शिक्षा दे सकते हैं। आज का गुण्डा मुसलमान-दल है शासन का भुजदंड और शरीफ़ ख़ानदानी मुसलमान–उनकी तो दशा आप

लोगों से भी ख़राब है। आप खुल कर अपने मत का इज़हार तो कर सकते हैं परन्तु वह यह भी नहीं कर सकता। अगर वह ऐसा करने का साहस करता है तो उसे काफ़िर होने का फ़तवा दिया जाता है और वह फ़तवा देने वाले हैं कट्टर मुल्ले।

"तुम जानती हो शांता कि मुझे इन मुल्ले और तिलकधारी पंडितों से कितनी घृणा है? यह लोग जनता के पैसे पर पलते हैं और जनता में ही द्वेष और वैर की आग फूंकना इन नीचों का उद्देश्य रहता है। मैं कहा करता था कि यदि भारत को भारत बनाना है तो कोई कारण नहीं कि इन पंडित और मुल्लों को एक लाइन में खड़ा करके गोली का निशाना बना दिया जाये। मानवता के वृक्ष की जड़ों में यह वह ख़तरनाक कीड़े हैं कि जो पेड़ की ख़ूराक को स्वयं चाट जाना चाहते हैं। इनका सर्वनाश होना उतना ही आवश्यक है जितना जाति और देश का उत्थान होना। आज यह पथ-प्रदर्शक न होकर पथ-भ्रष्ट करने वाले हैं। आपस में घृणा का प्रचार करना ही इनका मुख्य लक्ष्य है और अपने को प्रभावशाली बनाकर मानवता पर थोपने का इनके पास केवल यही एक यंत्र है। मानव मानव नहीं रह सकता जब तक वह इस कठोर सत्य को न समझ सके।"

आज़ाद कहता जा रहा था और सभी लोग शांति पूर्वक सुन रहे थे। किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। सब शांत थे, मौन केवल आंखें आज़ाद के मुख पर टिकी हुई थीं। आज़ाद के पास एक पांच-छै वर्ष की लड़की खड़ी थी जो कार से उसी के साथ उतरी थी। अभी तक शांता का ध्यान ही उस ओर नहीं गया था। अचानक इसे देखकर कह उठी, "यह कौन है भय्या?"

"यह तुम्हारे लिये एक छोटी बहन लाया हूँ शांता। लो इसे मेरी अमानत समझ कर अपने पास रखना।" इतना कहकर आज़ाद की आंखों से दो बूंद आंसू गिर पड़े। सभी लोगों ने बड़े आश्चर्य से एक मुसलमान को इस प्रकार रोते हुये देखा क्योंकि उनकी दृष्टि में वहां पर किसी भी मुसलमान के लिये रोने का कोई कारण नहीं था।

शांता ने कुछ अधिक पूछना उचित नहीं समझा और प्यार से उस बच्ची को उठा कर हृदय से लगा लिया। बड़े दुलार से फिर बोली, "तुम्हारा नाम क्या है बेटी?"

"शांता" बच्ची ने कहा।

"यह शांता जूनियर है।" आज़ाद मुसकरा कर बोला! "घर भर में केवल

यही अकेली बची है। अकस्मात् मेरी कार उधर से निकल रही थी कि यह नज़ारा मेरी आंखों के सामने आ गया। लेकिन वाह! खूब जवान था इस बच्ची का पिता भी? देखकर तबीयत खुश हो गई, और इसकी माता वह तो शेरनी थी, शेरनी। दोनों पर पचासों बदमाशों का झुन्ड झपट रहा था प्राणों का मोह त्याग कर दोनों ने स्वयं अपने मकान में पहिले आग लगाई और फिर दोनों कृपाण लेकर उस झुन्ड से भिड़ गये। अफ़सोस. उनके जीते जी मैं वहां न पहुँच सका। जब मैं पहुँचा तो माता पड़ी पृथ्वी पर सिसक रही थी और पिता मर चुका था। इस बच्ची की तरफ़ लपक कर चलने वाले बदमाश को मेरी गोली का निशाना बनना पड़ा। इनकी मां को मैं हस्पताल ले गया लेकिन वहां जाकर उसने भी प्राण........."

"मेरी शांता!' कहकर एक बार फिर शांता ने उस बच्ची को हृदय से लगा लिया। शाँता को ऐसा दिखलाई दिया मानो आज़ाद स्वयं उसी की अपनी पिछले दिन वाली कहानी दुहरा रहा था। पिछले दिनका पूरा दृश्य उसकी आंखों के सामने चित्रित हो उठा। उसने अपनी कोठी में आग लगती हुई देखी और माता पिता को छुरे और छत से गिरने वाली लकड़ी का शिकार होते हुए देखा। शांता का तमाम बदन कांपने लगा और वह शांत होकर बच्ची को गोद में लिए पृथ्वी पर जहां की तहां बैठ गई। शांता की आंखों से अनजाने में ही आंसू निकल निकल कर पृथ्वी पर गिरने लगे और वह थोड़ी देर तक ऊपर को नहीं देख सकी।

इसी समय शांता का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित कराते हुए आज़ाद ने कहना प्रारम्भ किया, "बहिन शांता! मैंने तमाम शहर खोज लिया परन्तु कहीं पर भी मैं रमेश बाबू का पता नहीं निकाल सका।"

"क्या कहा भय्या?" शांता ने स्वप्निल अवस्था से जाग्रत सी होकर कहा।

"शहर का कोना कोना मैंने छान लिया, स्टेशन से जाने वाली हर गाड़ी देखी, हर मोटर पर गया परन्तु कहीं पर रमेश बाबू से मुलाकात न हो सकी?"

"फिर क्या विचार है भैय्या? क्या उन्हें भी किसी नीच ने मौत के घाट उतार दिया?" शांता ने बहुत करुण दृष्टि से आज़ाद के मुख पर देख कर पूछा।

"नहीं बहिन! नहीं! यह असम्भव है। एक बार उस कमरे से सुरक्षित उतरने पर कोई शक्ति नहीं है जो रमेश बाबूका बाल भी बाँका कर सके। मेरा तो मन यह कहता है कि वह पाकिस्तान की सीमा पार कर चुके हैं।" गम्भीरता पूर्वक आज़ाद ने कहा।

"यह केवल आप का अनुमान मात्र ही तो है।" शांता दीनता से बोली।

"अनुमान नहीं बहिन ! यह मेरा हृदय कह रहा है और यह सत्य है, असत्य हो नहीं सकता।" आज़ाद आत्म विश्वास के साथ दृढ़ता पूर्वक कह रहा था।

"परन्तु कोई निश्चित प्रमाण नहीं।" शांता ने प्रश्न वाचक शब्दों में पूछा।

"यह सत्य है कि इसका कोई प्रमाण नहीं परन्तु फिर भी जो मैं कह रहा हूँ उसमें मेरी आत्मा बोल रही है। खैर ! जो कुछ भी सही। आने वाला समय सत्य असत्य का प्रमाण देगा। मैंने तुम दोनों के लिये हवाई जहाज़ की सीटों का प्रबन्ध कर दिया है। यह लो अपने दो टिकट।" टिकिट शांता के हाथ में देते हुए आज़ाद ने कहा। "बुधवार को सुबह नौ बज कर पैंतीस मिनट पर चलने वाले जहाज़ से तुम जा सकोगी। टिकिट देहली के हैं। मैडेन-होटल काश्मीरी गेट, में मैंने तुम्हारे लिये कमरा नम्बर २५ किराये पर तै कर दिया है। जब तक कोई और उचित प्रबन्ध न हो तब तक तुम वहां पर सुरक्षित रह सकोगी। शायद इस बीच में मेरी कोई सूचना तुम्हें न मिल सके, तो तुम चिंतित न होना।

"बुधवार की सुबह मैं स्वयं तुम्हें ले जाकर एरोड्रम पर सवार करा दूंगा। अब यहां पर और अधिक रहना तुम्हारे लिये उचित नहीं।" कहते हुए आज़ाद का दिल भारी हो आया। शांता शांत थी उसने केवल यही कहा। "जो तुमने प्रबन्ध किया है, उचित ही है भय्या ? अब और हो भी भला क्या सकता है ? इसके अतिरिक्त और कुछ चारा भी तो नहीं है।"

"अच्छा। खुदा हाफ़िज़ ! मैं अब जाता हूँ।" कहकर आज़ाद अपनी कार पर सवार हो गया और सब लोग कार को दूर तक जाती हुई देखते रहे।

भारत की सीमा में

(५)

"पूर्वी पंजाब की दशा पश्चिमी पंजाब से कुछ अधिक बेहतर नहीं है। दोनों नर-संहार के क्षेत्र बने हुए हैं। एक ओर यदि हिन्दुओं का बीज-नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा है तो दूसरी ओर मुसलमानों का। गांव की भोली जनता को भारत के प्रमुख लीडरों के नाम पर खुदगर्ज लोगों ने बहका कर वह अनर्थ कराये हैं कि जिन्हें सुनकर कलेजा मुंह को आता है।

"इस बदलती हुई परिस्थिति का कुछ दल विशेषों ने अपने शक्ति-संगठन करने में प्रयोग किया है। भारतीयता के नाम पर संघ बने और अवसर को हाथों से नहीं जाने दिया। अनधिकार रुप से उन्हों ने समझ लिया कि हिन्दू-जनता क रक्षा का भार केवल उन्हीं लोगों के कंधों पर है। जनता भी इनकी ओर

आकर्षित हुई ; एक सहानुभूति के साथ, एक उत्साह के साथ और साथ ही उस समय के पैदा होने वाले झूठे और छिछले धार्मिक अवलम्ब को लेकर। हिन्दू समाज का एक काफ़ी बड़ा नौजवान-दल इस सूत्र में बंध कर हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गया।

"भारत-विभाजन से पूर्व मुस्लिम लीग के डाइरेक्ट एक्शन का इस संघ ने मुंह तोड़ उत्तर दिया। लाहौर, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, बिहार, यू० पी० सभी जगह मि० जिन्हा के डाइरेक्ट एक्शन ने अपना रङ्ग दिखलाया परन्तु उसमें उन्हें मुंह की खानी पड़ी। जिस रूप से यह जवाब दिया गया वह कांग्रेस के सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत था परन्तु फिर भी उस कार्य से लीगी गुन्डे बाज़ी को प्रोत्साहन न मिल सका और एक आतंक की भावना लीगियों के हृदय में पैदा हो गई। भारत की हिन्दू-जनता पर इसका प्रभाव पड़ा और उन्होंने आंशिक रूप में संघ को अपना इस आपत्ति में संरक्षक सा मान लिया।

"भारत-विभाजन के पश्चात् परिस्थिति बिलकुल विपरीत हो गई। दोनों सरकारों की ज़िम्मेदारियां पृथक-पृथक हुईं और इसी लिये ऐसे समय में धार्मिक संस्थाओं का कार्य-क्षेत्र भी बदल गया। मुस्लिम लीग अपने डाइरेक्ट एक्शन को देख चुकी थी और उसमें उसे मुंहकी खानी पड़ी थी। वह मुंहकी खाने वाली बात का गुबार खुदगर्ज़ लोगों के दिलों में बुरी तरह से भरा हुआ था। विभाजन होते ही वह दबा हुआ ज्वालामुखी पहाड़ एक दम फूट निकला। लाहौर में नंगी तलवारें लेकर निकला हुआ जुलूस वहां के मुसलमानों को भूला नहीं था। लाहौर में की नदियां बहा देनेवाला नारा भी उनके कानों में बुरी तरह चुभा हुआ था। अवसर पाते ही सब की नदियां बहनी प्रारम्भ हो गईं।

अपने ही हाथों द्वारा लगाई हुई ज्वाला अपने ही घर में दहक उठी पश्चिमी पंजाब में सिक्खों की तो बस शामत ही आ गई। खोज खोजकर उन्हें गुन्डों की बेदर्दी का शिकार बनाया गया। उनके वस्त्र और वेष-भूषा उनके लिये साइन-बोर्ड बन गये। और किसी प्रकार बच कर निकलना उनके लिये कठिन हो गया। फिर भी भारत सरकार ने उन्हें वहां से निकाल लाने में अपनी सम्पूर्ण शक्तिय लगा दीं।

"पश्चिमी पंजाब के इस नरमेध यज्ञ का गहरा प्रभाव पूर्वी पंजाब पर पड़ा। कुछ दिन के लिए सरकारी बागडोरें ढीली पड़ गईं और अत्याचार के बन्धन मुक्त हो गए। संघ के स्वयं-सेवकों ने परिस्थिति का लाभ उठाकर अपने हाथ

साफ़ करने प्रारम्भ कर दिये। हिन्द यूनियन के बनते ही बेचारी मुसलमान जनता का साहस समाप्त हो गया। सरकार को उन्होंने अपना न समझकर अपने को निस्सहाय पाया और हिन्दुओं की दया पर अपने को छोड़ दिया। ऐसी परिस्थिति में उनकी कमज़ोरी देखकर हिन्दू जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अप्रगतिशील दलों ने अपनी पूरी शक्ति उसी कार्य में लगादी जो कार्य कि पश्चिमी पंजाब में लीग और वहां के होम-गार्ड कर रहे थे।" कहते कहते रमेश बाबू को मानव की खुदगर्ज़ी पर क्रोध आया और वह और भी उत्तेजित होकर बोले—"लेकिन बाबा! यह दानवता स्थाई नहीं रह सकती। इस प्रकार मानव जाति का संहार कराने वाले दल कभी भी अपने ध्येय में सफल नहीं हुआ करते। 'हिन्दू' और 'मुसलमान' यह दोनों ही व्यर्थ के विचार हैं। हमें अब भूल जाना होगा इस भेद-भाव को।" कहते कहते रमेश बाबू चुप हो गये।

"तुम ठीक कह रहे हो बेटा! जब तक इस भेद-भाव को भुलाया नहीं जायेगा उस समय तक दोनों को सुख-शांति प्राप्त नहीं हो सकती। दोनों को बराबर द्वेष और वैर की ज्वाला में जलते रहना होगा।" वृद्ध मुसलमान ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

दोनों बैठे इस प्रकार बातें कर रहे थे। गाड़ी बराबर चलती जा रही थी। पश्चिमी पंजाब की सीमा समाप्त होते होते उस गाड़ी से प्राय; सभी मुसलमान उतर चुके थे। कहीं कोई एक आध व्यक्ति नाम-मात्र के लिए रह गया था। रमेश बाबू ने अब और अधिक अपने आप को छुपाने का प्रयत्न न किया। उन्होंने टर्किश कैप उतारकर एक ओर रखते हुए बुजुर्गवार से कहा—"बाबा! आप मुझे क्षमा करेंगे कि मैंने अभी तक आपको धोखे में रखा।"

"यह कैसे बेटा?" आश्चर्य से बुजुर्गवार ने पूछा।

"यही कि आप मुझे मुसलमान समझे हुए थे और वास्तव में मैं हिन्दू हूँ। मेरा नाम रमेश है और मैंने सुरक्षित लाहौर से भाग निकलने के लिए यह भेष बदला था। अब मैं भारत की सीमा में आ गया हूँ और अब मुझे किसी बात का भय नहीं है। इसलिए अब और अधिक अपने को छुपाना व्यर्थ है।" रमेश बाबू ने निर्भीक तथा बहुत विनय-भाव से कहा।

यह सुनकर बुजुर्गवार का बूढ़ा शरीर थर-थर करके कांपने लगा। यह अन्तिम आश्रय भी उन्हें हाथों से जाता हुआ दिखलाई दिया। उसका दिल अभी तक यह जानकर निश्चिन्त था कि चलो एक डिब्बे में दो तो मुसलमान हैं। यदि कोई आपत्ति आई तो यह नवयुवक कुछ साथ देगा परन्तु अब वह आश्रय भी समाप्त

गया। लाहौर से गाड़ी जिस समय चली थी और उसमें से दो हिन्दुओं को मार कर बाहर फैंक दिया था वह दृश्य उसकी आंखों के सम्मुख साक्षात्कार हो उठा। बुजुर्गवार के हृदय की गति धीमी पड़ने लगी और उसका सिर चकरा रहा था। मृत्यु उसे ऐसी मालूम दी कि मानो हाथ पसारे उसके सम्मुख खड़ी अन्तिम श्वांस गिन रही थी।

बुजुर्गवार के मुख के बदलते हुए भावों को पढ़ने में रमेश बाबू को देर नहीं लगी। वह तुरन्त भांप गये कि उन के इस प्रकार रहस्य उद्घाटन से वृद्ध के दिल पर एक गहरा सदमा पहुँचा है और इसीलिए उसकी ज़बान बन्द हो गई है। "परन्तु बुजुर्गवार! आप यह न समझें कि मैं हिन्दू हूँ तो आप यहां परअकेले रह गए हैं। लाहौर से चलने पर गाड़ी से जिस प्रकार दो व्यक्तियों को मौत के घाट उतार कर नीचे फैंक दिया था वह दुर्घटना मेरे जीते जी यहां होनी असम्भव थी। हो वहां भी नहीं सकती थी परन्तु यदि मैं वहां रोकने का प्रयत्न करता तो सम्भवतः मेरा रहस्य खुल जाता और मुझे वहीं पर समाप्त हो जाना होता। मैंने लाहौर छोड़ा है डर कर भाग आने के लिए नहीं, बल्कि मानव जाति के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए। मैं इंसान हूँ और हैवानियत के विपरीत अपनी सम्पूर्ण शक्ति से संघर्ष करूंगा। यही उद्देश्य है वहां से मेरा यहां आने का। आप पर किसी प्रकार की आंच आती देखकर मैं समझूंगा कि कोई नीच मेरे पिता पर आघात करना चाहता है।" रमेश बाबू ने बहुत गम्भीरता-पूर्वक कहा।

बुजुर्गवार के दिल में कुछ साहस अवश्य आया परन्तु घबराहट बराबर बनी रही। वह कुछ कहना अवश्य चाहते थे परन्तु ओठ नहीं खुल सके। उनकी मौन आंखों ने सब कुछ कह दिया। वह अपने दिल को सँभालकर एक कोने में तकिये का सहारा लेकर चुपचाप बैठ गए। गाड़ी बराबर बढ़ती जा रही थी दिल्ली की दिशा में।

प्रत्येक स्टेशन पर हुल्लड़बाजी थी। पुलिस थी और फौज के दस्ते भी परन्तु वह सभी मानो तमाशबीन थे। गुण्डों की हुड़दंगेबाजी का तमाशा देख रहे थे। बदमाशों को खुली छुट्टी दी हुई थी खोज खोज कर मुसलमानों का संहार करने के लिए। परन्तु यह दशा भी सभी की नहीं थी। मद्रास रेजीमेंट के सिपाही अपना कर्त्तव्य-पालन पूर्ण रूप से कर रहे थे। डोंगरा रेजीमेंट की टोलियां भी विश्वासघात नहीं कर रही थीं। अब रही सिख रेजीमेंट की बात,सो उसके दिल में अवश्य एक गहरा घाव था और साथ ही एक तूफानी गुबार भी। सिखों के साथ होने

वाले पश्चिमी पंजाब के अत्याचार ने उनकी आंखों के डोरे लाल कर रखे थे। सिक्खों के साथ चुन-चुन कर वहां पर अत्याचार हुए और उसी का बदला······

गाड़ी किसी प्रकार स्टेशनों को पार करती जा रही थी। अचानक एक भीड़ ने आकर गाड़ी को रोक लिया। रमेश बाबू ने खिड़की के पास आकर देखा, भीड़ काफ़ी थी। एक ही क्षण सोचकर रमेश बाबू गाड़ी से नीचे उतरे और सीधे उस भीड़ के पास पहुँच कर बोले—"भाइयो! आप लोग एक मिनट मेरी बात सुनिये। आप जो कुछ करने जा रहे हैं वह हिन्दू-धर्म के मस्तक पर कलंक होगा। दो चार मुसलमानों को मार कर आप संसार में मुसलमानों को समाप्त नहीं कर सकते। यह पागलपन है। आप लोगों को महात्मा गांधी के सिद्धांतों पर अटल रहना चाहिये।"

"परन्तु हमसे तो कुछ व्यक्तियों ने यही कहा है कि महात्मा गांधी यही चाहते हैं। कल ही चार आदमी हमारे गांव में आये थे और उन्होंने कहा था कि महात्मा गांधी जो कुछ कह रहे हैं वह एक राजनीति की चाल है। ऊपर से उन्हें यही कहना चाहिये परन्तु जो वह दिल से चाहते हैं वह है मुसलमानों की समाप्ति, सर्वनाश।" गांव वालों की भीड़ में से एक नवयुवक ने आगे बढ़ कर कहा।

"भाईयो! वह इस तरह तुमको बहकानेवाले कुछ धोखेबाज व्यक्ति होंगे जो खुदगर्ज़ी के कारण यह सब ग़लत प्रचार करते फिरते हैं। उनका कोई सिद्धांत नहीं है, क्यों कि वह जानते हैं कि भारत वासियों का महात्मा गांधी पर अटल विश्वास है इसलिये उनका नाम लेकर इसी प्रकार का प्रचार कर रहे हैं। यह विष है इसे आप लोगों को अपने दिलों से निकाल देना चाहिये। आज के कठिन समय में आपका कर्तव्य है कि आप अपने पड़ौसी मुसलमानों की रक्षा करें। वह आपके भाई हैं, साथी हैं, पड़ौसी हैं, शत्रु नहीं हो सकते।" बहुत गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू ने उनको समझाते हुए कहा।

भीड़ गांव के नौजवानों की थी। यह सीधी सच्ची बात उनकी समझ में आगई। सब के सब महात्मा गांधी की जै का नारा लगाते हुए वापस चले गये और रमेश बाबू आकर फिर गाड़ी के डिब्बे में बैठ गये। गाड़ी फिर उसी प्रकार चलने लगी। बुजुर्गवार का हृदय इस समय प्रेम-सागर में गोते लगा रहा था। रमेश बाबू में उन्होंने महात्मा गांधी के दर्शन किये और अपने को धन्य समझा अब उन्हें किसी प्रकार का भी भय नहीं था। वह शांति के साथ बोले, "बेटा यह लोग दरअसिल बहकाये हुए थे। कितने भोले थे सभी लोग? न इनमें

गुन्डापन था और ना दग़ाज़ी। यह लोग तो यहां पर आये थे महात्मा गांधी का हुक्म बजालाने के लिये।"

"यही बात है बज़ुर्गवार! शहरों में इस प्रकार की गंदगी फैलाने वाले हैं वह खुदगर्ज़ लोग जिनका धर्म के नाम तक से कोई सम्बन्ध नहीं। कभी उन्होंने नमाज़ नहीं पढ़ी और कभी उन्होंने संध्या नहीं की, कभी मस्जिद में नहीं गये और कभी उन्होंने मंदिर के दर्शन नहीं किये, कभी उन्होंने रोज़ा नहीं रखा और कभी उन्होंने कोई व्रत नहीं किया। उनका उद्देश्य है धर्म की आड़ में लूट मार और व्यभिचार करना। उनके पास किसी को मां, बहिन, बेटी देखने वाली दृष्टि नहीं है। वह देखते हैं हर स्त्री को केवल वेश्या के रूप में, अपने आनन्द-भोग की सामग्री के रूप में। उनके पास हृदय नहीं पत्थर होता है, मानवता नहीं हैवानियत होती है, दया नहीं कठोरता होती है, विचार नहीं दीवानगी होती है और संयम नहीं विलसिता होती है। उनका हृदय व्यभिचार का अड्डा है और मन पापों का भंडार। परन्तु यह गांवों के लोग उस प्रकार के नहीं थे। यही कारण था कि उन पर मेरे कहने का प्रभाव हुआ। यदि यह शहर के गुन्डे हुए होते तो मुझे दूसरी शक्ति का प्रयोग करना होता।" रमेश बाबू ने आंखों की त्यौरी चढ़ाते हुए कहा। उनका मुँख इस समय क्रोध से तमतमा रहा था।

"आज भारत को तुम्हीं जैसे जीदार बच्चों की ज़रूरत है बेटा!" बुज़ुर्गवार ने बड़े प्यार से कहा और उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

गाड़ी के इस डिब्बे के अनेकों विचार में व्यक्ति थे। कुछ व्यक्ति तो उन्मुक्त कंठ से रमेश बाबू के कार्य की सराहना कर रहे थे और कुछ मन ही मन कुढ़ रहे थे। उनमें धीमे धीमे स्वर में कानाफूंसी हो रही थी, "बड़ा आया है महात्मा गांधी का बच्चा बन कर।" एक ने कहा।

"यह कांग्रेस का राज्य अब नहीं चल सकेगा। हिन्दुओं ने प्राण देकर कांग्रेस को सींचा है और आज यह कांग्रेस के नेता चले हैं हिन्दुओं का ही दमन करने के लिये! हमें कहते हैं शांत रहो, शांत रहो और वहां पर पाकिस्तान में हमारे भाईयों पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं। वहां हमारे बच्चों का कत्ले-आम हो रहा है, हमारी स्त्रियों की आबरू लूटी जा रही है, हमारे नौजवानों को छुरों के घाट उतारा जा रहा है और यहां यह हमें उपदेश करते हैं कि हम मुसलमानों के साथ भाइयों जैसा व्यवहार करें।" दूसरा बोला।

"क्या यह वही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने पाकिस्तान के लिये वोट दिया था? क्या यह वही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने अङ्गरेज़ी सरकार का उस समय

साथ दिया था जब कि हम जेलों में सड़ रहे थे ? क्या यह वही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने बंगाल में हत्याकांड करके अपने डाईरेक्ट एक्शन की करतूत दिखलाई थी ? उस समय दया कहां गई थी ? आज इन्हें क्या अधिकार है भारत में रहने का ? इन्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिये, अन्यथा मौत के घाट उतर जाना चाहिये। हिन्दुस्तान अब हिन्दुओं का है और हिन्दू ही इसमें रहेंगे।" तीसरा दांत चबाकर बोला।

"इस व्यक्ति ने इस बूढ़े खूसट को अभी तक बचा रखा है। देखते हैं इस पाजी को यह कब तक प्राण-दान देता रहेगा ? अभी वह हल्ला ही बुलकर नहीं आया है कि जिसके सामने फौजी सिपाही भी थर-थर कांप कर एक ओर हट जाते हैं और कह देते हैं कि 'लो भाई तुम्हें आजादी है, जो चाहो करो।' जब वह खून के प्यासे हिन्दुत्व के लाल यहां पर अपने दुधारे छुरों को पैनाते हुए आयेंगे तो इन महाशय की बहादुरी और उपदेश सब रफूचक्कर हो जायेंगे।" चौथे ने क्रोध और गम्भीरता से कहा।

"मैं दावे से कह सकता हूँ कि यह इस खूसट को दिल्ली तक बचाकर नहीं ले जा सकता, नहीं ले जा सकता। अभी एक सिक्खों का दस्ता आया और इसका काम तमाम हुआ।" पांचवा बोला।

"सिक्खों का दास्ता ही क्या ? आजकल तो भारतीय संघ ने भी कमाल किया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि संघ के हर स्वयंसेवक को काली माई से वरदान प्राप्त हो चुका है।" छटे ने धीरे से कहा।

"यही बात है" फिर पहिला बोल उठा।

बातें यह सब बहुत ही चुपचाप हो रही थीं। किसी में भी इतना साहस नहीं था कि वह रमेश बाबू के तेज के सम्मुख आ सके और अपने विचारों का प्रदर्शन कर सके; परन्तु दिल में उन सभी के एक द्वेष की ज्वाला जल रही थी। बेचारा बूढ़ा उनकी आंखों में खटक रहा था। उनकी दशा इस समय उन शिकारियों की सी थी कि जिनके सामने उनका शिकार बैठा हो परन्तु एक शेर के संरक्षण में डरते थे। कि यदि उसकी ओर हाथ बढ़ाने का साहस किया तो प्राणों से हाथ धोना होगा। वह इस इन्तज़ार में थे कि कहीं से कुछ ऐसे शिकारी कुत्ते आजायें कि जो इस शेर का भी शिकार कर सकें।

गाड़ी पूरी रफ़तार पर चली जा रही थी, स्टेशन पर स्टेशन छोड़ती हुई। हुल्लड़बाज़ी की कमी कहीं पर भी नहीं थी। अनेकों जगह गाड़ी पर पत्थर आये और रमेश बाबू को गुंडों का सामना करना पड़ा परन्तु वह अपने कार्य में सफल

रहे। इस डिब्बे में चढ़ने का साहस किसी में भी नहीं होता था। गुंडों का हिंदुत्व-प्रेम रमेश बाबू के रिवालवर की नाल के सामने काफ़ूर की तरह उड़ जाता था। बड़े-बड़े सशक्त पहलवान, जिनकी आँखों के डोरे शराब के नशे में लाल थे, जिनके रण-कौशल का प्रमाण बूढ़े और असहाय मुसलमानों की छुरे से बाहर निकली हुई आंतों और पसलियों में से झाँक रहा था, जिनका महान पुरुषत्व वीभत्स बालात्कार के पश्चात अचेतन पड़ी हुई भारत की ललनाओं के शवों से प्रस्फुटित हो रहा था, आज मूंछों पर ताव दिये हिन्दू धर्म के संरक्षक बने थे।

इस वीभत्स कांड को देख कर रमेश बाबू को लगा कि मानो भारत ने पिछले दिनों हिन्दू-मुस्लिम एकता का ढिंडोरा पीट कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से जो युद्ध किया वह कोरा दिखावा मात्र था, सत्य नहीं। उसमें छल था, पाप था और थी घृणा। क्या अशफ़ाकुल्ला ने अपने प्राणों की बलि इसी असत्य-मत का प्रतिपादन करने के लिये दी थी? क्या आज़ाद, भक्तसिंह, बिस्मिल, रोशन और जितेन्द्र-नाथ दास ने अपनी आहूतियाँ देकर भारतीय जनता को यही पाठ पढ़ाया था? क्या नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फ़ौज का संचालन इसी लिये किया था कि उसका इस प्रकार भारत वर्ष में उपहास किया जाये?

परन्तु यदि हम कहें कि यह सब कुछ नहीं, तो फिर यह आखिर क्यों? क्यों इस प्रकार हम अपनी लहलहाती हुई खेती को उजाड़ने पर तुले हुए हैं? क्यों हमारे विचारों में ऐसा विष घुल गया है कि हम उससे मुक्त नहीं हो सकते?

रमेश बाबू का मन इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था और गाड़ी बराबर चलती ही जा रही थी, मानो वह किसी के लिये नहीं रुकेगी। देहली से मार्ग के स्टेशन मास्टरों पर तार आ चुके थे कि आने वाली गाड़ी को मार्ग में किसी भी स्टेशन पर न रोका जाये और उसे सीधा लाइन क्लियर देते हुए सुरक्षित रूप से देहली आने दिया जाये। स्टेशनों पर सेना का अच्छा प्रबन्ध था और गाड़ी बड़े वेग से चली जा रही थी।

"अब सम्भवतः गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकेगी नहीं।" रमेश बाबू ने बुजुर्गवार की ओर संकेत करके कहा।

"शायद।" कुछ दबी सी ज़बान से बुजुर्गवार बोले। उनके हृदय का साहस समाप्त हो चुका था। लाहौर में देखे हुए दृश्य उन्हें रह-रह कर याद आ रहे थे और अपनी कायरता पर उन्हें क्रोध आ रहा था कि क्यों उन्होंने उन बेचारे दो हिन्दुओं को अपनी आँखों के सामने मरते हुए देखा और उन्हें बचाने का तनिक भी प्रयास नहीं किया।

"शायद नहीं, मेरा तो विचार है कि मुसलमान यात्रियों को सुरक्षित रूप से देहली पहुँचने में सुविधा देने के लिये ही यह भारत-सरकार ने किया है। वहां पर सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध होगा। पूर्वी पंजाब क्योंकि पश्चिमी पंजाब से मिला हुआ है और वहाँ पर नित्य ही लाहौर इत्यादि के आस पास के व्यक्ति अपने धन, जन की आहूतियाँ देकर भागे आ रहे हैं इस लिये उनके दिलों की दहकती हुई ज्वाला ने इस प्रान्त के प्रांत को ज्वाला-ग्रस्त कर दिया है। यहाँ पर मुसलमानों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हुए भी सरकार को विशेष सफलता नहीं हो रही है। इसी लिये दिल्ली में शरणार्थी कैम्प बनाये हैं।" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"तुम्हारा विचार ठीक ही है बेटा ? यदि यह गाड़ी कहीं मार्ग में न रुकी तो शायद है कि मैं अपनी बच्ची से एक बार मिल सकूं। मेरी बेटी रशीदा दिल्ली में अकेली ही है। मेरा दिल चाहता है कि मैं पर लगाकर उसके पास पहुँच जाऊँ।" बड़ी ही घबराहट और विकलता के साथ बुजुर्गवार बोले।

"आप विश्वास रखिये बुजुर्गवार कि मैं आपको सुरक्षित रूप से वहाँ पहुँचा दूंगा। इसमें चिंता की कोई बात नहीं। इन लूटमार करने वालों में साहस की कमी होती है। यह केवल निहत्थे और असहायों पर ही वार कर सकते हैं। मेरे खूनी रिवालवर की गोली के सामने सीना लगाना इनके बूते का काम नहीं है।" तनिक अभिमान के साथ रमेश बाबू ने कहा।

"मुझे यकीन है बेटा !" बुजुर्गवार बोले और फिर चुप होकर सहमे हुए से एक ओर को बैठ गये। उनका साहस समाप्त हो चुका था और निराशा में केवल रमेश बाबू ही एक उनकी आशा थी। गाड़ी अपनी पूरी रफ़तार पर चली जा रही थी स्टेशन पर स्टेशन छोड़ती हुई अपनी मस्तानी चाल में धकाधक २ न उसे छुरे का भय था और न गोली का, न उसे पाकिस्तान में जाने से एतराज़ था और न हिन्दुस्तान में। वह मानो धार्मिक बखेड़ों से कोसों दूर थी और अपने कर्त्तव्य में संलग्न।

(६)

आज़ाद शांता को लेकर हवाई अड्डे पर आ पहुंचा था। अभी जहाज़ छूटने में आधा घण्टा बाकी था। तीनों ने रेस्टोरेन्ट में बैठकर चाय पी। छोटी शांता को बड़ी शांता ने पिछले दो दिन इतने प्यार से रखा था कि वह अपने

माता पिता को भूल सी गई थी और अब बड़े उत्साह के साथ इधर उधर की बातें छांट रही थी।

"वहां पहुँचते ही पत्र लिखना शांता ! और साथ ही रमेश बाबू का पता निकालने का भी प्रयत्न करना। मेरा ख़्याल है कि वह या तो अमृतसर गये हैं, या दिल्ली। दो जगह के अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते।" आज़ाद ने चाय की प्याली मेज़ पर रखते हुए कहा।

"आप आशावादी प्रकृति के हैं भैया ! वस्तु-स्थिति के दूसरे पहलू पर आप कभी दृष्टि डाल कर नहीं देखते। भगवान् करे कि आपके शब्द सत्य हो जायें; परन्तु मेरी आशाओं के स्वप्न तो बिलकुल समाप्त हो चुके हैं। केवल आपके प्रोत्साहन भरे शब्द कभी-कभी मेरे निराशापूर्ण जीवन में एक ज्योति का संचार कर देते हैं। अन्यथा हर समय ही वहां तो अन्धकार छाया रहता है।

"आपने यह खिलौना जो मुझे लाकर दिया है," छोटी शांता का प्यार से मुख चूमते हुए शांता ने कहा, "अब यही मेरे जीवन का अवलम्ब है। मैं अपने जीवन का समस्त प्यार इसी पर केन्द्रित कर चुकी हूँ।" एक गम्भीर श्वास खींच कर शांता बोली और उसने अपनी गर्दन नीचे को झुका ली।

"नहीं शांता ! नहीं। मैं जो कहता हूँ वह कोरा स्वप्न नहीं रमेश बाबू के जीवन का अवलोकन है। मैं रमेश बाबू को भली प्रकार जानता हूँ। साधारणतया उन्हें पकड़ लेना ख़ालाजी का घर नहीं है। सन् बयालीस में उन्होंने पुलिस के छक्के छुड़ा दिये थे। जिस समय वह भेष बदलते थे तो कोरे पठान मालूम होते थे। मुझे अपनी और रमेश बाबू की वह पेशावर-यात्रा अभी तक नहीं भूली है जब चार बार पुलिस ने उन्हें ग़ौर से देख देख कर छोड़ दिया था। उसकी बोल-चाल, रंग-ढंग सब आवश्यकता के अनुसार बदल जाते थे।" आज़ाद ने हँसते हुए कहा और एक प्रसन्नता का वातावरण बनाने की चेष्टा की।

"परन्तु उस समय बचना होता था भैया केवल पुलिस से और आज तो पाकिस्तान का बच्चा-बच्चा पुलिस बना हुआ है। सभी की नज़रों में धूल झोंकना कोई साधारण बात नहीं।" गम्भीरता पूर्वक शांता ने कहा।

"नहीं शांता यह बात नहीं है। पाकिस्तान के सभी मुसलमान ऐसे नहीं हैं। यहां बाल बच्चों वाले आदमी भी रहते हैं। तुम प्रेम के आवेश में ऐसा कह रही हो। पाकिस्तान से माता के हृदय, पिता के हृदय, बहिन के हृदय, भाई के हृदय, स्त्री के हृदय अभी समाप्त तो नहीं हो गये हैं। जो चीज़ इस समय समाप्त सी दिखलाई देरही है वह है इन्सानियत और उस इन्सानियत पर इसवक्त

शतान ग़ालिब हो रहा है। लेकिन शैतान का ज़ोर सदा बना रहे, यह मुमकिन नहीं हो सकता। गुस्से में कभी कभी पिता अपने पुत्र को मार डालता है, पति अपनी स्त्री को मार डालता है, परन्तु क्या गुस्से का शैतान सिर से उतर जाने पर उसे दुःख नहीं होता? वह अपने किये काम पर अफ़सोस नहीं करता? उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है अपनी करतूतों पर। यही दशा पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के हर बशर की होगी। जब यह भूत उतर जायेगा और इन्सान इन्सानियत में आजायेगा तो वह देखेगा कि उसने शैतान के पंजे में फँस कर क्या-क्या गुनाह किया और वह पशेमान होगा अपनी काली करतूतों पर। उसका सिर झुक जायेगा और वह गालियां देगा उन गुमराह करने वालों को जिन्होंने यह दुश्मनी और फूट का आपस में बीज डाला। जो लोग आज इन काली करतूतों के सरग़ना बन कर अपनी खुदग़र्ज़ी का शिकार बना रहे हैं बेचारे बेगुनाह इन्सानों को, वह लोग इन्सानों की नज़रों से हमेशा के लिये गिर जायेंगे और आने वाला इन्सान इन हैवानों के मुंह पर थूकेगा और दुखी होगा यह जान कर कि यह नापाक और गुमराह लोग कोई और नहीं बल्कि उनके अपने ही बुज़ुर्गवार हैं।" कहते कहते आज़ाद एकदम शांत होगया। उसकी आंखों से अशांति की ज्वाला निकल रही थी और उसका मन तिलमिला रहा था उस वातावरण में।

"तुम ठीक कहते हो भैया! लेकिन आज तो सर्वनाश हो रहा है। क्या आज की कमी कभी कल पूरी कर सकेगा? क्या आने वाले उस पश्चात्तप से वर्तमान निर्दयताका खून से सना हुआ आँचल धुल सकेगा? क्या वर्तमान हृदय-हीनता आने वाली करुणा से समाप्त की जासकेगी? मेरा तो मस्तिष्क काम नहीं करता भैया! कुछ समझ में नहीं आता कि अन्त में क्या होकर रहेगा? क्या भारतवर्ष की यही दुर्दशा होनी थी? क्या स्वतन्त्रता का मूल्य इस रूप में चुका रहा है भारत?" करुणा भरे स्वर में शांता कहती जा रही थी। उसकी आँखें सूखी हुई थीं और मानो उनमें रहने वाले आशाओं के प्रेम विन्दु भी सूख कर समाप्त हो चुके थे। हृदय विदीर्ण हो रहा था और जीवन में निराशा व्याप्त हो चुकी थी।

"यह वक्त की ज़रूरत है बहिन और जो कुछ हो रहा है सब ठीक हो रहा है। एक बड़ी ग़लती करके जब इन्सान के टक्कर लगती है तो वह टक्कर इतनी ज़ोरदार होती है कि वह तो क्या उसकी आने वाली औलादें भी उसे याद रखती हैं मरते वक्त वह अपने बच्चों से भी कह जाता है कि वह उस ग़लत रास्ते पर न

चलें जहां उसे टक्कर लगी थी। आज वही टक्कर लग रही है भारत और पाकिस्तान की इन्सानियत को। पागल का इलाज बिजली से किया जाता है बहिन! उसे एक इतना बड़ा झटका दिया जाता है कि वह बेहोश होकर गिर पड़ता है और इस झटके से उसकी अक्ल ठीक हो जाती है। भारत और पाकिस्तान के पागल-इन्सान का खुदा यह इलाज कर रहा है। यह इतना बड़ा झटका है कि दिमाग़ खुद बखुद सही काम करने लगेगा। कभी कभी गहरे सदमे से भी पागलपन दूर हो जाता है। यह वही गहरा सदमा है जो उस पागलपन को दूर भगा देगा। तुम मुझे आशावादी [Optimist] कहा करती हो बहिन! सो ठीक ही है। मुझे तो इस बर्बादी में आबादी के आसार दिखलाई दे रदे हैं, इस परेशानी में आसानी झांकती नज़र आती है, इन मुर्दा लाशों में ज़िन्दा बच्चे निकलते दिखलाई पड़ते हैं, इन खंडहरों में आलीशान और शानदार इमारतें चमक रही हैं, इस फूट और दुशमनी में प्रेम और मिलन की झांकी मिलती है और क्या कहूँ बहिन! इस बटवारे में एक बहुत बड़े और स्थाई मेल का नक्शा दिखलाई दे रहा है। इसीलिये मैं कभी कभी खुश होता हूँ इस पागलपन को देख कर और कभी कभी दुखी, कभी रोता हूँ और कभी हँसता हूँ।" आज़ाद बोला।

"जो हो भय्या! पर इस समय तो जो हो रहा है वह आँखों से नहीं देखा जाता। जी मुंह को आता है बर्बाद भाइयों की दर्दभरी कहानियां सुन-सुन कर। कितनी स्त्रियां अपने पतियों से बिछुड़ गईं, कितने बच्चे अनाथ हो गये, कितनी माताओं ने अपने लालों को अपनी आंखों के सामने खोदिया, कितने पिताओं से उनकी सन्तानें छीन-छीन कर मौत के घाट उतार दी गईं? इन दृश्यों से तो तन कांपने लगता है और सिर चकरा जाता है। समझ में भी नहीं आता कि आज के मानव को हो क्या गया है? क्यों उसने इस प्रकार मानवता को खोकर दानव प्रवृत्तियों को अपना लिया है?" शान्ता ने कहा।

इसी प्रकार बातें चल रही थीं कि हवाई जहाज़ के चलने का समय हो गया। सभी यात्रियों को इसकी सूचना मिल गई। तीनों उठ खड़े हुए और जहाज़ की ओर चल दिये। इस समय यह बिदा हो रहे थे। जब शांता चलने लगी तो आज़ाद ने जेब से निकाल कर एक नोटों की गड्डी उसे दी और बोला, "बहिन! किसी प्रकार की चिंता न करना। परिस्थिति हमेशा यही नहीं रहेगी। ठीक परिस्थिति होने पर मैं हिन्दुस्तान आऊँगा, अवश्य आऊँगा और हाँ वह मेरा काम मत भूल जाना शांता!"

"आप का क्या काम भय्या ?" बड़े आश्चर्य से शांता ने पूछा ।

"रमेश बाबू की तालाश ।" दिल भारी करके गंभीर स्वर में आज़ाद ने कहा।

शांता चुप चाप एक क्षण खड़ी रह गई और फिर छोटी शांता को साथ लेकर धीरे-धीरे तख्ते पर से होकर हवाई जहाज़ में जा बैठी । शांता की सीट के पास शीशा लगा हुआ था; उसी में से वह आज़ाद को झांक रही थी और आज़ाद की नज़रें भी उसी शीशे पर टिकी हुई थीं । आंखें दोनों की डबडबाई हुई थीं और दिल भारी । आज़ाद ने उसी शीशे में से शांता को अपनी धोती के आंचल से अपनी आंखें पोंछते हुए देखा ।

जहाज़ अब आकाश में उड़ रहा था । आज़ाद सीधा आकर अपनी कार में बैठ गया और अपने घरकी ओर चल दिया । उसका मन आज बहुत उदासीन था लाहौर में उसके केवल दो ही साथी थे, एक रमेश बाबू और दूसरी शांता । रमेश बाबू पहिले ही लापता हो चुके थे और आज शांता भी उसे छोड़ कर चली गई ।

शांता उसे भाई कहती है और वह उसे बहिन । वह शांता को दिल से प्यार करता है, उसे पाना चाहता है सच्चे दिल से, सच्चे हृदय से परन्तु उसके सामने किसी भी प्रकार का प्रस्ताव रखने का उसमें साहस नहीं । उस समय भी नहीं जब कि वह शांता की नज़रों में मनुष्य नहीं देवता बन गया था । बहिन होने का रिश्ता विवाह होने से पूर्व का होता है, बाद का नहीं । यों तो संसार की सभी लड़कियों को बहिन के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है परन्तु अवसर आने पर उनमें से किसी एक के साथ विवाह भी हो सकता है । फिर धर्म के संकुचित विचारों की सीमा से आज़ाद अपने को स्वतंत्र पाता था और वह था भी । बहिन से शादी न करना इत्यादि प्रतिबन्ध सब उनके लिये धार्मिक विडम्बना मात्र हैं । यह सब प्राचीन रूढ़ियां हैं । जो व्यक्ति इनका खंसन करके चलता है उसे इनसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं ।

यह पत्थर जैसे विचार रखने वाला, विचारों पर प्राणों तक की आहुति देने में लेश मात्र भी संकोच न करने वाला आज़ाद शांता के सामने आकर न जाने क्या हो जाता था ? कभी उसका कोई संकेत मात्र भी इस प्रकार का न होता था कि वह शांता को प्राप्त करना चाहता है और उसे प्रेम करता है । प्रेम वह उसे अवश्य करता है, यह शांता से छुपा हुआ रहस्य नहीं था परन्तु एक भाई भी अपनी बहिन को प्रेम करता है, एक पिता भी अपनी पुत्री को प्रेम करता है और एक स्त्री भी अपने पति को प्रेम करती है । इनमें यह कहना कठिन है कि

इनमें किस प्रेम की मात्रा अधिक है ? सभी अपने अपने स्थान पर मान्य और पूर्ण हैं परन्तु स्त्री और पुरुष के प्रेम से भाई बहिन और पिता पुत्री के प्रेम अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें केवल प्रदान की भावना है आदान की नहीं, त्याग की प्रेरणा है अधिकार की नहीं। स्त्री और पुरुष में आदान प्रदान दोनों समान रूप से चलते हैं। लोभ उसमें विशेष महत्व के साथ सामने आता है। आकर्षण दोनों ओर होता है और साथ ही कर्त्तव्य की दृढ़ता भी।

शांता के दृष्टिकोण में आजाद उतने ही बड़े आदर्श का व्यक्ति था कि जो देना जानता है लेने की इच्छा न रखते हुए, जो खो सकता है पाने की इच्छा न रखते हुए। वह कितना बड़ा है, कितना महान ?

इन्हीं विचारों में निमग्न आज़ाद अपने घर पर पहुंच गया। कार गैराज में खड़ी कर दी और सीधा अपने कमरे में जा कर बैठ गया। आज उसका मन विचलित था, कुछ अशांत और उछटा हुआ सा। वह कपड़े उतार कर चुप चाप पलंग पर लेट गया मानो चित्त को शांति देना चाहता था पर वह उसे न मिल सकी। वह शांता को बार बार देख रहा था कभी कुछ स्वप्निल अवस्था में और कभी कुछ भ्रम में। इसी प्रकार न जाने कितना समय निकल गया।

(७)

"बेटा तुमने कल मेरी जान बचाली वरना वह लोग मुझे ज़रूर मार डालते। मैं तुम्हारा तहदिल से एहसानमन्द हूँ, और जिंदगी भर रहूँगा।" बजुर्गवार ने बड़ी दीनता से कहा।

"वह मेरा कर्त्तव्य था बजुर्गवार ! मेरी मानवता की प्रेरणा थी। इन्सानियत का आग्रह था। गाड़ी जब लाहौर से चली थी, तो उन गुन्डों ने दो निर्दोष घबराये हुए हिन्दुओं के पेट में छुरा भौंक कर इस्लाम के नाम पर कलंक लगाया था। मैं उस समय भी लहू का घूंट पीकर रह गया था। यदि वहां मैं कुछ कहने का साहस करता तो सम्भवः तपरिस्थिति मेरे अनुकूल न रहती और मेरा साहस दो के साथ एक और तीसरे के भी प्राणों का घातक बन जाता। यही कारण था उस समय मेरे चुप रहने का। यहां यदि मैं उन हत्यारों के हाथों मारा भी जाता तब भी उसमें कोई भ्रम न रहता। एक मुसलमान को बचाने के लिये यदि दस हिन्दुओं के भी प्राण चले जाते तो यह भारतीय-मानवता का उच्च-आदर्श होता, गिरावट नहीं। आदर्श की प्राप्ति के लिये प्राणों की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये, यही महात्मा गांधी का आदेश है। भारत की सरकार अपने इस

कर्त्तव्य का पूर्ण प से पालन कर रही है। यह जो कुछ भी गुन्डागर्दी कहीं-कहीं पर दिखलाई देती है यह पाकिस्तान में हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की प्रतिक्रिया मात्र है।

"तुम ठीक कह रहे हो बेटा! इस बटवारे ने हम लोगों से इन्सानियत ही छीन ली है। हमें हैवान बना दिया है। हम लोगों ने उस वक्त आंखें मीचकर पाकिस्तान के लिये राय दी और ख्वाब देख रहे थे कि न जाने मुसलमानों के लिये पाकिस्तान का तोफ़ा कितना खुशनुमा होगा? लेकिन आज उसकी असलियत हम लोगों पर खुली है। हमारे जान-माल की हिफ़ाज़त भी आज पाकिस्तान नहीं कर सकता। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं पर जुल्म ढाने से कभी भी हिन्दुस्तान के मुसलमानों का भला नहीं हो सकता।" बज़ुर्गवार बोले।

"कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं ने भारत की हिन्दू और मुसलमान जनता को कितने दिन तक एकता का पाठ पढ़ाया? गले फाड़-फाड़ कर चिल्लाया कि राजनीति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। योरोप में जर्मनी और इङ्गलैन्ड का युद्ध हुआ और कितनी भयंकर परिस्थितियां पैदा हो गईं। क्यों नहीं वहां धर्म ने बीच में पड़कर संधि का प्रस्ताव सामने रखा और उस ज्वाला को शांत किया? आख़िर लड़ने वाले दोनों ओर ईसाई ही तो थे। जापान ने चीन पर अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये क्या कुछ उठा कर रख छोड़ा था? क्यों नहीं धर्म ने उन्हें मानवता और इन्सानियत का पाठ पढ़ाया? आख़िर दोनों बौद्ध धर्मावलम्बी ही तो थे। भारत निवासी इस कठोर सत्य को भुलाकर अपने पुराने दकियानूसी विचारों के आधार पर आपस में बैर की भावना को बराबर हृदय में पालते रहे। साथ-साथ इस घृणित भावना को सहारा और शक्ति देने वाली परिस्थितियां भी उन्हें मिलती गईं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उखड़ती हुई शक्ति का अंतिम जादू अपना असर कर ही रहा था। कुछ व्यक्तिगत प्रलोभन भी साथ साथ अपना कार्य कर रहे थे। जनता के ठेकेदार नेता मुसलमानों के शुभचिंतक बनकर पाकिस्तान का चमकदार नारा मुसलमान जनता के सामने ले आये। सदियों की गुलाम पड़ी हुई जनता इसके वास्तविक रहस्य को समझने में असमर्थ रही और फल जो होना था सो हुआ।" रमेश बाबू ने कहा।

"सच है बेटा? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि मुसलमानों को पाकिस्तान की इस असलियत का पहिले पता चल जाता तो कम से कम यू० पी० सी० पी०, बिहार इत्यादि प्रांतों का तो एक भी मुसलमान मुस्लिम लीग की राय

नहीं देता। एक से लाख तक नहीं देता, नहीं देता और हर्गिज-हर्गिज़ नहीं देता।" बजुर्गवार के मुख पर इस समय क्रोध की भावना थी और वह समस्त मुस्लिम-जाति के प्रतिनिधि के रूप में अपने किये गये काय पर पश्चाताप कर रहे थे। उन्हें खेद था कि क्यों अनजाने में उनसे वह भूल उस समय बन पड़ी कि जिसका कुपरिणाम इतना भयंकर हुआ।

इसी प्रकार बैठे हुए बातें हो रही थीं। सुबह के आठ बज चुके थे। यह मकान दिल्ली सब्ज़ी मंडी में था और बुजुर्गवार का अपना ही मकान था। यह मलिक खान्दान के बजुर्ग थे जिनके बुजुर्गों ने सब्ज़ीमंडी की कभी नींव रक्खी थी इस मकान की यादगार लालक़िले और जामामस्जिद से कुछ कम पुरानी नहीं थी। इसी मकान पर कितने ही हिन्दू और मुसलमान सब्ज़ी के सौदागर नित्य आ आकर अपने झगड़ों का निपटारा किया करते थे। यदि यों कह दिया जाये कि दिल्ली की सब्ज़ीमंडी का यह मकान न्यायालय था तो कुछ अनुचित न होगा। यहां का न्याय सरकारी न्याय की अपेक्षा अधिक मान्य, स्थिर और बिलाकोर्ट फ़ीस के होता था।

"रशीदा! चाय नहीं बनी बेटी अभी।" बुजुर्गवार ने खड़े होकर अन्दर के दरवाज़े के पास जाते हुए कहा और फिर आकर रमेशबाबू के पास बैठ गये। फिर मुस्कराकर कहने लगे, "बेटा रमेश! तुम्हें हमारे घर चाय पीने में तो, मैं समझता हूँ, कोई इतराज़ नहीं होगा। हम लोग काफी सफाई से खाने की चीजों को रखते हैं और मेरे स्वयं बहुत से हिन्दू दोस्त हैं जो अकसर यहां आकर चाय पिया करते हैं। मैंने रशीदा से कहा है कि वह खुद सफाई के साथ चाय बनाये।"

"आपने व्यर्थ के लिये इतना कष्ट किया। मुझे तो चाय का कोई विशेष शौक नहीं है। चाय पीने में कोई ऐतराज़ तो हो ही नहीं सकता मुझे। मेरे एक मित्र थे मिस्टर आज़ाद लाहौर में। मैं उनके घर अक्सर चाय पिया करता था। बड़ा अफसोस है कि मैं चलते समय उनसे न मिल सका।" रमेश बाबू बोले।

"क्यों बेटा? क्या उन पर भी तुम्हें शुभा हो गया था? हो सकता है ऐसे खतरनाक वक्त में।" एक लम्बी सांस खींच कर बुजुर्गवार बोले।

"यह बात नहीं है बुजुर्गवार! शुभे का तो कोई कारण ही नहीं हो सकता और यदि मैं उस व्यक्ति के हाथों मर भी जाता तब भी मेरी आत्मा को शांति ही मिलती। परन्तु यह असम्भव था। धर्म का पागलपन उसे छू तक नहीं गया था। वह एक सच्चा मानव है और साथ ही मुसलमान भी। आज़ाद का घर एक ऐसे

मुहल्ले में है कि वहां तक शायद मेरी देह का एक टुकड़ा भी न पहुँच पाता। केवल इसीलिये मैंने वहां जाने का विचार स्थगित कर दिया और मैं सीधा स्टेशन की राह पर हो लिया।" रमेश बाबू बोले।

इसी समय रशीदा चाय लेकर आगई। चाय सामने मेज़ पर रख कर रशीदा एक ओर कुर्सी पर बैठ गई।

"चाय बनाओ बेटी रशीदा।" बुज़ुर्गवार ने कहा।

"बनाती हूँ अब्बाजान" कहकर रशीदा ने दो प्याली चाय तैय्यार कर दी।

"बेटी रशीदा! यही वह रमेश बाबू हैं जिन्होंने मुझे कल बचा कर यहां तक पहुँचाया था। वरना शायद मेरी लाश भी तुम्हें देखनी नसीब न होती।" कहते हुए बज़ुर्गवार का गला भर आया और वह शांत हो गये। रशीदा ने एक बार रमेश बाबू के मुख पर देखा और फिर कुछ लजाई सी, शरमाई सी नज़रों को नीचे कर लिया।

रमेश बाबू ने ज्योंही चाय की प्याली हाथ में उठाई कि बाहर सड़क पर एक बहुत बड़ी गड़बड़ का शब्द सुनाई दिया। एक अजीब वहशियाना शोर-गुल था, वैसा ही जैसा ही क़रीब-क़रीब रमेशबाबू लाहौर में देखकर आये थे। रमेश बाबू ने प्याली ज्यों की त्यों मेज़ पर रख दी और उठ कर खड़े हो गये। इतने में नौकर ने आकर सूचना दी कि बाज़ार में बड़ा हत्याकांड शुरू हो चुका है। मुसलमानों की अब खैर नहीं। उन पर बुरी तरह शामत आई है। साथ ही यह भी सूचना दी कि कहीं पर एक मकान को पुलिस ने घेर रखा है और अन्दर बाहर दोनों ओर से लगातार गोलियां चल रही हैं।

"अब यहां पर ठहरना उचित नहीं है बुज़ुर्गवार! चलिये मैं आप लोगों को किसी सुरक्षित स्थान पर ले चलूं, वरना पागल और दीवानी भीड़ के सामने शक्ति काम नहीं देगी और व्यर्थ के लिये प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।" रमेश बाबू शीघ्रता से बोले।

"लेकिन बेटा! चलेंगे भी आख़िर कहां? कुछ यह भी सोचा है तुमने। जब यहां पर ख़तरा है तो शहर में अमन कहां पर होगा?" निराशा पूर्ण स्वर में कह कर बज़ुर्गवार ने रमेश बाबू के मुख पर देखा।

"आप शीघ्रता कीजिये बज़ुर्गवार! जो कीमती सामान और रुपया पैसा है वह साथ ले लीजिये और तुरंत तय्यार हो जाइये वरना—और हां।" नौकर की ओर संकेत करके कहा "तुम दरवाज़े पर जाकर खड़े हो जाओ! जब भीड़ का हल्ला इस तरफ़ को आये तो सूचना देना।" रमेश बाबू बोले।

"बहुत अच्छा हुजूर।" कहकर नौकर दरवाज़े पर चला गया।

रशीदा ने एक बक्स में सब सामान भर लिया और विद्युत की गति से आकर बोली "अब्बाजान सब तैय्यार है, अब देर न कीजिए, मुझे डर लग रहा है। न जाने क्यों मेरा दिल, घबड़ा रहा है।"

"घबराने की क्या बात है बहिन! जब तक इस शरीर में प्राण हैं तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा।" रमेशबाबू ने यह शब्द मुंह से निकाले ही थे कि दरवाज़े पर एक ज़ोर की चीख सुनाई दी। चीख़ नौकर की थी और ज्योंही यह तीनों द्वार की ओर बढ़े तो देखा कि उसकी जांघ से खून बह रहा था और वह उसे पकड़े बैठा था। रमेश बाबू ने शीघ्रता से अपनी धोती का पल्ला फाड़कर घाव पर एक पट्टी बांध दी और उसे सहारा देकर खड़ा किया।

"आप लोग ज़रा शीघ्रतापूर्वक चलिये वरना वह जो भीड़ आती हुई दिख-लाई दे रही है उससे बचकर निकलना कठिन हो जायेगा। मकान को जल्दी से ताला लगा दीजिए।" रमेश बाबू बोले।

"ताला लग गया बेटा! चलो।" बुज़ुर्गवार बोले और रशीदा तो अपना अटैचीकेस लिये पहिले से ही तैयार खड़ी थी। चारों ज़रा तेजी से आगे बढ़ चले। रमेश बाबू सबसे आगे आगे थे। चारों ओर भयानक वातावरण था। कई व्यक्ति छुरों से घायल हुए सड़क के इधर उधर पड़े हुए थे। पुलिस और फौज बराबर प्रबन्ध करने में लगी थीं परन्तु अनियन्त्रित जनता पर काबू पाना उनके लिए कठिन हो रहा था। गोलियों की ध्वनियाँ जहाँ तहाँ पर सुनाई दे रही थीं। कुछ व्यक्ति अपने प्राण बचाकर भाग जाने के फिराक़ में थे और कुछ एक विचित्र भयातुर परिस्थिति में स्थम्बित से खड़े खड़े न जाने क्या विचार कर रहे थे। गुण्डे और बदमाशों की खूब बन आई थी। लूट का माल लिये कुछ आवारा लोग इधर उधर भागते दिखलाई पड़ रहे थे। भले आदमी इस दिल्ली की बदलती हुई दशा पर रह-रह कर हाथ मलते थे परन्तु उस परिस्थिति में बद-माशों के विपरीत एक शब्द भी मुंह पर लाना अपनी जान-माल को संकट में डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। हिन्दू धर्म का भूत प्रेत बनकर जनता के सिर पर नाच रहा था और यह हिन्दू समाज के कलंक, आवारा और बद-माश बने हुए थे उसी पापी प्रेत के गण जिनका ताँडव नृत्य समाज की व्यवस्थित श्रृंखला को छिन्न भिन्न करने पर उतारू हो रहा था। मानव की दानव मनोवृत्तियों का नग्न नृत्य हो रहा था चारों ओर।

"'शीघ्रता से पग बढ़ाकर जल्दी चलो बहिन रशीदा ! और लाओ यह अटेची मुझे दे दो।" रमेश बाबू ने तनिक ठिठकते हुए कहा।

"आप तकलीफ़ करेंगें" कहते हुए रशीदा ने अटैची रमेश बाबू के हाथों में देदी और तनिक तीव्र गति से चलना प्रारम्भ कर दिया। इन दोनों के साथ दो बूढ़े व्यक्ति थे और फिर उनमें से एक घायल। उनका शीघ्रता से चलना कठिन था। काफ़ी प्रयत्न करने पर भी वह साथ देने में असमर्थ रह जाते थे। रमेश बाबू और रशीदा को बार बार उनका साथ देने के लिए रुकना पड़ता था। रमेश बाबू चाहते थे कि वह किसी तरह पुलिस स्टेशन तक कुशलता-पूर्वक पहुंच जायें परन्तु एक बड़ी भारी भीड़ बराबर उनकी ओर बढ़ती हुई चली आ रही थी रमेशबाबू उसे देखकर बोले, "बहिन रशीदा ! लो अब सावधान होजाओ ! हम लोगों का अब पुलिस स्टेशन तक पहुँचना असम्भव है। तुम मेरे पीछे रहना और यदि मृत्यु का भी सामना करना पड़ जाये तो भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।" फिर बुजुर्गवार की ओर मुंह करके बोले, "क्षमा करना बुजुर्गवार कल मैं आपकी रक्षा करने में समर्थ रहा परन्तु आज...... परन्तु मैं अन्तिम समय तक अपना कर्त्तव्य पालन करूंगा। जो भगवान की इच्छा होगी वह अवश्य होकर रहेगा। यह वह समय आ पहुँचा है कि जिसे टालने से टाला नहां जा सकता। अब और आगे बढ़ना व्यर्थ है। आप लोग मेरे पीछे रुक जाइये।"

"बेटा..." केवल इतना कहकर बुजुर्गवार की ज़बान रुक गई और उनका नौकर तो मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

रमेश बाबू ने दूर से ही भीड़ को ललकारा और भीड़ वहीं पर ठहर गई।

"बस अब एक पग भी आगे बढ़ाने का प्रयत्न न करना। आगे बढ़ने वाले को मेरी गोली का निशाना बनना पड़ेगा।' रमेश बाबू ने एक हाथसे अपने सिर की चोट की गाँठ खोलकर उसे ऊपर को उठाया और उसके दूसरे हाथ में गोलियों से भरा रिवालवर था। "मैं एक पक्का हिन्दू हूँ। मेरा सर्वस्व लाहौर के हत्याकाण्ड में समाप्त हो चुका है। मैं कल ही लाहौर से यहाँ आया हूँ, परन्तु मैं अपने प्राण देकर भी मानवता के लिए इनकी रक्षा करूंगा। इन तीन मुसलमानों के प्राण बचाने के लिए यदि मुझे बारह और और तेरहवीं अपनी भी आहुति देनी पड़ जाएगी तो मैं सहर्ष दूँगा। मुझे उसमें कोई संकोच न होगा।

मतवाले दीवानों की भीड़ थी, क्रोध से पागल और धर्मान्ध लुटेरों की गुमराह की हुई। रमेश बाबू के कहने पर एक क्षण तो ठिठकी परन्तु तुरन्त ही किसी

शोदे ने पीछे से कहा, "हाँ हाँ सुन लिया तेरा उपदेश। पाकिस्तान में हमारे भाइयों का आँखें मींचकर संहार हुआ है। उसका बदला हम यहाँ अवश्य लेंगे। चाहे हमारी कितनी भी जानें क्यों न जायें" भीड़ को उत्तेजना देने के लिए ये शब्द फूंस में चिन्गारी का काम कर गए। इसी समय एक दूसरा लुटेरा पीछे से ही कह उठा, "हम दिल्ली से मुसलमानों का बीजनाश करके रहेंगे। भाईयो! आपको गौमाँस की कसम है और हिन्दू धर्म की दुहाई है। आप समझ लीजिये कि जो लोग इस समय मुसलमानों का साथ दे रहे हैं वह जयचन्द से किन्हीं भी मानों में कम नहीं हैं। वह हिन्दू धर्म के कलंक हैं। हमें चाहिये कि हम मुसलमानों से पूर्व उन्हें ही मौत के घाट उतार दें।"

फिर क्या था 'हर हर महादेव, का नारा लगा। भीड़ में से कुछ एक छुरेबाज़ चील की तरह उन पर झपट पड़े। रमेशबाबू एक मजबूत दीवार बने उनके सम्मुख खड़े थे। रशीदा रमेशबाबू के बिल्कुल पीछे थी। भीड़ ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया। रमेशबाबू के रिवालवर की एक, दो तीन गोलियाँ चलीं परंतु वह दीवाने भी मानो आज मौत से खेलने ही आये थे। एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर अपने छुरे से उस मूर्छित पड़े हुए नौकर का काम तमाम कर दिया। बेचारे बुजुर्गवार भी आघात से न बच सके। घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अब रह गए रमेशबाबू और रशीदा। रमेशबाबू के पास तक बढ़ने का साहस किसी में भी नहीं था। इतने में एक सैनिक ट्रक रमेश को अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। ट्रक में से सैनिकों ने कुछ गोलियाँ आकाश की ओर चलाईं। गोलियों का चलना था कि भीड़ काई की तरह फट गई और वहाँ पर रमेश बाबू, रशीदा, घायल बुजुर्गवार और उनके नौकर का शव पड़ा रह गया। सैनिकों ने बहुत सावधानी से उन्हें ट्रक में बिठा लिया। इस ट्रक में और भी मुसलमान थे कुछ घायल और कुछ शरणार्थी। शरणार्थी जो अभी अभी चंद घण्टे पूर्व दिल्ली के प्राचीन निवासी थे परन्तु आज थे वे दिल्ली के अपरिचित। नौकर का शव वहीं पर छोड़ देना पड़ा। बुजुर्गवार को रमेशबाबू और रशीदा अच्छी तरह सँभाले हुए थे। वह इस समय मूर्छित थे और उनकी पसली से रक्त बह रहा था। रमेशबाबू ने सैनिकोंसे प्रार्थना की कि वे लोग किसी प्रकार उन्हें शीघ्र से शीघ्र इरविन हौसपिटल पहुँचा दें तो उनकी बड़ी कृपा होगी और रमेश बाबू की इस प्रार्थना पर उन्हों ने बहुत सहानुभूति से काम लेकर मिन्टों में उन्हें हौसपिटल पहुँचा दिया।

★

(८)

"बैठी नहीं होगी मेरी मुन्नी ! देखो चाय आ गई। अच्छे बच्चे देर तक नहीं सोते हैं।" शान्ता बोली।

"अभी उठती हूँ जी जी !" आँखें मलते हुए छोटी शाँता ने कहा और वह उठकर बैठ गई।

दिल्ली की यह वह प्रभात बेला थी जिस दिन आठ बजकर कुछ मिनटों पर दिल्ली नादिरशाही हाथों से गुज़रने वाली थी। दिन पर दिन दिल्ली में पश्चिमी पंजाब के उजड़े हुए भाई कई कई दिन के फ़ाकों के पश्चात् आ-आ कर जमा होते जा रहे थे। उनके दिल में बदले की भावना प्रखर रूप से विद्यमान थी और उसका कारण था बहुत ज्वलन्त और बहुत अस्पष्ट। उनके नेत्रों से वह चित्र मिट नहीं सके थे जिनमें उनके मित्रों को, स्त्रियों को, माताओं को, बहनों को, बच्चों और बूढ़ों को उनकी आँखों के सामने अपमानित करके मौत के घाट उतारा गया था। दिल्ली में आ चुका था वह पागल पिता जिसकी फूल सी सुकुमार कन्या को उसके सम्मुख देखते २ अङ्ग भङ्ग कर दिया गया था, उसके कान, नाक, गाल और भुजाओं को काट-काट कर और अन्त में··· अन्त में क्या ? पिता ने घर का सब सामान एकत्रित करके उस पुत्री के शव को वहीं उसी मकान के साथ साथ अन्त क्रिया कर दिया था। वह घर-बार सब कुछ जलकर क्षार हो गया और अब रह गया केवल वह पिता प्रतिशोध लेने के लिए। उसके दिल में, उसके मुख पर हर समय केवल एक प्रतिशोध-शब्द था, और कुछ नहीं। दिल्ली में आ चुका था वह वीर युवक जिसको दस बदमाश गुण्डों ने कसकर उसी के मकान के स्तम्भ से बाँध दिया था और उसके बाद उसकी माँ, बहिन, स्त्री, बच्चे···सब··· उसकी आंखों ने वह सब कुछ देखा था। वह आज उतारू था केवल प्रतिशोध लेने पर और कुछ नहीं केवल प्रतिशोध। दिल्ली में आ चुके थे वह सरदार जी जिन्होंने अपने मकान को चारों ओर से घिरा देखकर पहले अपने सीने पर हाथ रखा था और फिर धैर्य से अपनी कृपाण निकालकर अपनी स्त्री और बहन का काम तमाम कर दिया और फिर बल खाता हुआ शेर की तरह उस भीड़ पर टूट पड़ा था।

परन्तु ऐसे बहुत कम थे। उपद्रवकारियों में अधिकाँश गुण्डे थे, कहीं बाहर के नहीं, दिल्ली के, जो गर्व के साथ कहते थे 'देख लिया बस पंजाबियों की बहादुरी को हमने। आज भी जो काम हम कर सकते हैं वह उनके बूते का नहीं है।' दिल्ली में व्यभिचार का अड्डा खुल गया। भांति भांति की अफवाहें दिन पर दिन

गर्म होने लगीं और अन्त में वह समय आ ही गया जब सरकार की समस्त शक्तियां भी मिलकर उस उपद्रवी कांड पर विजय प्राप्त करने में असफल हो गईं और दिन दहाड़े चाँदनी चौक, दरीबा, खारी बावली ··की दूकानों के ताले टूट गए और सड़कों पर अभी अभी ज़िन्दा फिरने वाले व्यक्तियों की लाशें दिखलाई पड़ने लगीं।" मानव से मानव भयभीत हो उठा और "शहर भर में कर्फ्यू लग गया। अखबार देते हुए हाकर ने शांता को सूचना दी।

"क्यों ?" शांता ने कुछ सकपकाये स्वर में पूछा।

"शहर भर में कुहराम मच रहा है। चारों ओर मारकाट शुरु हो गई है। जिधर भी देखो लूटमार खुले आम हो रही है" हाकर बराबर कहता जा रहा था।

"शहर में गड़बड़ हो गई यहां भी ?"शांता ने फिर एक बार पछा।

"बहुत ज़ोर की बहन जी! कहीं बाहर जाने का साहस न कीजिये वरना न जाने क्या हो जाए ? सुना है कि सब्जी मण्डी में बम बनाने का एक बहुत बड़ा कारखाना निकला है। उसे फौज ने चारों ओर से घेर लिया है और दोनों ओर से गोलाबारी हो रही है।" हाकर ने बतलाया।

"झगड़ा शहर के किस भाग में अधिक है ?" शांता ने पूछा।

'किसी भाग की न पूछिये बहिन जी! आज तो सारे शहर में आफ़त मची है लेकिन पहाड़ गंज, सब्जीमण्डी और करौल बाग में विशेष रूप से आग लगी हुई है। सुनते हैं वहाँ पर तो बहुत से मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया है। लाहौर के एक एक हिन्दू का बदला वहाँ चार-चार मुसलमानों से चुकाया जा रहा है। सुना है बहिन जी! कि वहाँ से शायद बहुत ही कम मुसलमान बच सके हैं।" हिन्दू अखबार बेचने वाला ज़रा गर्व के साथ कहता जा रहा था परन्तु शाँता का चित्त विचलित होने लगा था। चाय की प्याली ज्यों की त्यों रखी रह गई और अन्त में ठण्डी पड़ गई। शाँता इस समय न जाने किस विचार धारा में गोते लगा रही थी।

इतने में एक तीव्र हवा का झोखा आया और टेबिल पर रखे हुए हिन्दुस्तान को उड़ा कर उसने एक ओर पटक दिया। पत्र के गिरने की खड़खड़ाहट से शांता का ध्यान बदला और उसने देखा कि क्या वह वास्तव में स्वप्न देख रही है उसने वैसा ही दृश्य देखा जैसा कि लाहौर में उसके ऊपर बीत चुका था। वह देख रही थी कि एक मुसलमान के घर को बाहर से बदमाशों ने आग लगा दी है और उस घर के अन्दर एक बूढ़ा बाप और एक उसकी इकलौती कन्या हैं।

ज्यों ही गुण्डों का दल उन पर टूट कर पड़ा कि एक नोजवान ने उस युवती को आकर बचा लिया परन्तु वह उसके वृद्ध पिता की रक्षा न कर सका।

वह युवक रमेशबाबू है···नहीं···नहीं···नहीं यह भला किस प्रकार हो सकता है? रमेश बाबू की आँखों में हर समय रहने वाली प्रतिमा ने वह रूप धारण कर लिया है। यह शाँता के मन का भ्रम था नहीं···नहीं···नहीं।

"क्या नहीं जीजी?" छोटी शाँता ने खड़े होकर शाँता के गालों पर अपनी पतली सी छोटी उंगली रखकर कहा? "क्या आज चाय बिल्कुल नहीं पीओगी? तुम नहीं पीओगी तो मैं भी नहीं पीऊंगी।"

"अरे चाय अभी तक नहीं पी" आश्चर्य से एक स्वपिप्नल निद्रा समाप्त करते हुए शान्ता बोली। छोटी शांता ने कहा।

"और आप तो पी चुकी हैं शायद"?'

"हाँ मैं भी पीती हूँ" कहकर चाय की केतलीको हाथ लगाया परंतु वह बिलकुल ठण्डी हो चुकी थी। बैरा दोबारा चाय लेकर आ गया और फिर दोनों ने चाय पीनी शुरु कर दी।

"आप नहीं २ क्या कह रही थीं जीजी! क्या कोई सपना तो नहीं देख रहीं थी आप?" छोटी शाँता ने दोबारा पूछा।

"हाँ देख तो स्वप्न ही रही थी मेरी शांता! परन्तु वह सपना सत्य नहीं हो सकता। विचारों का पागलपन था, एक दीवानगी थी। कभी कभी जब"... कहती कहती शांता रुक गई।

"आप कहती कहती चुप क्यों हो गईं जीजी? कहिए ना! मैं छोटी अवश्य हूँ परन्तु समझती।"

"सब बात हो ना?"

'हाँ यही बात है जीजी।'

शाँता और अधिक कुछ न कह सकी। उसका दिल भर आया था वह मौन हो गई परन्तु पहिले की भाँति नहीं जागृत अवस्था में।

(६)

शाँता के चले आने पर लाहौर आज़ाद के लिये सूना हो गया। आज उस का एक भी साथी नहीं था पाकिस्तान में, उसके लिए सब उजाड़ था, सुनसान पाकिस्तान का स्वतन्त्रता समारोह आज़ाद के लिए कोई प्रसन्नता का वातावरण उपस्थिय नहीं कर सकता था। शहर को सजाया जा रहा था उन खण्डहरों की

छाती पर जिनकी गोद में तड़प तड़प कर मरने और फिर मरकर उस दबी हुई अग्नि में रह-रह कर झुलसने वाले मानव शरीरों की दुर्गन्धि आ रही थी। जहाँ जली और अधजली हड्डियां अभी तक तड़क-तड़क कर कह रही थीं कि इस दूषित वातावरण में यह सजावट कैसी ? आपने कौनसा ऐसा उज्जवल कार्य किया है कि जिसके लिए तुम फूले नहीं समाते और इन रङ्गीनियों से अपने को सजाने का प्रयत्न कर रहे हो ? तनिक इस ऊपर की सजावटी पौशाक को उतार कर तो देखो तुम्हारे अन्दर कितना मैल भरा हुआ है ? ज़रा इन दिल के घावों को देखो कि जहाँ पर सड़कर पीप पड़ चुकी है ? पहिले इस बीमारी का तो उपचार किया होता तभी सजावट अच्छी मालूम होती।

आज़ाद बीस दिन बाद आज घर ले जाया गया। आज़ाद का बुज़ुर्ग नौकर उसकी तीमारदारी में था परन्तु उसका चित्त परेशान था। उसे दुःख था कि यदि उस दिन आज़ाद घायल न हो जाता तो उस निरअपराध परिवार के प्राणों की रक्षा हो जाती। उसे अपना अकेलापन खल रहा था। वह विस्मरण नहीं कर सकता था उस घटना को जब पिछले ही दिन वह शाँता को शरणार्थी कैम्प में ले जा रहा था और मार्ग में शाँता ने एक गुण्डे के सिर में मोटर का हैंडिल मार कर अपनी वीरता का परिचय दिया था और आज़ाद पर होने वाले छुरे के वार को रोका था। यदि उस दिन भी शांता उसके साथ होती तो क्या मजाल थी कि वह बद-माश पीछे से आकर उसके छुरा भौंक जाता ?

शांता को भारत भेजकर आज़ाद ने ग़लती की। यदि इसी कार्य को जिसे वह अकेला कर रहा था, दोनों मिलकर करते, तो कोई कारण नहीं था कि उन्हें बहुत सफलता न मिलती और सम्भव था कि उसके साथ यह दुर्घटना भी न घटती।

इन्हीं विचारों में निमग्न आज़ाद अपने पलंग पर पड़ा था। शांता का उसे कुछ पता नहीं; रमेश बाबू का उसे पता नहीं। वह भारत जा नहीं सकता। वहां भी यही वैहशियाना गुन्ड़ा गर्दी चल रही है, जो लाहौर में है। भारत और पाकि-स्तान का तो वातावरण ही दूषित हो गया। इन्सान जानवरों से भी बाज़ी ले गये। आज़ाद को एक साथी की आवश्यकता है। वह चाहता है कोई ऐसा साथी जो उसके कार्य में उसकी सहायता कर सके, परन्तु जिधर भी वह दृष्टि डालता है उसे विष ही विष दिखलाई देता है। प्रत्येक व्यक्ति नशे से भरपूर है। हर आदमी की नसों में इतना ज़हर पैदा हो चुका है कि कोई उसकी बात सुनने के लिये तय्यार ही नहीं। अन्त में वह सिर पकड़ कर बैठ रहता है और उसे कोई साथी नहीं मिलता।

शहर धीरे-धीरे हिन्दुओं से खाली होता जा रहा है। बड़े-बड़े बाज़ारों का सब कारोबार चौपट हो गया। किसी भी बाज़ार से निकल जाओ तो मालूम पड़ता है कि मानो श्मशान भूमि में से होकर जा रहे हों।

आज़ाद ने पहिले कभी किसी जानवर को भी सड़क पर इस तरह मरा हुआ सड़ने के लिये पड़ा नहीं देखा था कि जिस प्रकार आज इन्सान की शक्लें दिखलाई दे जाती थीं। हिन्दू नाम धारी का तो बाज़ार में से होकर निकलना ही मुहाल था और सरदार जी, उनकी तो बस पूछो ही नहीं। बेचारे सरदार जी को तो कहीं छुपने का भी अवसर नहीं था। उनकी पहिचान भी सीदी-सादी थी। दाढ़ी का साइनबोर्ड उनकी पहचान कराने के लिये काफ़ी था।

आज़ाद का मस्तिष्क कोई काम नहीं कर रहा था कि अचानक पांचवें दिन उसके पास एक पत्र आया। पत्र पर हवाई जहाज़ से आने के टिकट लगे थे, यह देख वह समझा कि हो न हो यह पत्र शांता का हो और उसका मुर्झाया हुआ मुख अचानक खिल उठा। बड़ी शीघ्रता से उसने लिफाफ़ा खोला परन्तु यह पत्र शांता का न होकर रमेश बाबू का था। प्रसन्नता का कारण फिर भी कम नहीं था। रमेश बाबू के लिये आज़ाद शांता की अपेक्षा कुछ कम चिंतित नहीं था। पत्र पर रमेश बाबू का नाम देखकर उसका मुख मंडल खिल उठा और उसने पत्र पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

प्रिय आज़ाद !

आज एक माह बाद यह पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ। परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर हम लोग एक दूसरे से बिछुड़ गये। जिस समय मैं लाहौर छोड़ रहा था, तुमसे मिलने की प्रबल इच्छा होते हुए भी मैं मिलने का साहस न कर सका। इसका कारण तुम कहीं यह न समझ बैठना कि मेरा आज़ाद पर से विश्वास उठ गया था। ऐसा समझना तुम्हारी भूल होगी। मेरे विचारों से तुम भली प्रकार परिचित हो। तुम्हें याद होगा वह दिन कि जब एक दिन हम दोनों ने मिलकर इंसान बनने की क़सम खाई थी। न मैं हिन्दू हूँ और तुम मुसलमान। मैं तो उसी दिन से इन्सान बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि तुम भी अपनी क़सम को भूले नहीं होगे और अपनी पूरी शक्ति तुमने बेगुनाह इन्सानों को इस तूफ़ान से बचाने में लगाई होगी। मुझे तुमसे इसकी पूर्ण आशा है।

चलने से पूर्व मैं शांता की कोठी पर गया था परन्तु वहां तो श्मशान भूमि बनी हुई थी। उसके माता-पिता और नौकर के शव पृथ्वी पर पड़े थे और शांता का कहीं पर भी पता नहीं था। मेरे पास न तो उस समय खोज निकालने का

कोई साधन ही था और न वहाँ पर अधिक ठहरने का अवकाश ही । मेरा दिल घबड़ा रहा था और मैं उसी दशा में सीधा स्टेशन पर पहुँच गया ।

रास्ते की कहानी कभी फिर जीवन में मिलने पर सुनाऊंगा परन्तु हां इतना अवश्य बतला दूं कि रेल गाड़ी में मेरी भेंट एक वृद्ध मुसलमान से हो गई जो विचारों का निहायत पाक आदमी था। पाकिस्तान की सरहद पार करके जब हम लोग हिन्दुस्तान में आये तो दशा यहां की भी बहुत खराब थी। पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब किसी भी दशा में कुछ कम नहीं था। दानव मनोवृत्तियां दोनों ओर अपनी प्रबलतम शक्तियों के साथ इन्सानियत से खिलवाड़ कर रही थीं। इन्सान बन गया था उनके हाथों की कटपुतली। पग-पग पर निराशा और खुदग़र्ज़ी मुझे दिखलाई दी। एक बार मैं कांप गया परन्तु तुरन्त ही मैंने अपने समस्त साहस को बटोर कर अपने दिल से कहा कि रमेश ! तुझे कायर नहीं बनना है । तू लाहौर से भागकर आया, यह तेरी कायरता का प्रथम उदाहरण है परन्तु उसे तू छुपाना चाहता है हिन्दुस्तानी कहलाने के नाते, हिन्दुस्तान में आने का अपना कर्त्तव्य मानकर, परन्तु हिन्दुस्तान की सीमा में तू कायर बनकर नहीं जी सकेगा। तुझे अपने कर्तव्य का पालन करना ही होगा।

मैंने उन बुज़ुर्गवार की रक्षा अपने प्राणों को हथेली पर रख कर की। हर स्टेशन पर गुन्डों से बचाता हुआ मैं उन्हें देहली ले गया । देहली सब्ज़ीमंडी में उनका मकान था। मैंने सुरक्षा पूर्वक उन्हें वहां पहुँचा दिया। घर पर बड़ी चिंता के साथ वहां उनकी प्रतीक्षा की जा रही थी। उनके घर पर उनकी इकलौती लड़की रशीदा और एक नौकर था ।

उन्हें उनके मकान पर छोड़ कर मैं सीधा फ़तहपुरी बाज़ार में आया। यहां पर एक धर्मशाला है उसी में उस रात को मैं एक किनारे वरांड़े में अपना कोट सिराहने लगा कर सो गया। मैं दो दिन का भूखा था परन्तु भीख मैं नहीं मांग सकता था और बिना परिश्रम के मिला हुआ दान रूप का भोजन करना भी मुझे स्वीकार नहीं था। प्रातः काल जब मैं उठा तो भूख बहुत ज़ोर से लगी हुई थी। कुछ साधन जब समझ में नहीं आया तो मैं सीधा स्टेशन पर गया और एक महाशय का बिस्तर उठाकर छै आने में काज़ीहौज़ तक ले गया। इन छै आने से मैंने दिल्ली पहुँच कर प्रथम बार खाना खाया ।

शहर में यहां पर भी पूर्ण सन्नाटा था। भांति-भांति की अफ़वाहें बाज़ारों में फैल रही थीं। न जाने कितने प्रकार की काना फूसियां चल रही थीं। शहर का वातावरण बहुत दूषित होता चला जा रहा था। हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न

हर व्यक्ति की ज़बान पर नाच रहा था। जो व्यक्ति पाकिस्तान में अपना सब कुछ गंवा कर आये थे उनके क्रोध का तो कहीं पारावार ही नहीं था। साथ ही उन्हें उकसाने वाली शक्तियां भी अपना कार्य पूर्ण वेग के साथ कर रही थीं। व्यक्तिगत स्वार्थ से अंधा होकर मानव दानव प्रवृत्तियों का शिकार बनता चला जा रहा था। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब की अफ़वाहें द्वेश की अग्नि में घी का कार्य कर रही थीं।

शहर की दशा बिगड़ती देख कर मुझे उन बुज़ुर्गवार का ध्यान आया कि जिन्हें मैं पिछले दिन किसी प्रकार मानवता के शत्रुओं से बचा कर लाया था। मैं सीधा उनके मकान पर पहुंच गया। रशीदा ने मेरे लिये चाय बनाई परन्तु अभी तक हम लोगों ने चाय पीनी भी प्रारम्भ नहीं की थी कि शहर में तूफ़ान मच गया और विशेष रूप से शहर के उस भाग में। मैं उन लोगों की प्राण-रक्षा के लिये उन्हें वहां से लेकर चल दिया परन्तु मार्ग में हम लोगों को एक बहुत बड़ी भीड़ का सामना करना पड़ा। इस मुटभेड़ में बज़ुर्गवार घायल हो गये और नौकर को प्राणों से हाथ धोने पड़े। अन्त में बुज़ुर्गवार भी हौस्पिटल में पहुंचकर समाप्त हो गये और रह गई अकेली रशीदा।

रशीदा की सुशीलता के विषय में मैं तुम्हें क्या लिखूं? रूप और गुण दोनों की खान है। उसका सर्वस्व इस धार्मिक–द्वेश की ज्वाला में जलकर समाप्त हो गया। मुझे अभिमान है कि मैं उस जैसी देवि की रक्षा करने में सफल हो सका।

मैं आजकल 'इन्सान' नामक एक पत्र प्रारम्भ कर रहा हूँ। पत्र का डिक्लेरेशन फ़ाइल कर चुका हूँ। उसके लिये जितना प्रारम्भिक फ़ाइनेन्स की आवश्यकता है उतना फ़ाइनेन्स बहिन रशीदा ने दिया है। काशमीरी गेट पर एक मकान मुझे मिल गया है। मैं और रशीदा, दोनों उसी मकान में रह रहे हैं। आगामी सप्ताह में इस पत्र का प्रथम अङ्क प्रकाशित होगा।

शेष दूसरे पत्र में लिखूंगा। अपने बुज़ुर्ग नौकर को मेरा सलाम कहना। मेरे योग्य कार्य लिखना।

तुम्हारा अपना ही

रमेश

पत्र पढ़ कर आज़ाद न जाने कितनी देर तक क्या क्या सोचता रहा? फिर अन्त में उसने पत्र लिफ़ाफ़े में बन्द करके तकिये के नीचे रख लिया। आज वह काफ़ी प्रसन्न था।

'इन्सान' पत्र की स्थापना

(१०)

चांदनी चौक के एक किनारे पर लक्ष्मी रेस्टोरेन्ट है, जिसमें पत्रकार लोग सन्ध्या-समय आकर एकत्रित हो जाते हैं। भांति भांति की टीका-टिप्पणियां वहां पर चलती हैं। नित्य ही टीका-टिप्पणियों का विषय कुछ न कुछ खोजना पड़ता है और फिर उसी को लेकर बहस आगे बढ़ती है। भारत-विभाजन के पश्चात् एक ऐसी लहर भारत में दौड़ी कि जनता के मस्तिष्क एकदम उसी लहर के साथ हो लिये। वर्तमान परिस्थितियों में भविष्य की बातें सोचना साधारण मस्तिष्क क विचार-सीमा से परे की बात थी। चाय की प्याली हाथ में लेकर एक हलका सा घूंट भर कर सरदार करमसिंह ने अपनी दाढ़ी और मूछों के बालों को सँभाला और फिर जेब से निकाल कर 'इन्सान' की एक प्रति मेज़ पर सामने रख दी। सरदारजी एक गुरमुखी के साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हैं और सिक्खों का अपने को ठेकेदार समझते हैं। गुरुद्वारे के सामने उनका पत्र बिकता है और इतवार के दिन जब गुरुद्वारे में भीड़ होती है तो वह अक्सर वहीं पर मौजूद रहकर अपने पत्र का प्रचार करने में तन्मय पाये जाते हैं। अमरनाथ जी ने पत्र पर जहां तहां सरसरी दृष्टि डाली और कह उठे "सरदारजी पत्र में आकर्षण है। लेखक की लेखनी में ज़ोर मालूम देता है।"

"क्या खाक आकर्षण है?" सरदार करमसिंह जी तमक कर कह उठे। "अगर मेरा बस चले तो ऐसे पत्रकारों को भारत में रहने का कोई हक़ न दिया जाये। यह लोग मुसलमानों के गुलाम हैं, फिर मुझे तो लेखक की लेखनी में भी कोई ज़ोर नहीं दिखलाई देता। यह कांग्रेसी लीडर जो कुछ भी बकवास करते हैं उसी की काट-छांट करके प्रेस में दे दिया गया है। यह लोग खुशामद-पसन्द हैं, बे पैंदी के लोटे हैं, जिधर का बहाव देखा उधर को ही हो लिये। 'जहां देखी तवा परात, वहीं गँवाई सारी रात' वाली मिसाल है।"

"लेकिन सरदारजी! इस पत्र की विचारधारा तो मुझे खुशामदपसन्द नहीं मालूम देती। इसमें सरकार की नीति की भी उचित आलोचना की गई है और साथ ही पागल जनता में फैली हुई अग्नि को भी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। लीडरों के विचारों का समर्थन-मात्र ही पत्र का विषय नहीं है। आपने शायद पढ़ कर नहीं देखा इसे।" अमरनाथ जी ने और दो-चार बार पत्र के पन्नों को इधर उधर उलट-पलट कर देखते हुये गम्भीरता-पूर्वक कहा।

रमेश बाबू इनके पास वाली मेज़ पर बैठे चाय पी रहे थे। रशीदा भी उनके साथ थी। दोनों शांति पूर्वक आनन्द के साथ चाय पीते हुये सरदारजी तथा अमरनाथ जी की आलोचनायें सुन रहे थे। विषय उनके लिये रोचक था।

इसी समय बाबू उजागरमल जी भी आ पधारे और बड़े ही तपाक के साथ अमरनाथ जी ने उन्हें एक कुर्सी की ओर बैठने का संकेत करते हुये कहा "बैठिये उजागरमल जी! देखिये आज अपने पास समालोचना का एक सुन्दर विषय है। सरदारजी! यह एक पत्र लाये हैं। नया पत्र है, पहिला ही अङ्क है।" कहते हुये अमरनाथ जी ने पत्र की प्रति उजागरमल जी के हाथों में दे दी।

उजागरमल जी ने पत्र को इधर उधर बड़ी गम्भीरता से उलटना पलटना प्रारम्भ किया। उनके मुख की मुद्रा हर पन्ने को पलट कर गम्भीर होती चली जा रही थी। एकाएक उन्हें इतना क्रोध आगया कि प्रति को मेज़ पर पटक कर वह क्रोध में बलबला कर कह उठे, "बेहूदा! बिलकुल बेहूदा। यही लोग हिन्दुस्तान को बर्बाद करेंगे, हिन्दुओं का सर्वनाश करेंगे।"

अमरनाथ जी ने उजागरमल जी के क्रोध भरे मुख पर एक बार गम्भीरता से देखा और फिर ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े। इतने ज़ोर से हँसे कि तमाम हाल में बैठे हुये आदमी उनकी ओर आकर्षित होगये।

"बिलकुल बेहूदा, उजागरमल जी! बिलकुल बेहूदा।" उसी प्रकार क्रोध में भर कर सरदार करमसिंह जी बोले। "मैं अभी अभी अमरनाथ जी से यही कह रहा था और यह करते हैं इसकी तारीफ़। मैं कहता हूँ कि इनका इस प्रकार हँसना भी बेहूदा हरकत है, आप जैसे योग्य पत्रकार के रिमार्क पर भी इन्हें हँसी आती है, मज़ाक सूझता है।" फिर चाय की प्याली को उठा कर एक घूंट भर लिया और फिर ज़रा अपनी दाढ़ी और मूछों पर हाथ फेरा।

"अरे साहेब आप चाय तो पीजिये।" बैरे को एक केतली और चाय लाने का आर्डर देकर अमरनाथ जी फिर कहने लगे, "भाई इसमें क्रोध की क्या बात है? भारत अब स्वतन्त्र है। हर व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता है। मैंने जैसा समझा कह दिया। तुम जानते ही हो कि मैं स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति हूँ। न मुझ पर किसी पार्टी का कोई प्रभाव है और न किसी धर्म का। मैं एक इंसान हूँ और इंसानियत ही हर व्यक्ति में खोजने का मैं प्रयत्न करता हूँ। इस पत्र का नाम मुझे बहुत पसन्द आया। मैं समझता हूँ कि जो व्यक्ति यह नाम अपने पत्र का रख सकता है वह अवश्य ही विचार भी मेरे जैसे ही रखता होगा।"

"लेकिन इसमें मुसलमानों की खुशामद करने की बू आती है।" क्रोध के साथ सरदार जी बोले। "हम लोग पंजाब छोड़कर यहां आये हैं। हमने अपना घरबार छोड़ा है। हमारी मुसीबतें हम ही जानते हैं, और कोई नहीं जान सकता। यह डेढ़-डेढ़ इन्च की बाड़ वाली नुकीली गाढ़े की सुफेद टोपी लगाने वाले कांग्रेसी हमारी मुसीबतों का मज़ाक उड़ाते हैं, दिल्लगी करते हैं। मुसलमानों को क्या हक़ है हिन्दुस्तान में रहने का? हमारा सर्वनाश कराकर यह आज उनके तर्फदार बने हैं। हमारी छाती में छुरा भोंक कर उनके साथ मानवता दिखलाने चले हैं।"

"यही बात है।" उजागरमल जी भी क्रोध में आकर बोले, "हिन्दुत्व को रसातल में पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह कांग्रेसी लोग हिन्दुत्व की जड़ों पर कुठाराघात कर रहे हैं। मुसलमानों को पाकिस्तान दिया जा चुका अब उन्हें हिन्दुस्तान में रहने का कोई अधिकार नहीं। अगर कांग्रेस सरकार चाहती है कि वह कुछ दिन और बनी रहे तो उसे यह करना होगा कि वह अपनी नीति बदले और हिन्दूमहासभा से मेल करे अन्यथा उसका अधिक दिन शासन सत्ता को अपने हाथों में सम्भालना असम्भव हो जायेगा।"

"शासन किसके हाथों में रहेगा, यह प्रश्न गम्भीर है; इसलिये इस पर यहां बहस करना व्यर्थ है और साथ ही इसे भविष्य बतलायेगा; परन्तु हां इतना मैं अवश्य बतलाये देता हूँ उजागरमल जी! कि यह कूप मण्डूक वाली पालीसी अब नहीं चलेगी। धर्म के नाम पर राजनीति को अब नहीं आंका जा सकेगा। यह आप लोगों की संकुचित विचार-धारा है, जिसमें आप बह रहे हैं।" गम्भीरता पूर्वक अमरनाथ जी बोले।

"हमारी संकुचित विचार धारा है क्योंकि हम लोग अपना सब कुछ खोकर आये हैं। हमारा सर्वनाश होगया और कांग्रेसियों को मिल गया राज्य, क्यों? यही बात है ना?" सरदार जी व्यंग से बोले।

अमरनाथ जी फिर खिलखिला कर ज़ोर से हंस पड़े। तीनों मित्र चाय पी रहे थे। बातें भी गर्मागर्म हो रही थीं और चाय भी खूब गर्म पी जा रही थी। पास की मेज़ पर बैठे रमेश बाबू और रशीदा बातों का आनन्द ले रहे थे और क्योंकि उनकी बातों का विषय उनका अपना ही पत्र था इसलिये इन बातों में उनके लिए विशेष आकर्षण का कारण था। रमेश बाबू ने और चाय लाने का आर्डर दिया और साथ ही कुछ खाने की चीज़ों का भी। इसी बीच में अमरनाथ जी ने अपनी जेब से सिग्रेट का पाकेट निकाला और फिर एक

सिग्रेट उन्होंने अपने हाथों में सुलगाने के लिये ले ली। अमरनाथ जी ने दूसरी जेब में दियासलाई के लिये हाथ डाला परन्तु वह उन्हें नहीं मिली। रमेश बाबू उनकी दियासलाई की परेशानी को भांप गये और इससे पूर्व कि वह बैरे से दियासलाई लाने के लिये कहते, रमेश बाबू बोले "आपको शायद दियासलाई की आवश्यकता है ?" और यह कहते हुए उन्होंने अपनी जेब से दियासलाई निकाल कर अमरनाथ जी की तरफ़ बढ़ादी।

अमनाथ जी ने दियासलाई हाथ में लेते हुए 'धन्यवाद' शब्द कहा और फिर सिग्रेट सुलगाकर दियासलाई लौटा दी। कोई विशेष परिचय होने का यहां पर कारण नहीं था। दियासलाई देने पर केवल धन्यवाद ही दिया जा सकता था और वह रस्म अमरनाथ जी ने पूरी कर दी।

रमेश बाबू की टेबिल पर बैठी रशीदा कुछ आकर्षण का कारण अवश्य बनी हुई थी। सरदार करमसिंह जी कभी कभी कनखियों से उस ओर देख लेते थे। उजागरमल जी के लिये भी उधर कुछ रुझान अवश्य था परन्तु परिचय प्राप्त करने का कोई माध्यम अभी तक नहीं निकाल पाये थे। रमेश बाबू ने दियासलाई दी भी तो वह अमरनाथ जी को, इसलिये परिचय की इच्छा रहते हुए भी वह फलीभूत न हो सकी।

सरदार करमसिंह जी की यह आदत थी कि जब कभी वह किसी विषय की समालोचना किया करते थे, और अकस्मात यदि उस समय पास में कोई स्त्री और वह भी नवयुवती बैठी होती थी तो अपनी समालोचना के हर केन्द्र पर एक बार उसकी ओर देख लिया करते थे। नवयुवती के मुख-मण्डल पर केवल देखने मात्र से ही उनकी वाणी में ओज आ जाता था और अपने विचारों की पुष्टि में वह दृढ़ता का अनुभव करने लगते थे। यों देखने में सरदार करमसिंह जी के मुख में कोई ऐसी बात नहीं थी कि जिसके कारण किसी स्त्री के लिए उनकी ओर आकर्षित होने का कोई कारण हो, बशर्ते कि हिन्दू धर्म के अनुसार किसी माता पिता ने अपनी लड़की का गठजोड़ा उनके साथ बाँध कर उस युवती को उनके साथ रहने के लिये मजबूर न कर दिया हो। परन्तु फिर भी सरदार करमसिंह का आकर्षण सुन्दर युवतियों की तरफ बहुत था और उनके मुख की बनावट ऐसी थी कि कोई भी नवयुवती क्यों न हो उनके मुखमण्डल पर देख कर एक बार मुस्कराये बिना नहीं रह सकती थी। सरदार जी अपनी मित्रमण्डली के विशेष अनुभवी प्रेम कला के आचार्यों से यह सुन चुके थे कि बस 'हँसी और फंसी' का सिद्धान्त सोलहों आने सत्य उतरता है। इसी लिए किसी भी

युवती का उनकी ओर देखकर हंसना अकसर उन्हें भ्रम में डाल देता था और कई बार तो ग़लत फ़हमी यहां तक बढ़ गई कि सरदार जी को बाद में शरमिन्दा होकर क्षमा मांगने तक की नौबत आ गई। एक बार तो यदि अमरनाथ जी वहाँ पर न आगये होते, और वह युवती यदि अमरनाथ जी की पूर्व परिचिता न होती तो शायद चप्पल-पूजा तक की नौबत आ जाती।

स्त्री के मामले में उजागरमल जी भी ज़रा कमजोर थे। परमात्मा की दया से उनका रङ्ग इतना पक्का था कि कभी कभी उन्हें उसपर अभिमान होने लगता था और भगवान कृष्ण के रङ्ग से आपके रङ्ग की यदि कोई मज़ाक में समानता कर डालता था तो आप एक स्वप्न में अपने को खो देते थे और उन्हें यह अनुभव होने लगता था कि कहीं इस कलिकाल में वही भगवान् कृष्ण का रूप धारण करके हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिये भारत में जन्म लेकर न चले आये हों? आप दिल्ली की हिन्दू महासभा के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में से एक हैं। संगीत से आपको विशेष प्रेम है और सिनेमा देखने का भी भारी ही शौक है। पत्र के सम्पादक होने के नाते सिनेमाओं के फ्री पास आपको मिल जाते हैं, एन्टरटेनमेन्ट-टेक्स भी नहीं देना पड़ता। इसी लिये कभी कभी आप कुछ युवतियों को सिनेमा दिखाने के लिये ऑबलाइज करना अपना धर्म समझते हैं। मतलब यह है कि बहुत ही रङ्गीन तबियत आपने पाई है।

इतने में एक नवयुती चारों ओर न जाने क्या खोजती सी रेस्टोरेन्ट-हाल में दखिल हुई। यहां के नित्यप्रति आने वालों के लिये इनके परिचय की आवश्यकता नहीं थी परन्तु रमेश बाबू और रशीदा के लिये वह नवीनता थी।

"ओह मिस कमला देवी!" कहकर पत्रकारों ने कमला का स्वागत किया। सबसे पहले हाथ मिलाने का सौभाग्य सरदार करमसिंह को प्राप्त हुआ। जितनी देर सरदार करमसिंह को हाथ मिलाने में लगी उतनी देर में उजागरमल जी ने एक दूसरी टेबिल के पास से कुर्सी खींच कर कमला देवी के लिये अपने पास लगा दी। सरदार करमसिंह उजागरमल की इस चालाकी को भांप गये परन्तु करते क्या? सबसे पहिले उन नर्म हाथों के स्पर्श के लोभ को भी तो वह किसी तरह नहीं टाल सकते थे।

कमला देवी बैठ गईं और अमरनाथ जी ने अभी तक गर्दन उठा कर भी उनकी तरफ़ नहीं देखा। उनके हाथों में एक अखबार की प्रति थी और वह तन्मयता से उसे पढ़ रहे थे। बीच बीच में कभी सिग्रेट का कश लगा लेते थे और कभी चाय की प्याली में एक घूंट!

"आज बहुत गम्भीरता पूर्वक अध्ययन हो रहा है बाबू अमरनाथ जी !" कमला ने अमरनाथ जी के हाथों में से 'इन्सान' की प्रति को खींचने का साहस करते हुए कहा, "क्या मैं भी देख सकती हूँ यह कौनसा पत्र है ?"

"ओह ! मिस कमला देवी ! आप कब आईं और आकर बैठ गईं यह तो मैंने देखा ही नहीं। देखो ना ! यह एक नया पत्र निकला है। कितने सुन्दर विचारों का पत्र है ? मैं समझता हूँ कि यह तुम्हें अवश्य ही पसन्द आयेगा।"

कमला ने पत्र के पन्ने इधर उधर पलट के देखे और एक दो स्थानों पर दृष्टि डालते ही बिना अधिक देखने का प्रयत्न किये कह दिया "ईडियट"।

"क्या कहा आपने ?" अमरनाथ जी बोले।

"मैं कहती हूँ कि इसका सम्पादक गधा है। इसमें जवाहरलाल की तारीफ़ लिखी है। स्टालिन का नाम तक नहीं है कहीं पर भी इस पत्र में। यह पूंजी-पति विचार-धारा का पत्र है, बुर्ज़वाक्लास का, पैटीब्बुर्ज़्वा का भी नहीं, अपर बुर्ज़्वा का इसमें लिखा है कि हड़तालें करने से देश की हानि होती है। मैं कहती हूँ कि यह ग़लत है। मिलें बन्द होनी चाहियें। भूख का चारों ओर साम्राज्य छा जाना चाहिये। बस यही उचित समय होगा क्रांति के लिए। उसी समय मज़दूर मिल-कर इन धनपतियों का अन्त करेंगे; यह लैनिन ने कहा है, अमर सत्य है और यह भारत में होकर रहेगा।"

"आप बिलकुल ठीक कहती हैं मिस कमला देवी ! मेरा भी यही खयाल है।" गम्भीरता पूर्वक सरदार करमसिंह जी बोले।

"मेरा भी यही मत है।" उजागर मल जी ने सीना तानकर कहा।

अमरनाथ जी अपनी पुरानी आदत के अनुसार खिलखिलाकर हंस पड़े, और फिर कमला देवी के लिए चाय मंगाई। कमला देवी के आ जाने के पश्चात् सरदार करमसिंह जी नहीं चाहते थे कि यह कीमती समय व्यर्थ के लिए राजनीति की बातों में व्यतीत किया जाये। कुछ रागरंग की बातें सामने लाई जायें, कुछ सिनेमा की चर्चा हो, कुछ फिल्म एक्टर्स व एक्ट्रेसों की प्रेम-कहानियां सामने लाईं जायें। लेनिन, ट्राटस्की, स्टालिन, चर्चिल, एटली, रुज़-वेल्ट, गाँधी, जवाहर और पटेल आदि की बातें करते करते दिमाग़ पक चुका था।

"मिस कमला देवी ! क्या मैं पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि आपको शादी करने से क्यों नफ़रत है ?" अचानक बात का रुख बदलते हुए अमर-नाथ जी कह उठे।

"यह भी आप क्या बातें किया करते हैं अमरनाथ जी ? क्या यह बात रेस्टोरेंट में करने की हैं !" मुस्करा कर कमला बोली।

"मित्रों के बीच में इस प्रकार की बातें यदि हो भी जायें तो कोई हानि तो मैं नहीं समझता।" सरदार जी गम्भीरता पूर्वक बोले।

"यही मेरा भी मत है मिस कमला देवी !" उजागर मल जी से भी कहे बिना न रहा गया।

"यों तो मेरे मत का सरदार जी तथा उजागर मल जी दोनों ने ही समर्थन इस समय कर दिया है परन्तु यदि किसी संकोचवश आप इस विषय पर यहाँ प्रकाश न डालना चाहें तो आपकी इच्छा। मैं आप से फिर किसी समय पूछ सकता हूँ, एकांत में, यदि आपको कोई आपत्ति न हो।" इतना कहकर अमरनाथ जी ने बात का रुख फिर बदल दिया। सरदार जी तथा उजागरमल को ऐसा प्रतीत हुआ कि अमरनाथ उनके साथ कोई गम्भीर चाल खेल गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका इस प्रकार अमरनाथ की बात का समर्थन करना उनके गाम्भीर्य का परिचायक न होकर उनका हलकापन प्रदर्शित करता था।

बातों का रुख बदल चुका था। जिस विषय पर इन पत्रकारों की इस समय बात चल रही थी उसमें रमेश बाबू की कोई रुचि न होने के कारण वह अपना बिल पेमेंट करके रशीदा को साथ ले होटल से चल दिये। सरदार जी तथा उजागरमल जी काफी देर तक रशीदा की तरफ देखते रहे, जहां तक देख सके, परन्तु अमरनाथ जी का ध्यान इस ओर नहीं था। वह कमला से इधर उधर की बातें करने में लगे हुए थे।

(११)

शाँता के पास आज़ाद का कोई पत्र न आया। वह दो पत्र लिख चुकी है परन्तु एक का भी उत्तर से नहीं मिला। इस प्रकार परिवर्तन होने का कारण उसकी समझ में नहीं आ सकता था परन्तु जीवन की कठिन परिस्थितियों को भुलाकर भी वह नहीं चल सकती थी। जितना रुपया उसके पास था वह धीरे २ समाप्त होता जा रहा था और उसके सामने अन्धकारपूर्ण भविष्य दिखलाई दे रहा था। अब भविष्य में अपने जीवन का मार्ग उसे स्वयं बनाना था।

शांता अब होटल में नहीं रह रही थी। नई दिल्ली में बंगाली मार्केट के पास एक क्वार्टर उसे रहने को किराये पर मिल गया था। दोनों शांता उसी में रहती थीं। एक पहाड़ी नौकर शांता ने अपना काम करने के लिये रख लिया था। सन्ध्या समय था, करीब साढ़े तीन बजे होंगे, शांता चाय पी रही थी।

छोटी शांता पास ही बरांडे में कुछ अपना खेल बना रही थी। इसी समय मिस्टर अमरनाथ सामने से आते हुए दिखलाई दिये। शांता ने खड़े होकर उन्हें नमस्कार किया और वह भी साधारणतया नमस्कार का उत्तर देकर पास में पड़ी हुई कुर्सी खिसकाकर बैठ गये। बिना शांता के कहे ही उन्होंने दूसरी प्याली में चाय बनाली और पीनी भी प्रारम्भ करदी।

अमरनाथ जी बराबर के ही क्वार्टर में रहते थे और घर में अकेले ही आदमी थे, न मां, न बहन, न भाई, न कोई। विवाह अभी नहीं किया था। स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे।

"शांता बहिन! आज मैं तुम्हें एक ऐसी चीज़ दूंगा कि तुम उसे देख कर अवश्य ही बहुत प्रसन्न होगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।" अमरनाथ जी बोले।

"ऐसी क्या चीज़ है भैया?" मुस्कराते हुए शांता ने कहा।

"लो यह एक नया पत्र निकला है।" कहकर अमरनाथ जी ने शांता के हाथों में 'इन्सान' की वह प्रति दे दी जो उन्होंने सरदार करमसिंह जी से प्राप्त की थी।

"नाम तो बहुत अच्छा है।" शांता ने पत्र की प्रति हाथ में लेते हुए कहा। सम्पादक के नाम के स्थान पर लिखा था, 'एक मानव'। "सम्पादक का नाम भी सुन्दर है।" शांता ने फिर कहा और फिर पत्र को देखना प्रारम्भ कर दिया। अमरनाथ जी शांति पूर्वक बैठे हुए चाय पीते रहे। शांता कुछ देर के लिये मानो उस अखबार को पढ़ने में खोगई। उसे यह भी ध्यान न रहा कि अमरनाथ जी सामने बैठे हैं।

इतने में छोटी शांता ने अन्दर आकर कहा, "जीजी! हमें चाय के लिये नहीं बुलाया आपने।" यह सुनकर शांता का स्वप्न भङ्ग हुआ और उसने प्यार से छोटी शांता को गोद में उठा लिया। फिर तीनों ने चाय पीनी प्रारम्भ करदी।

"आज भारत जिन परिस्थितियों में से गुज़र रहा है, उन परिस्थितियों में उसे इसी प्रकार के पत्रों की आवश्यकता है।" अमरनाथ जी ने पत्र के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा।

"मेरा भी यही विचार है भैया! परन्तु इस प्रकार के पत्र का स्वागत आज उतना नहीं हो सकेगा जितना होना चाहिये। जनता पथ-भ्रष्ट हो चुकी है। वह सिद्धान्तों के गाम्भीर्य को समझने में असमर्थ है। साथ ही उसके विचारों में खलबली पैदा करने के लिये कुछ पार्टियाँ अपना कार्य कर रही हैं। शासन-प्रबन्ध के ढांचे को ढीला देख कर बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो अपना उल्लू सीधा करने पर उतारू हो चुके हैं।" विचार निमग्न शांता ने कहा।

शांता के विचारों का समर्थन करते हुए अमरनाथ जी बोले, "तुम ठीक कह रही हो शांता ! भारत अभी तक राजनीति में बहुत पिछड़ा हुआ है। यहां की पार्टियों का जन्म भी ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के काल में हुआ था। वह सभी पार्टियां राजनीतिक विचारों पर केन्द्रित नहीं, यों चाहती हर पार्टी यही है कि किसी प्रकार शासन-सत्ता उनके हाथों में आजाये। हिन्दू महासभा और संघ ये दो पार्टी ऐसी हैं कि जो भारत को एक बहुत गहरे गर्त की तरफ़ खींच कर लेजाना चाहती हैं। जनता के पास आज विचार-शक्ति का अभाव है और यही कारण है कि वह अपना उचित तथा अनुचित पथ निर्धारित करने में असमर्थ है। वह चमत्कार देखना चाहती है। जो पार्टी भी अपना चमत्कारात्मक प्रोग्राम उसके सामने रखती है उसका आकर्षण उसी की ओर होने लगता है।

"मैं तो पार्टी के रूप में केवल तीन ही पार्टियों को महत्व दे सकती हूँ भैया ? भारत में कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी तथा कॉम्यूनिस्ट पार्टी हैं। परन्तु इस समय भारत का हित इसी में है कि वह बहुपार्टी वादी विचार-धारा को त्याग कर अपने व्यापार को सँभाले, अपनी खेती बाड़ी की परिस्थिति को ठीक करे, अपने शिक्षा के माध्यमों की ओर ध्यान दे, अपने कारखानों की उन्नति करे और इस प्रकार अपने देश को धनधान्य से पूर्ण करदे। यह सब कुछ कर लेने के पश्चात् हमारा विचार पार्टी बाज़ी की खिलवाड़ की ओर जाना चाहिये।"

"मेरा भी यही विचार है बहिन ! देश की इन परिस्थितियों को ठीक करने से पूर्व पार्टियों के चक्करों में पड़कर हड़तालें करा कर मज़दूरों को फुसलाना, मिलों को बन्द कराना, किसानों में अशांति पैदा करना, यह सब भारत और भारत की जनता के लिये घातक सिद्ध होगा। हर देश की नीति उसकी परिस्थितियों के अनुसार होती है। यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि जो नीति अमेरीका में लाभदायक सिद्ध हो चुकी है वही भारत के लिये भी हितकारक हो और जो रूस के लिये रामबाण बन चुकी है उससे हिन्दोस्तान के दलिद्दर पार हो जायें। सभी बीमारों का उपचार एक ही औषधि को देकर करना मूर्खता होगी। रोगी को देख-कर पहिले उसके रोग का निर्णय करना होता है और फिर उसी के अनुसार उसकी चिकित्सा की जायेगी।

"हिन्दुस्तान कितना पुराना रोगी है इसका पहिले अनुमान लगाना होगा ? विदेशी राज्य की जंजीरों में जकड़े-जकड़े इसका रोग किस स्टेज पर पहुँच चुका है, पहिले यह समझना होगा। रोगी की एक दशा वह होती है कि जब उसके प्राण

केवल उसके शरीर के अन्दर के मल में ही अटके रह जाते हैं। यदि उस समय उसे उसके पेट की सफ़ाई के लिये दस्तों की दवाई दे दी जाये तो उसका शरीर ठंडा पड़ जायेगा। बिलकुल वही दशा आज के भारत की भी है। आज की दशा में मज़दूरों में क्रांति की बात सोचना रोगी को दस्तों की दवा देने से कम न होगा।"

"मैं आपके विचारों से सहमत हूँ।" शांता बोली और फिर अमरनाथ जी की प्याली में चाय डालनी प्रारम्भ कर दी। फिर काफ़ी देर तक चाय पर और इधर-उधर की बातें चलती रहीं। अचानक शांता कह उठी "भय्या एक बात कहूँ।"

"क्या ?" अमरनाथ ने आश्चर्य से पूछा !

"कमला दिल से बहुत अच्छी लड़की है। विचारों की अवश्य कुछ उद्दंड है परन्तु वह इस आयु में हो सकता है।"

"यह मैं जानता हूँ शांता।" गम्भीरता पूर्वक अमरनाथ ने कहा।

"लेकिन भय्या तुम कमला के साथ व्यवहार बहुत बुरा करते हो। वह तुम्हारे पास मिलने के लिये आती है और तुम चाय की बात भी नहीं पूछते ! न जाने उस बेचारी के साथ ही तुम्हारा इतना रुखा व्यवहार क्यों है ?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है शांता ! मेरा स्वभाव जैसा भी है वह सभी के लिये एक सा है। फिर रही चाय की बात सो मेरे पास कोई नौकर नहीं है और मैं स्वयं चाय बनाना नहीं जानता। तुम्हें यदि उसकी इतनी ही ख़ातिर मंजूर है तो उसे तुम चाय बना कर पिला दिया करो। चीनी और चाय मैं बाज़ार से लाकर रख दूंगा।" कहकर अमरनाथ जी मुस्कुरा दिये।

अभी-अभी यह बातें चल ही रहीं थीं कि सामने से कमला आती हुई दिखलाई दे गई। वह सीधी अमरनाथ जी के मकान की तरफ़ जा रही थी। शांता ने छोटी शांता को भेज कर कमला को भी यहीं पर बुला लिया। कमला शांता से पूर्व परिचित थी, कितनी ही बार वह यहां आती थी और शांता के साथ घंटों बैठ कर बात-चीत किया करती थी। कमला का झुकाव अमरनाथ जी की तरफ़ बहुत अधिक था परन्तु अमरनाथ न जाने किस मिट्टी का बना हुआ था कि उस पर कोई प्रभाव दिखलाई नहीं देता था। व्यवहार में उसके किसी प्रकार का दोष नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें कोई भी बात ऐसी नहीं होती थी जो उसकी प्रकृति के विपरीत हो।

"आओ बहिन कमला !" शांता ने खड़े होकर बड़े प्यार से कमला का स्वागत किया और कमला को अमरनाथ जी के सामने वाली आराम कुर्सी पर

बिठला दिया। कमला ने अमरनाथ जी की ओर एक गहरी दृष्टि से देखा और फिर बोली "किस चिंता में डूबे हुए हैं आप ? मैं जब कभी भी आपको देखती हूँ इसी प्रकार विचारों में निमग्न पाती हूँ। क्या इस भारत-विभाजन का सारा बोझा आपके ही सिर पर टूट पड़ा है ?"

"कोई विशेष बात नहीं है कमला ! परन्तु हां ! इतना तो सत्य ही है कि इन घटनाओं ने मेरे जीवन के क्रम में एक बहुत बड़ी उथल-पुथल पैदा कर दी है।" अमरनाथ जी बोले।

"अब छोड़ो ना उन बातों को भय्या ? हर समय उन्हें ही सोचते रहोगे तो भी भला क्या बनेगा ? जब एक पहाड़ टूट कर गिरेगा तो कौन कह सकता है कि कितने जीव-जन्तु उसके नीचे कुचल कर सर्वनाश की गोद में नहीं पहुँच जायेंगे, यदि कोई भयंकर भूकंप आयेगा तो क्या कुछ विनाश को प्राप्त नहीं हो जायेगा ? यह विभाजन एक भयंकर भूकंप था, इसलिये जो कुछ भी हुआ वह अनिवार्य था, अवश्य होता, कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती थी।" इतना कह कर शांता बोली, "अच्छा भय्या ! देखो कमला देवी कितनी दूर से चल कर आरही हैं और तुमने यह भी नहीं पूछा कि क्या कोई विशेष कार्य तो नहीं है ?"

"यह मैं जानता हूँ कि कोई विशेष कार्य नहीं है।" गम्भीरता के साथ अमरनाथ जी ने उत्तर दिया। "यही बात है न कमला ! मैं समझता हूँ कि तुम केवल मुझसे मिलने के लिये ही आ सकती हो इस समय।"

"आपका अनुमान ठीक ही है।" कमला ने मुस्कराते हुए कहा।

"कल तो आपका लक्ष्मी रेस्ट्रां में सरदार करमसिंह और उजागरमल जी ने बड़े तपाक के साथ स्वागत किया था।" अमरनाथ जी बोले।

"जी और आप अखबार पढ़ने का बहाना करके कनखियों से यह सब देख रहे थे।" कमला ने मुस्कराकर कहा।

अमरनाथ जी मुस्करा दिये और शांता ज़रा ज़ोर से हंस दी।

"सरदार जी भी अजीब ही प्रकार के व्यक्ति हैं। बेचारे दिल के बहुत साफ़ हैं; पत्रकार बन अवश्य गये हैं परन्तु बेचारों में विचार-शक्ति का अभाव है। हां काग़ज़, कलम, प्रेस से उनका सम्बन्ध अवश्य जुड़ गया है दुर्भाग्यवश।"

"और उजागरमल जी के विषय में आपका क्या विचार है ?"

"आप केवल मेरा ही विचार पूछते रहेंगे ! अपना बतलाने का प्रयत्न नहीं करेंगे।" कमला बोली।

इन शब्दों पर शांता मुस्करा कर बोली "यह कोई नई बात नहीं है कमला

बहिन ! इनकी तो यह पुरानी बान है। केवल दूसरों की ही बातें सुन कर आनंद लाभ करना चाहते हैं और अपना तो विचार मानों इनका कुछ है ही नहीं।"

"यह बात नहीं शांता ! परन्तु विचार प्रकट करने पर स्फोट होने की सम्भावना हो जाती है। और वह स्फोट ऐसा होता है कि उसकी चर्चा फिर हर व्यक्ति के मुख पर दिखलाई देने लगती है। साधारणतया कही गई बात बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है और कठोर सत्य के खिलाफ़ एक ऐसा तूफ़ान मच जाता है कि समझदार व्यक्ति भी पागल बनकर उसी बहाव में बह जाते हैं और कहने वाले की बात का कोई मूल्य नहीं रहता। कारण भी स्पष्ट ही है कि यहां के पत्रकारों ने पत्रकारिता को एक छिछला भीख मांगने वाला व्यापार समझकर इसके वास्तविक रहस्य और ठोस-शक्ति को एकदम समाप्त कर दिया है। सम्पादक की व्याख्या यह है कि जो विज्ञापन लाने में सफल हो सके, अन्यथा वह अपूर्ण है। सो बहन शांता तुम जानती ही हो कि अपना पत्र तो सदा घाटे से चलता है। हम तो बिलकुल ही असफल पत्रकार हैं। इसलिये किसी भी पत्रकार के विषय में कोई टीका टिप्पणी करने का मैं अपने को अधिकारी नहीं पाता।

"उजागरमल जी अपने कार्य में आवश्यकता से अधिक सफल हैं। मारवाड़ी बच्चे हैं। किसी न किसी प्रकार मिलवालों से रिश्तेदारी निकाल ही लेते हैं। रिश्तेदारी निकली और उन्हें एक पेज विज्ञापन मिला। बस पत्र सफल बन गया। यह सत्य है कि उजागरमल जी केवल हस्ताक्षर भर करना जानते हैं और उसमें भी अपने नाम का प्रथम और द्वितीय अक्षर उ तथा ज कभी वह जीवन में सही नहीं लिख पाये हैं परन्तु इससे क्या होता है ? पत्र तो ठीक चल रहा है। विज्ञापन खूब बटोर लाते हैं। प्रेस वाला सुन्दर छाप देता है और उनका कार्य सिद्ध हो जाता है।" अमरनाथ जी ने कहा।

"लेकिन मैंने तो कई बार उन्हें बड़ी मोटी-मोटी पुस्तकें हाथ में लिये हुए देखा है और एक दिन तो वह शेक्सपीयर का मेकबथ ड्रामा हाथ में लिये होंट चला रहे थे।" कमला आश्चर्य से बोली।

अमरनाथ जी खिलखिला कर हंस पड़े। इस प्रकार हंसने की उनकी बान थी और फिर उठ कर कमरे में घूमना प्रारम्भ कर दिया एक गम्भीर मुद्रा के साथ। कमला कुछ भी नहीं समझ सकी। शांता की दशा भी ऐसी ही थी। छोटी शांता फिर खेलने के लिये बाहर बरांडे में चली गई थी। आज उसकी गुडिया का विवाह होने वाला था। विवाह का सभी सामान वह जुटा चुकी थी और बारात आने वाली थी। कढ़ाई चढ़ चुकी थी। इतने में उसने अन्दर आकर सबका

ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह बोली, "देखिये मेरी गुड़िया की बारात आ रही है। आप लोग सब मिलकर उसका स्वागत कीजियेगा।"

"बारात आ रही है!" कमला ने प्यार से शांता को गोद में लेकर उसका मुख चूमते हुए कहा।

"जी हां! दूल्हा बारात में सबसे आगे होगा। जीजी! आपकी भी तो बारात आने वाली है, मैंने सुना है।"

"तूने किससे सुना है री पगली!" मुस्कुराकर ज़रा शरमाते हुए कमला ने कहा।

"अमरनाथ भय्या दूल्हा बनकर जायेंगे तुम्हारी बारात में। क्यों अमरनाथ भय्या जी!" अमरनाथ जी की ओर मुंह करके बोली।

"चल पगली!" कह कर अमरनाथ जी ने उसे गोद में उठा लिया और प्यार से यह कहते हुए बाहर ले गये, "चलो मैं तुम्हारी बारात का स्वागत करूंगा। यह सब लोग कुछ नहीं करेंगे। यह अपने को बड़ा समझते हैं। इसी लिये बच्चों के खेलों में भाग लेना उचित नहीं समझते। मैं तुम्हारे साथ खेलूंगा।"

"तुम खेलोगे अमरनाथ भैय्या! लेकिन तुम तो पहिले कभी नहीं खेले। मैंने तो तुम्हें हमेशा ही माथे में सलवटें डाले न जाने क्या २ सोचते ही देखा है। आज शादी वाला खेल है। इसीलिये आप भी ललचा गये हैं। स्वागत करने वालों को भी पूड़ी, कचौड़ी, मिठाई सब कुछ खाने को मिलेगा भय्या!"

"अच्छा! कुछ थोड़ा-थोड़ा कमला और शांता को भी दे देना।" मुस्कुरा कर अमरनाथ जी बोले।

"नहीं भय्या! यह लोग अभी तक बारात का स्वागत करने के लिये उठकर नहीं आये और आप जानते ही हैं कि अब भारत स्वतंत्र हो गया है। अब किसी को बैठे बिठाये खाने को नहीं मिलेगा। खाना प्राप्त करने के लिये हर व्यक्ति को परिश्रम करना ही होगा। मैं कहती हूँ कि जब इन लोगों को मेरी गुड्डी की बारात का स्वागत करने में भी संकोच है और यह इतना सा कष्ट भी नहीं सहन कर सकते तो इन्हें भोजन पाने का क्या अधिकार है?"

"यह तुम ठीक कहती हो शांता!" अमरनाथ ने एक बार फिर शांता को प्यार से गोद में उठा कर चूम लिया।

"आप यही तो कहा करते हैं भय्या! मैंने तो आपकी ही बात का समर्थन किया है। वैसे यदि आप कमला जीजी की सिफ़ारिश करें तो उन्हें एक दो

गुलाब जामुनें मिल सकती हैं, लेकिन बड़ी बहिन को कुछ नहीं मिलेगा। कमला जीजी हमारी मेहमान हैं। मेहमान होने के नाते शायद उन्हें कुछ काम करने में संकोच होता है परन्तु बड़ी बहिन तो अपने ही घर की हैं। उनका तो कर्त्तव्य था कि यहां पर सबसे पहिले आकर बारात का हर प्रकार से प्रबन्ध करतीं और वह अपना पलंग भी नहीं छोड़ना चाहतीं। कैसी विचित्र बात है जी! आज स्वतंत्र-भारत में तो कोई भी व्यक्ति अपना कर्त्तव्य भुलाकर नहीं चल सकता।"

"तुम ठीक कहती हो मुन्नी!" प्यार से कमला ने बाहर आकर कहा, "अब भारत के हर व्यक्ति को काम करना होगा। कोई भी व्यक्ति अब दूसरों का शोषण करके जीवित नहीं रह सकेगा। बिना काम करने वाले व्यक्ति को ज़िंदा रहने का अधिकार नहीं दिया जायेगा। धन और साधन व्यक्ति की सम्पत्ति न रह कर राष्ट्र की सम्पत्ति बन जायेंगे। हर कर्मठ व्यक्ति को वह साधन उपलब्ध होंगे जो उसके काम में सहायक हों, कोई भी योग्य व्यक्ति केवल धन के अभाव के कारण अंधकार में नहीं पड़ा रहेगा और कोई भी मूर्ख केवल धनवान होने के नाते ऐश्वर्यशाली नहीं हो सकेगा। जो व्यक्ति मेहनत करेगा उसका फल उसे अवश्य मिलेगा। मेहनत और करे और उसका फल दूसरा खा जाये यह नित्य जीवन में होने वाली चोरी और बदमाशी सरकार को बन्द करनी होगी। धोखेबाज़ी और दग़ाबाजी का नाम व्यापार नहीं रहेगा।" इसी प्रकार कमला अपनी झोंक में और न जाने क्या क्या कहती चली गई।

"मैंने कहा यहां पर केवल गुडिया के विवाह की बात चल रही है; पूंजीवाद के ख़िलाफ भारतीय काम्यूनिस्ट पार्टी का क्या प्रोग्राम है, वह किस प्रकार फलीभूत होगा, उसके लिये क्या क्या साधन जुटाये जायेंगे और अन्त में उनकी क्या शक्ल निकलेगी इस गम्भीर विवेचना का समय नहीं है। उधर बारात आने का समय हो गया और आप राजनीति में ही फंसी हुई हैं। पहिले विवाह हो जाने दीजिये तब राजनीति पर विचार किया जायेगा।" अमरनाथ जी बोले।

"नहीं! मैं विवाह के ख़िलाफ विचार रखती हूँ। विवाह नारी की स्वतंत्रता के मार्ग में बाधक है, रुकावट है। यह क्रांति का युग है। इसमें मनुष्य को हर समय न जाने क्या कुछ करने के लिये कटिबद्ध रहना है। इस लिये विवाह नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिये, यह मेरा दृढ़ विचार है।" कमला कह रही थी।

शांता यह सब सुन सुन कर मुस्कुरा रही थी।

"मैं कहता हूँ कमला देवी! यह आप के विवाह की बात नहीं हो रही है। यह हो रही है गुड्डे और गुड़िया के विवाह की बात। अब अधिक व्याख्यान का

समय नहीं रहा और बारात आने वाली है।" अमरनाथ जी फि बोले।

"अमरनाथ जी मैं! सिद्धांतवाद की बात कर रही हूँ। बच्चों को भी विवाह की हवा से दूर रखना चाहिये। उनके अन्दर विवाह की भावना को ही जन्म देना उनकी आगामी स्वतंत्रता को नष्ट कर देना है। मैं कहती हूँ कि विवाह की आवश्यकता ही क्या है ? क्या विवाह किये बिना समाज का कार्यक्रम नहीं चल सकता ? मित्रता के नाते क्या दो व्यक्ति एक साथ जीवन नहीं बिता सकते ? यदि मित्रता के नाते नहीं बिता सकते तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि विवाह के बंधन में फंस कर भी उनका जीवन नर्क ही होगा, वह होगी कोरी विडम्बना मात्र, उपहास, जीवन का कोरा उपहास। मैं यह सब कुछ पसंद नहीं करती। बच्चों को बालकाल से ही इस बीमारी से दूर रखना चाहिये।" कमला गम्भीरता पूर्वक कह रही थी।

"तो आप शादी को बीमारी समझती हैं। विचार तो आपका बहुत सुन्दर है, परन्तु खेद है कि मैं अपने को इस विचार के साथ नत्थी नहीं कर सकता।" अमरनाथ जी बोले।

"ठीक है! इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। कोई भी दक़ियानूसी विचार रखने वाला व्यक्ति मेरे विचारों से सहमत नहीं हो सकता। मेरे विचारों के साथ सहमत होने के लिये प्राचीनता को एक दम नमस्कार कह देना होगा। मेरे विचारों में कहीं पर भी समझौते के लिये स्थान नहीं हैं। प्राचीन रूढ़िवाद के प्रतिबन्ध मेरे सामने केवल उपहास की वस्तु मात्र हैं।" कमला कहती जा रही थी। इसी बीच में शांता कह उठी "परन्तु कमला बहिन! यदि आप बीच में मेरा बोलना अनुचित न समझें तो मैं इतना अवश्य कह सकती हूँ कि अमरनाथ जी को प्राचीनता का उपासक नहीं कहा जा सकता। इनके जीवन में तो प्राचीनता पाई ही नहीं जाती। इनके प्राचीनता में विश्वास करने वाले मित्र इन्हें इस लिये कोसते हैं कि यह नवीन विचारों में फंस गये हैं और इस प्रकार यह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के कट्टर शत्रु हैं और आप.........।"

"नौनसैन्स्! ईडियट्, बत्तमीज़! उन गधों के विषय में तो मैं बात करना भी अपनी हिमाक़त समझती हूँ। वह लोग तो बिलकुल गधे हैं, गधे। उनका राजनीति से क्या सम्बन्ध ? उन्हें क्या मालूम कि क्राँति किस पेड़ पर लगती है ? उन्हें क्या पता कि आज का मज़दूर क्या चाहता है ? मज़दूर संस्कृति और सभ्यता नहीं चाहता; मज़दूर के लिये वेद, पुराण, रामायण, कुरान और बाईबिल की आवश्यकता नहीं। उनसे उसका पेट नहीं भरता, उसका तन नहीं ढकता,

उसकी आवश्यकता पूरी नहीं होती। जीवन के कठोर सत्य को भुला कर धोखे-बाज़ लोगों ने साधारण वर्ग को फंसाकर उनका खून चूसने के लिये यह सब ढकोसले रचे हुए हैं। धर्म और समाज के प्रतिबन्ध मज़दूर के हितों को छीनने के लिये हैं, हड़प कर लेने के लिये हैं। इस प्रकार के विचारों का प्रतिपादन करने वाले हर व्यक्ति को मैं मानव का शत्रु समझती हूँ और हर इंसान कहलाने वाले व्यक्ति को समझाना चाहिये।" कमला कह रही थी।

"विचार आप के बहुत ऊंचे हैं कमला देवी! परन्तु उन विचारों को फली-भूत करने के साधनों और उनके कार्यक्रम में मेरा और आपका अन्तर है, आप जो कुछ कहती हैं या करना चाहती हैं वह सब मानव के हित के लिये करना चाहती हैं। कल जो 'इन्सान' की प्रति मैंने आपको दिखाई थी उस पत्र का उद्देश्य भी मानव की ही सेवा करना था।" अमरनाथ जी बोले।

"सेवा! फिर आपने सेवा शब्द का प्रयोग किया", कमला बीच ही में कड़क कर बोल उठी। "सेवा का क्या अर्थ होता है? मैं कहती हूँ कि क्यों कोई व्यक्ति किसी की सेवा करे और क्यों दूसरा व्यक्ति अपनी सेवा कराये? इस सेवा ने ही तो यह सब कुछ अनर्थ किया हुआ है। सेवा की आवश्यकता वहां होती है जहां समता का अभाव होता है। वह समाज गलत है जहाँ सेवा की जाती है, वह सरकार धूर्त है जिसमें सेवा के लिये स्थान है, मुझे घृणा है इस प्रकार का विचार रखने वालों से भी। मैं चाहती हूँ कि संसार में सब अपना अपना कर्त्तव्य पूरी तरह निभायें। अपना कर्त्तव्य पालन न करने वाले व्यक्ति को फाँसी का दंड मिलना चाहिये, इससे कम नहीं।" कमला ने कहा।

शांता गम्भीरता पूर्वक कमला का मुख देख रही थी। वह यह समझने में असमर्थ थी कि वास्तव में कमला के कहने का अर्थ क्या था? क्या वह सचमुच जो कुछ कह रही थी वह उसका अपना विचार था या किसी स्कूल मास्टर ने उसे रटा दिया था और उसी रटे हुए सबक को वह इस फुर्ती के साथ दुहराती चली जा रही थी।

"तुम मेरे मुंह पर क्या देख रही हो शांता बहिन, इतने आश्चर्य के साथ?" कमला बोली।

"कुछ नहीं बहिन! मैं सोच रही थी कि आप क्या कहना चाहती हैं और क्या कह रही हैं?" शांता ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया।

"मैं क्या कहना चाहती हूँ यह आप नहीं समझ सकतीं शांता बहिन! और क्या कह रही हूँ उसे समझने का आपने प्रयत्न ही नहीं किया। आप के चरित्र में

दीनता है, संकोच है, संतोष है, निर्बलता है·········और···और क्या कहूँ बहिन कि उसमें अपना कहने के लिये तो कुछ है ही नहीं। वहां जो कुछ भी है वह दूसरे के लिये है जो कुछ भी है वह पराया है, इसी लिये आप मेरे कहने को नहीं समझ सकतीं। आप पहिले अपने को समझिये और अपनी शक्ति को पहिचानिये। अपने को अबला न गिन कर, सबला गिनिये। संतोष लेकर न बैठिये अपने हृदय में एक असंतोष की पीड़ा लेकर कुछ कर गुज़रने के लिये उद्यत हूजिये। असंतोष ही क्रांति का मूल स्रोत है। संतोषी मनुष्य ही संसार का सब से कायर मनुष्य है। बहुत से लोग संतोष को एक गुण मानते हैं, उसकी उपासना करते हैं परन्तु मैं उसे जीवन का सब से बड़ा अवगुण मानती हूँ। जीवन की उन्नति के मार्ग में वह सब से बड़ी रुकावट है; सब से बड़ी भूल है। आप पहिले अपनी इस सिद्धाँतिक भूल को परखिये और अनुभव कीजिये कि इसके फेर में पड़कर आपने अपने जीवन के सुन्दर-काल की खेती पर किस तरह से तुषारपात कर दिया ?

"मैं पूछती हूँ विवाह, प्रेम, यह सब है तो क्या बला है ? क्यों इन व्यर्थ के बखेड़ों में पड़कर मनुष्य अपने जीवन के क़ीमती समय को नष्ट करता है ? किसी भी योग्य व्यक्ति को इन सब व्यर्थ की बातों से घृणा होनी चाहिये और फिर किसी की याद में घुल-घुल कर मर जाना, तड़पना, रोना और फ़रियाद भी न करना, यह सब कहां की हिमाकत है ? क्या मज़ाक़ है जी ! मैं कुछ समझ ही नहीं सकती। शांता जीजी मेरी अक्ल तो इस मामले में कुछ काम ही नहीं करती।" कहती कहती कमला चुप हो गई।

"ठीक कहती हो बहन !" एक गहरी साँस खींच कर शांता ने कहा। "यह सब बातें अनुभव से सम्बन्ध रखती हैं कमला बहिन ! अभी तुम एक चहचहाती हुई चिड़िया हो, जिसके सभी रास्ते खुले पड़े हैं। तुम जीवन भर उन्हीं आज़ाद रास्तों पर उड़ने का स्वप्न देख रही हो। आज तुम्हारे पैरों में जान है, जहां चाहो जा सकती हो, जिस बगीचे में चाहो चहचहा सकती हो। परमात्मा की कृपा से सुन्दर भी हो। मनचले नौजवानों से बातें करने में तुम्हें और तुम से बातें करने में उन्हें आनंद भी आता है। दिल बहल जाता है और मन चाहता है कि यह तुम्हारा समय यहाँ का यहीं पर रुक जाये और आगे न बढ़े। पर यह दिन सदा नहीं रहेंगे कमला बहिन ! एक दिन वह आयेगा जब तुम्हारे पर कमज़ोर हो जायेंगे और तुम दुनियां की इन रंगीनियों में बैठ कर भी उन में से वह आनंद लाभ न कर सकोगी जिन स्वप्नों की दुनिया में तुम आज नाच रही हो। मनुष्य

वही है जो आज के साथ अपने भविष्य पर भी ध्यान देता है। भारतीय सिद्धांतों का खाका जिस रूप में तुम उड़ाने का स्वप्न देख रही हो वह जीवन का विनाश है, पतन है, उन्नति नहीं, उत्थान नहीं, अवनति है।

"नारी का जीवन तुमने एक छैलछबीली अलबेली के रूप में ही देखा है। होटलों सिनेमाओं में मदमस्त जवानी के साथ इठलाते हुए ही परखा है। बहिन! जीवन के केवल एक ही पहलू पर ध्यान देने से व्यक्ति सर्वदा अंधकार में ही रहता है। उसके नेत्र उसी समय खुलते हैं जब जीवन का दूसरा पहलू अपना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने आता है। परन्तु वह समय इतना कठिन होता है कि मानव उसका सामना नहीं कर सकता। उसे हार माननी होती है और वह उसके जीवन की वह हार होती है जो प्रारम्भिक सब सुखों का एक उपहास बनकर रह जाती है। क्या तुम उद्यत हो उस उपहास के हाथों में अपना जीवन फेंक देने के लिये?" शांता ने कहा।

"यदि ऐसा हो भी तो मैं इसमें कोई हानि नहीं समझती। परन्तु यदि सत्य की खोज की जाये तो इस प्रकार के उपहास की सामग्री केवल वही व्यक्ति बनते हैं जो मूर्ख हैं। मैं अपनी गणना उनमें नहीं करती।" कमला दृढ़ता से बोली।

"तब आपका कहने का मैं यह अर्थ समझूं कि आप अपने को पुरुषों का उल्लू बनाने में दक्ष समझती हैं। परन्तु यदि आप यह करती भी हैं तब भी आप भूल करती हैं। आप अपने को धोखा देती हैं। यह आप कर नहीं सकतीं, एक स्त्री सब पुरुषों को धोखा नहीं दे सकती और एक पुरुष सब स्त्रियों को धोखा नहीं दे सकता। स्त्री पुरुष के बिना अपूर्ण है और पुरुष स्त्री के बिना। इस बात को भुलाकर आप अपना जीवन इस संसार में नहीं चला सकतीं।" शांता ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"खैर! कुछ भी सही, मैं आपकी इस अंतिम बात से सहमत नहीं और पहिली बात जो आपने कही उसका अर्थ आपने कुछ ग़लत समझा! मैं कहती हूँ कि स्त्री और पुरुष तो बड़ी चीजें हैं एक एक कण की भी पृथक-पृथक सत्ता है और प्रत्येक अपने में पूर्ण है। यह ठीक है कि एक को एक के सहारे की आवश्यकता होती है, मिल कर चलने से शक्ति बढ़ती है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि एक के बिना दूसरा कुछ है ही नहीं और यदि यह बात आपकी सत्य भी मान ली जाये तब भी यह तो आप को मानना ही होगा कि दोनों को एक दूसरे की बराबर आवश्यकता है, किसी को कम अथवा किसी को कुछ अधिक।"

"अहा हा! क्या खूब लिखा है लेखक ने? कमाल कर दिया।" इस

बीच में दोनों की बातों को काट कर अमरनाथ जी अपना सिर हिलाकर कह उठे। इधर शाँता और कमला की बहस चल रही थी और उधर अमरनाथ जी ने 'इंसान' पत्र को पढ़ना शुरु कर दिया था। "क्या ही खूब लिखा है ? जी चाहता है कि उसकी लेखनी चूम लूं।" अमरनाथ जी बोले।

"आखिर ऐसा भी क्या लिख दिया ? ऐसा तो कभी आपने लेनिन और ट्राटस्की की पुस्तकें पढ़ कर भी नहीं कहा।" कमला बोली।

"तो इसका मतलब यह हुआ कि हम दोनों जो कुछ भी बातें कर रही थीं, आपका उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं था। यदि मैं पूछ बैठूं कि आप किस के विचारों से सहमत है ? तो आप उत्तर दे देना कि दोनों के विचारों से नहीं। क्यों यही बात है ना ?" कह कर शांता मुस्करा दी ! इसके पश्चात तीनों ने एक एक गर्म चाय की प्याली पी और फिर कमला तथा अमरनाथ दोनों साथ साथ उठ कर चले गये। शांता अकेली रह गई कुछ मुस्कराती हुई और फिर बाद में कुछ विचार निमग्न सी।

(१२)

आज़ाद कई पत्र शांता को लिख चुका परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। रमेश बाबू के पत्र का भी उसने लौटती डाक से उत्तर दिया था और उसका भी लौट कर फिर कोई उत्तर उसके पास नहीं पहुँचा। इसका कारण कुछ उसकी समझ में नहीं आया। साथ ही आज़ाद के विचारों से वहां के सभी व्यक्ति परिचित हो गये। सब उसे संदेह की दृष्टि से देखने लगे और कुछ लोगों ने तो उसे हिन्दुस्तान का जासूस ही सीधे तरीके से कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार की हवा फैलने में अधिक समय नहीं लगा। जिन लोगों में वह बैठता वहां पर उससे विचित्र प्रकार के प्रश्न किये जाते। एक समय आज़ाद के लिये वह आ गया कि जब उसे अपने ऊपर स्वयं भी संदेह होने लगा।

एक बार आज़ाद ने इच्छा की कि वह इस संकुचित मनोवृत्ति की राजनीति वाले देश को छोड़ कर हिन्दुस्तान चला जाये परन्तु उसकी जायदाद उसके रास्ते में रुकावट थी। प्रारम्भ में आज़ाद ने धन माल को महत्व दिया था परन्तु आज उसकी दशा यह थी कि वह खाली हाथों भी यहां से भाग जाने के लिये उद्यत था। वह इस झूठे धर्म-बंधन में फंसा रह कर इंसानियत के विपरीत विचार-धारा में नहीं बह सकता था। लेकिन आज वह अवसर भी वह अपने हाथों से खो चुका था। अब हिन्दुस्तान की सरकार पाकिस्तान से आने वाले सब मुसलमानों पर प्रतिबन्ध लगा चुकी थी।

एक दिन अचानक सवेरे ही सवेरे पास के थाने के दारोगा जी दो कान्सटेबिलों को साथ लेकर आज़ाद के मकान पर आ धमके । आज़ाद अभी चाय ही पी रहा था । दारोगा जी को देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ परन्तु फिर भी मनोभाव को छुपाते हुए बोला, "आईये दारोग़ा जी ! बैठिये चाय पीजिये ।" दारोग़ाजी सामने वाली कुर्सी पर बैठ गये और चाय पीने लगे ।

"कहिये आज सुबह ही सुबह कष्ट करने का क्या कारण हुआ ?"

"आपका वारंट गिरफ़तार है आज़ाद साहेब !"

"वारंट गिरफ़तारी !" आज़ाद ने आश्चर्य से पूछा ।

"जी हां !" दारोग़ा जी बोले ।

"यह किसलिये ?" आज़ाद ने उतने ही आश्चर्य के साथ फिर पूछा ।

"यह इसलिये कि सरकार आपको शुभे की दृष्टि से देखती है । मैं आपको एक राय दे सकता हूँ, यदि आप उचित समझें तो कीजियेगा ।" सहानुभूति प्रकट करते हुए दारोग़ाजी ने कहा ।

"क्या राय है आपकी ?" उसी आश्चर्य के साथ आज़ाद ने पूछा ।

"आपको पाकिस्तान छोड़ देना चाहिये, अन्यथा आप पर कई कत्ल के मुकदमे चलाये जाने वाले हैं । सरकार के पास सब रिपोर्ट पहुँच चुकी हैं कि किस प्रकार आपने दो मुसलमानों को मौत के घाट उतार कर शांता को बचाया ? उसका सबूत पुलिस जुटा रही है और शहादतें प्राप्त करने में उसे अधिक समय नहीं लगेगा ।" दारोगा जी बोले ।

मामले की गम्भीरता आज़ाद के सामने आ गई । उसने एक गहरी सांस ली और कहा, "इसका मतलब यह हुआ दारोग़ा जी ! कि अब इन्सान कहलाने वाले मुसलमान के लिये भी पाकिस्तान में कोई स्थान नहीं रहा । खैर जो भी सही, मैं आपकी राय मान सकता हूँ, परन्तु आप तो वारंट लेकर विराजमान हैं, यह फिर हो किस प्रकार सकेगा ?"

"इसका प्रबन्ध मैं स्वयं करूंगा भय्या आज़ाद ! तुम्हारे लिये भला मैं क्या कुछ नहीं कर सकता ? लेकिन तुम जानते ही हो कि हम लोग बहुत थोड़ा वेतन पाने वाले मुलाज़िम हैं । इस वेतन में तो बाल बच्चों का पेट भी नहीं भरता इस मंहगाई के ज़माने में । आप लोगों से ही आस लगाये रहते हैं । अभी पिछले दिनों मेरे एक दोस्त मोहनलाल जी थे । उनका मैंने हवाई जहाज़ से हिन्दुस्तान जाने का प्रबन्ध किया । बेचारों ने ५०००) इनाम के बतौर दिये । बस क्या कहूँ आज़ाद भय्या ! कि दोस्ती का हक़ अदा कर दिया ।" दारोगा जी ने कहा ।

आज़ाद दारोग़ा जी के भावों को समझ गया और खुले दिल के साथ कह दिया "आप रुपये की चिंता छोड़कर काम कीजिये दारोग़ा जी ! दोस्ती का हक़ अदा करने में आप मुझे मोहनलाल जी से पीछे नहीं पायेंगे।"

"यह भी भला कुछ कहने की बात है आज़ाद भय्या ! मैं क्या कुछ नहीं जानता ? आप तो उनसे हर बात में बढ़े-चढ़े हैं। उनकी और आपकी कोई बराबरी मैं नहीं कर रहा था और फिर तुम तो घर के आदमी हो। क्या बिना कुछ लिये मैं तुम्हारा काम नहीं कर सकता ?" दारोगा जी बोले।

"लेकिन आपको शीघ्रता करनी होगी इस मामले में।" आज़ाद ने कहा।

"यह सब मेरा काम है, आप चिंता न करें।"

आज़ाद ने १०००) के नोट लाकर दारोगा जी के हवाले किये और कहा "बाकी बैंक से निकलवा कर भिजवा दिये जायेंगे।"

"सो कोई बात नहीं आज़ाद भय्या ! इनकी ही भला क्या जल्दी थी ? आ जाते और न भी आते हो क्या था ? घर में ही तो थे।" नोटों की गड्डी जेबों में सरकाते हुए दारोग़ा जी ने कहा।

इसके पश्चात् दारोग़ा जी वहां से चले गये और आज़ाद चिंता निमग्न सा बैठा रह गया। आज़ाद का दिल वैसे ही पाकिस्तान से उछट रहा था और फिर यह वहां से भाग निकलने का दूसरा कारण बन गया ?

संध्या को जब रात्रि का अंधकार कुछ-कुछ फैल चुका था तो दारोग़ा जी फिर आये और उन्होने आकर सूचना दी कि उन्होंने आज़ाद के लिये हवाई जहाज़ से हिन्दोस्तान जाने का प्रबन्ध कर दिया है। आज़ाद ने दारोग़ा जी की कौली भर कर कहा, "आपने मेरे ऊपर बड़ा एहसान किया है दारोग़ाजी ! मैं आपका एहसान नहीं भूल सकता। इसके एवज़ में आप मुझसे जो चाहें मांग सकते हैं। मुझे देने में संकोच नहीं होगा।"

दारोग़ा जी का नाम मिस्टर इस्माइल था। यह आज़ाद के मित्र थे, इस माने में कि एक बार सन् ४२ की क्रांति में भी इन्होंने आज़ाद की सहायता की थी और सरकारी पंजों से इन्हें और इनके साथी रमेशबाबू को मुक्ति दिलाई थी। इस्माइल आज़ाद के विचारों का सम्मान करता था और दिल से उसका हित चाहता था। रही बात रुपये की सो उतनी कमज़ोरी मानव-चरित्र में हो ही सकती है जब कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत उन्नति करना चाहता है और हर सम्भव तथा असम्भव तरीके से आगे बढ़ने के लिये तत्पर है।

"भाई आज़ाद ! आपके एक मित्र भी तो थे रमेश बाबू ! उनका भला क्या हाल है ? यदि उनके लिये भी मेरी किसी सेवा की आवश्यकता हो तो कहो। मैं हर सम्भव तरीके से उनकी सहायता करने का प्रयत्न करूंगा।" दारोग़ाजी ने धीमे स्वर में बहुत गम्भीरता पूर्वक पूछा।

आज़ाद के नेत्रों के सम्मुख वह चित्र आ गया जब मिस्टर इस्माइल ने सन् ४२ में उन दोनों को अपने ही मकान के एक कमरे में छुपा कर खुफ़िया पुलिस के डिप्टी साहेब से यह कह दिया था, "मैं कह नहीं सकता मिस्टर पुन्ड-रीकर ! मैं स्वयं कई दिन से उनकी खोज में लगा हुआ हूँ। मैं भी चाहता हूँ कि यदि वह लोग मेरे हाथ लग जायें तो शायद मेरे भाग्य का सितारा ही कुछ चमक जाये।"

"ऐसा अवश्य होगा। यदि तुम उन दोनों बदमाशों को पकड़ने में समर्थ होगे तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें अवश्य ही तरक्की दी जायेगी। मैं तुम्हारे लिये पूरी कोशिश करूंगा।"डिप्टी पुन्डरीकर बोले।

कुछ देर इन्हीं विचारों में निमग्न सा आज़ाद बैठा रहा और उसने दारोग़ा जी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"आप विश्वास रखिये कि मेरे काम में कोई धोखा नहीं होगा।" मिस्टर इस्माइल ने आज़ाद का स्वप्न भंग करते हुए कहा।

"क्षमा करना दारोग़ा जी ! मैं कुछ पुराने विचारों में ऐसा खो गया था कि मैंने सुना ही नहीं आप क्या कह रहे थे ? मेरे दोस्त रमेशबाबू हिन्दुस्तान पहुँच चुके हैं। अभी चन्द दिन हुए उनका एक पत्र मेरे पास आया था। मैंने उसका उत्तर उन्हें लौटती डाक से दिया था, परन्तु कह नहीं सकता कि फिर वहां लौट कर उनका उत्तर क्यों नहीं आया ?" आज़ाद बोला।

"क्यों नहीं आया, यह बात आप मुझसे पूछिये। आपकी डाक रोक ली जाती है और आपके पास केवल आपके रिश्तेदारों के ही ख़त आ सकते हैं। हिन्दुस्तान से आने वाले ख़त आपको नहीं दिये जाते। अब आप समझ गये कि आपके पत्रों का उत्तर क्यों नहीं आया ?"

"समझा !" आज़ाद ने गम्भीरता पूर्वक कहा। "फिर मुझे किस प्रकार जाना होगा दरोग़ा जी !"

"मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा, तुम चिंता न करो। रात को दस बजे यहां पर एक कार आयेगी। आप उसमें जाकर बैठ जाना और ड्राइवर से कुछ बातें न

करना। यदि वह कुछ पूछना भी चाहे तो तुम अपना नाम कृष्णचन्द्र बतला देना। बस इससे अधिक कुछ नहीं।"

"ऐसा ही होगा।" आज़ाद बोला।

"अच्छा भाई आज़ाद! अब मुझे आज्ञा दो। मैं यहां अधिक देर नहीं ठहर सकूंगा।" कह कर दारोग़ा जी खड़े हो गये।

चलते समय दोनों एक बार बड़े प्रेम भाव से मिले और फिर मिस्टर इस्माइल वहाँ से विदा हो गये। आज़ाद फिर चिन्ता निमग्न सा बैठ गया। आज उसे भूख नहीं थी। वह पर लगाकर हिन्दुस्तान को उड़ जाना चाहता था। उसके दिल में रह-रह कर ध्यान आ रहा था कि न जाने शांता की क्या दशा होगी? उसके पास तो रुपया भी न रहा होगा। फिर उसका कोई पता भी नहीं। हो सकता है कि उसका पत्र भी उसके पास तक न पहुँचने दिया गया हो। फिर रमेश बाबू! यदि उन्हें पत्र न मिला होगा तो वह अवश्य यह विचारने लगे होंगे कि शायद समय की लहर में खोकर आज़ाद भी वैसा ही हो गया। वह भी इन्सानियत से गिर गया। आज़ाद घर में अकेला था। उसका एक बूढ़ा नौकर था। उसी को बुलाकर उसने अपना घर सँभलवाकर पीछे से कहा, "बुजुर्गवार, आप मेरे वालिद के ज़माने से इस घर की रखवाली करते आ रहे हैं। मुझे आपने बचपन से अपनी गोद में खिला-खिलाकर इतना बड़ा किया है। आज मुझे मजबूरन आपको छोड़कर जाना पड़ रहा है।"

"जाना पड़ रहा है! यह क्यों बेटा?" आश्चर्य से बुजुर्गवार ने पूछा।

"मेरे नाम पर दो सरकारी वारंट हैं। दारोगा इस्माइल मेरी मदद कर रहे हैं हिन्दुस्तान जाने में। बेचारे बड़े नेक आदमी हैं। आप उनको मेरे चले जाने के पश्चात् भी वह जो मदद मांगें देते रहना। मैं वहां जाकर क्या करूंगा यह वहां जाकर खबर दूंगा। आप मेरी चिंता न करना।"

बुजुर्गवार मामले की अहमियत को समझ गए। उनकी आंखों से आँसू की धारा बह निकली। फिर प्यार से उन्होंने आजाद को सीने से लगा लिया। इतनी ही देर में दरवाजे पर गाड़ी आकर खड़ी हो गई। आज़ाद पहिले से ही तैयार खड़ा था। आज़ाद ने बुजर्गवार को 'खुदा हाफिज़' कहा और फिर अटैची केस हाथ में लिए बाहर निकला और सीधा गाड़ी में जाकर बैठ गया। गाड़ी धीरे २ और फिर तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी। आज मौसम बहुत खराब था। ठण्डी हवा चल रही थी। नन्हीं नन्हीं बूंदें मूसलाधार वर्षा में परिवर्तित हो गईं और मन्दी हवा ने तूफानी आंधी का रूप धारण कर लिया। सड़कों पर कई

पेड़ टूटकर कड़-कड़ का शब्द करके धराशाई हो गए। कई मकानों के गिरने का शब्द हुआ। बुजुर्गवार आंखों में आंसू लिये कलेजा हाथों से थामकर, चकरा-कर वहीं ज़मीन पर बैठ गए। मन ही मन कह उठे, 'या खुदा! तुमने इन आखिरी दिनों में यह क्या किया? मैं अपने आक़ा को आक़बत में क्या जवाब दूंगा? जिस बच्चे को वह मेरे सुपुर्द करके गए थे उसको आज मैंने आंधी मेह और तूफान के हवाले कर दिया।' या खुदा, या खुदा—कहकर वह बेहोश हो गए। घर बार ज्यों का त्यों खुला पड़ा रहा रात को—न जाने कब तक रात को। जब बुजुर्गवार को होश हुआ तो वातावरण शांत था और आकाश में चांदनी छिटकी हुई थी।

(१३)

"आज चाय भी नहीं पियेंगे आप" रशीदा ने कहा और रमेश बाबू की कलम रुक गई। चाय ठण्डी हो चुकी थी। रमेश बाबू सम्पादकीय लिख रहे थे।

"मैं सचमुच ही चाय पीना भूल गया। प्रेस का भूत जो सिर पर था। भाई मैं प्रेस के फोरमैन से घबराता हूँ। इसीलिए उसका काम पहिले समाप्त करना होता है। तुम्हें चाय अब दुबारा गर्म करानी होगी।" रशीदा सामने की कुर्सी पर बैठ गई और पहाड़ी नौकर चाय की केतली फिर चाय गर्म करने के लिये उठा कर ले गया।

"इस पत्र के लिये आपको बहुत परिश्रम करना होता है भय्या! इस प्रकार आप यदि हर समय इसी के काम पर जुटे रहेंगे तो निश्चय ही एक दिन बीमार पड़ जायेंगे! आपको चाहिये कि कभी घूमने और दिल बहलाने के लिए भी समय निकाल लिया करें।" मुस्कराती हुई रशीदा कह रही थी।

"क्षमा करना बहिन! मैं वास्तव में तुम्हारे साथ बड़ा भारी अत्यचार करता हूँ। मैंने अपनी आँखों पर वह रंगीन चश्मा चढ़ाया हुआ है कि जिससे सब कुछ अपने ही रंग में देखता हूँ। अब यह भूल नहीं होगी।" कुछ लज्जित होकर रमेश बाबू बोले।

ऐसी बातें करके शरमिन्दा न किया करो भय्या!" रशीदा बोली। "मैं कोई अपने घूमने के लिये तो नहीं कह रही थी। तुम्हें अपने स्वास्थ्य का तो ध्यान करना ही चाहिये। हर समय इसी अखबार की उधेड़बुन में लगे रहते हो। हिन्दुस्तान भर के समाचार पत्रों की काट छांट करना ही मानो अब तुम्हारे जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन गया है। यह पत्र ही तो तुम्हारा सब कुछ नहीं है।" कनखियों से मुस्कुराते हुए रशीदा कह गई।

"नहीं बहिन ! अब मैं कुछ न कुछ समय अवश्य निकालूंगा। यह मैं भी अनुभव करता हूँ कि पिछले मास के कठिन कार्य से मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। परंतु काम भी करना ही होता है। अकेले ही सब काम करता हूँ।" रमेश बाबू ने शान्तस्वर में गम्भीरता पूर्वक कहा।

"मैं कहती हूँ यह आपकी कंजूसी है। सभी काम अपने हाथ से करना कहां का न्याय है ? इस प्रकार मेहनत करके न तो आप अपने काम के साथ न्याय करते हैं और न अपने शरीर और मस्तिष्क के साथ।" रशीदा गम्भीरता पूर्वक बोली।

"यह तुम सत्य कहती हो परन्तु मैं समझता हूँ कि मुझे इनके अतिरिक्त एक और वस्तु है जिसके प्रति न्याय करना है और वह है अपनी बहिन का धन।" मुस्कराकर रमेश बाबू ने कहा।

"आज के युग में दूसरे के रुपये के साथ न्याय करने का आपका साहस सरहानीय है।" गम्भीरता पूर्वक रशीदा बोली और उसने अपना चेहरा ऐसा गम्भीर बना लिया कि मानो वह मुस्कराना जानती ही नहीं।

"यह उपहास की बात नहीं है बहिन ! मैं इस रुपये का मूल्य समझता हूँ। जिस दिन मेरा अखबार सम्पन्न परिस्थिति में चलने लगेगा उस दिन मुझे आवश्यकता नहीं रहेगी इस प्रकार लगकर कार्य करने की। फिर एक बात और भी है बहिन ! एक दिन तुमने मेरे पास जिस लड़की का चित्र देखा था उसके विषय में तुमने कुछ पूछना चाहा था। उस दिन कुछ कारणवश मैं नहीं बतला सका था परन्तु आज बतला सकता हूँ उसके विषय में।

"उस लड़की का नाम था शांता; वह लड़की थी जिसके जीवन में मैं अपने को खो चुका था। वह मेरी सहचरी थी। हम दोनों साथ-साथ एक ही क्लास में पढ़ते थे। कई वर्ष हम दोनों ने एक साथ व्यतीत किये थे, मित्र बनकर, साथी बन कर, प्रिय बनकर, सहकारी बनकर और ... जैसा कुछ भी तुम समझ सको।

"एक दिन वह भयंकर रात्रि आई कि जिसने हम दोनों को एक दूसरे से सर्वदा के लिये ऐसा पृथक कर दिया कि यह भी नहीं मालूम वह कहां गई ? मुझे यह नहीं पता कि वह कहां और किस दशा में है और उसे यह ज्ञात नहीं कि मैं कहां हूँ और किस दशा में हूँ ? वह मेरे जीवन की ज्योति थी, जीवन का प्रकाश थी। जिस दिन से वह प्रकाश इन प्राणों से पृथक हुआ है उसी दिन से मेरे जीवन में अंधकार छा गया। जहां जीवन की आशायें क्रीड़ा करती थीं वहां अब घोर निराशा और अंधकार छाया हुआ है। मैं जीवित हूँ अपना कर्त्तव्य करने के

लिये, जीता रहूँगा परन्तु एक मशीन की भाँति, जीते-जागते महसूस करने वाले प्राणी की भाँति नहीं।

"प्रेस की मशीनें जब चलती हैं तो उनकी तुलना मैं अपने शरीर से करता हूँ। वह अपना कार्य करती हैं और मैं अपना कर्तव्य निभाने का प्रयत्न करता हूँ। ऐसा करने में आज तक मुझसे जो कुछ भी अन्याय तुम्हारे प्रति बन पड़ा है उसे तुम क्षमा करना बहिन! और इस मेरी मांसिक परिस्थिति पर ध्यान देकर उसे भुलाने का प्रयत्न करना।" इतना कहकर चिंता निमग्न रमेश बाबू ने एक बार सिर झुका कर फिर कृतज्ञता पूर्वक रशीदा के मुख पर देखा।

इतने में पहाड़ी चाय लेकर आ गया। रशीदा ने चाय बनाई और फिर दोनों ने अपनी-अपनी प्याली उठा कर होठों से लगा लीं।

"शांता के विषय में जितना भी कोई व्यक्ति कहना चाहे वह कह सकता है। उसके जीवन में प्राचीनता और नवीनता का इतना सुन्दर समन्वय था कि मैंने कम लड़कियों में यह बात पाई है। उसका जीवन बड़ा गम्भीर था। उसके शब्दों में बड़ा भारी वज़न होता था, मानो हर शब्द तोल-तोल कर उसके होठों से बाहर निकलता था। अधिक बोलना उसने सीखा ही नहीं था परन्तु जो कुछ वह कह देती थी वह सत्य होकर रहता था। उसके दो शब्द मेरा दिन भर का भारी से भारी थकान दूर करने के लिये पर्याप्त होते थे। वह मेरे जीवन की स्फूर्ति थी, बल थी।" कहते कहते रमेश बाबू का दिल भर आया। उनकी प्राचीन स्मृतियां नवीन हो उठीं। जीवन की दबी हुई ज्वाला एकदम फिर सुलगने लगी और डबडबाई हुई आंखों से निकल कर दो मोती से आंसू पृथ्वी पर गिर गये।

इसी समय चपरासी ने अन्दर आकर एक कार्ड दिया। उस पर लिखा था अमरनाथ (आथर अन्ड जर्नलिस्ट)। रमेश बाबू ने उन्हें सम्मान के साथ अन्दर ले आने के लिये कहा। यों कभी अमरनाथ जी से रमेश बाबू की बातचीत नहीं हुई थी परन्तु उनके पत्र और उनसे वह परिचित अवश्य थे। उनका अखबार रमेश बाबू को बहुत पसंद आया था। अमरनाथ जी अन्दर आ गये और रमेश बाबू तथा रशीदा दोनों ने उनका स्वागत खड़े होकर किया। सम्मान के साथ उन्हें कुर्सी पर बिठलाया और पहाड़ी ने चाय की एक और प्याली उनके सामने लाकर रख दी।

"चाय तो आप पियेंगे ही भाई अमरनाथ जी?" रमेश बाबू ने कहा।

"कोई अरुचि तो चाय के प्रति नहीं है परन्तु आप व्यर्थ ही कष्ट कर रहे हैं। मैं अभी अभी ाय पीकर ही आ रहा हूँ।" अमरनाथ जी बोले।

"कष्ट की भला इसमें क्या बात है? पत्रकार होने के नाते आप हमारे भाई हैं। फिर भला भाई का काम करने में भी कष्ट होता है?" बहुत मीठे और सुमधुर शब्दों में रशीदा ने तनिक मुस्कराते हुए अमरनाथ की बात का उत्तर दिया।

रमेश बाबू और अमरनाथ दोनों ही एक दूसरे से परिचित थे, पत्रकार होने के नाते, इस लिये परिचय का अधिक बखेड़ा खड़ा नहीं हुआ। चन्द मिनट के बाद ही बातों की धारा बदल गई। भारत सरकार की वर्तमान नीति पर दोनों के विचार केन्द्रित हो गये और उसकी सफलता तथा असफलता पर बहुत ही घुल-मिल कर विचार करने लगे।

"भारत के सामने इस समय सभी क्षेत्रों में जटिल समस्यायें हैं। मेरा विचार है कि हम दोनों आज मिल कर कुछ विषय चुन लें और फिर उन पर विचार करेंगे।" अमरनाथ जी बोले।

"मैं आप के विचार से बिलकुल सहमत हूँ। विषय चुनना ही सब से कठिन कार्य है। प्रति सप्ताह उन विषयों पर बैठ कर विचार कर लिया जायेगा और उन विचारों के आधार पर एक लेख भी प्रति सप्ताह 'इंसान' में प्रकाशित किया जायेगा। मुझे आप से इस कार्य में बहुत सहायता मिलेगी। मैं सच कहता हूँ कि इस प्रस्ताव को रख कर आपने मेरा बहुत बड़ा भार हलका कर दिया। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।" रमेश बाबू ने सहृदयता से कहा।

"इसमें कृतज्ञता की भला क्या बात है? मैं तो तुम से भेट करके आज यह अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे एक ऐसा साथी मिल गया जो मेरी समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकेगा।" अमरनाथ जी बोले।

"अमरनाथ जी! आपने वास्तव में भय्या का बहुत भार हलका कर दिया। इस पत्र ने इनके प्राण पी लिये हैं। अकेले ही इस पत्र के कार्य में इस बुरी तरह जुटे रहते हैं कि इन्हें खाने की भी सुध नहीं रहती। आप इनकी शक्ल देख रहे हैं, आधे भी नहीं रहे। स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता है। मैं कहती हूँ कि आप अपनी सहायता के लिये किसी का सहयोग ले लीजिये लेकिन नहीं; मेरा कहना सुनते ही नहीं। कहते हैं कि मैं सहयोग ले लूंगा परन्तु कोई सहयोग देने योग्य व्यक्ति भी तो मिले। एक दिन कोई महाशय उजागरमल जी आये थे। कहते थे, कि वह भी पत्रकार हैं परन्तु उनसे बातें करके ऐसा प्रतीत हो रहा था कि

मानो किसी झल्ली वाले से बात चीत कर रहे हों इतने संकुचित विचारों का व्यक्ति था, और विचारों का भी क्या कहा जाये, विचार तो मानो उसके पास थे ही नहीं। आप का नाम मैंने भैया की ज़बान से पहिल भी कई बार सुना है। एक बार पता नहीं आपका कौनसा लेख यह पढ़ कर आये थे कि इन्होंने उस दिन प्रशंसा के पुल बांध दिये थे मेरे सामने। मैंने उस दिन भी इनसे कहा था कि आप अमरनाथ जी को ही अपना सहयोगी बना लीजिये; परन्तु इनमें संकोच इतना अधिक है कि कभी जीवन में आप इन्हें अपनी तरफ़ से कोई प्रस्ताव रखते हुए नहीं पायेंगे। यह बात मैं आपसे इस समय इस लिये कह रही हूँ कि जिस से भविष्य में आप कभी कोई चीज़ ग़लत न समझें।" रशीदा बड़े प्रेम पूर्वक यह बातें कहती चली जा रही थी।

"मैं आप की बातों का अर्थ वास्तव में बिलकुल नहीं समझा। जो बात आपने प्रारम्भ में कही उसका इस अंतिम बात से क्या सम्बन्ध है मैं यह समझने में असमर्थ रहा।" अमरनाथ जी कुछ सकपकाये से बोले।

"मेरा कहने का अर्थ केवल इतना ही है अमरनाथ जी! कि आप आज से इस पत्र को अपनाकर 'इन्सान' पत्र को अपना पत्र समझें। भय्या के कहने की कभी बाट न देखें क्यों कि इनकी यह बात है कि यह अपनी तरफ़ से कभी जीवन में कुछ नहीं कहेंगे।" बहुत स्पष्टता के साथ रशीदा ने अपने विचार प्रकट किये।

"आप लोगों के इस स्नेह के लिए मैं आपका आभारी हूँ और इस प्रकार का साधन पाकर मैं समझता हूँ कि मैं भी अपने विचारों का अधिक सुन्दर रूप से स्पष्टीकरण कर सकूंगा। हमारा पत्र केवल विचारात्मक ही होगा उसमें समाचारों का झमेला नहीं चलेगा। इस प्रकार के पत्र की दिल्ली में अधिक आवश्यकता है। अधिकाँश पत्र या तो सुन्दर टाईटिल और चित्रों के कारण बिकते हैं या किसी और तड़क भड़क के आधार पर। विचारों के आधार पर जनता द्वारा अपनाया जाने वाला हिन्दी का एक भी साप्ताहिक पत्र दिल्ली से नहीं निकलता। मैं आशा करता हूँ कि हमारा यह पत्र दिल्ली के इस अभाव की पूर्ति में पूर्णतया सफल होगा।" अमरनाथ ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"ईश्वर करे आपकी इच्छा पूर्ण हो और मेरा तथा आपका परिश्रम फलीभूत हो सके।" बहुत गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू बोले।

अमरनाथ जी का आज का यहां पर आना यह रूप धारण कर लेगा यह स्वप्न में भी किसी को आशा नहीं हो सकती थी। 'इन्सान' पत्र के अङ्कों को पढ़कर

अमरनाथ जी एक प्रकार से रमेश बाबू की लेखनी के मुरीद बन चुके थे। उनके दिल में रमेश बाबू के लिए श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी और इसी लिए वह एक दिन इस पत्र के सम्पादक से मिलना चाहते थे। यह मिलन इस प्रकार का होगा इस पर उन्होंने पहिले कभी विचार भी नहीं किया था। विचारों का समन्वय होना था कि दिलों में स्थान पैदा हो गया और फिर रशीदा का वह मीठा स्वागत भला किस प्रकार टाला जा सकता था? अमरनाथ जी से अनायास ही 'हां' कहते बनी, 'ना' कहने के लिये कहीं दूर-दूर तक कोई ख़याल नहीं था।

फिर कितनी ही देर तक भारत की समस्याओं पर विचार होता रहा। रशीदा भी कभी कभी अपना मत प्रकट कर देती थी। कभी बहस गर्म हो जाती थी और कभी ठण्डी, कभी सरकार की कड़ी आलोचना होने लगती थी और कभी उसकी सीमित शक्तियों की ओर विचार किया जाता था। भारत के विभाजन के कारण जो परिस्थितियां पैदा हो गई थीं फिर बहुत देर तक उन पर विचार होता रहा। विशेष रूप से बेघर लोगों को बसाने की समस्या पर विचार किया गया। फिर हैदराबाद और काश्मीर की समस्याओं को लेकर कितनी ही देर तक बहस होती रही। हिन्दू मुस्लिम एकता का विषय भी नहीं छोड़ा गया। फिर महंगाई, काला बाज़ार, खाद्य पदार्थों की कमी, बेरोज़गारी, व्यापार, काम्युनिज्म, सोशलिज्म आदि सभी पर गर्म-गर्म बहस हुई और अन्त में जो कुछ विषय चुन लिए गए वह इस प्रकार हैं:—

१. बेघर लोगों की समस्या।

२. हैदराबाद भारत यूनियन का ही अंग है।

३. काश्मीर को भारत यूनियन से पृथक नहीं किया जा सकत।

४. भारत से काला बाज़ार मिटाने की जिम्मेदारी सरकार तथा जनता दोनों पर बराबर है।

५. भारत में सुख तथा शाँति स्थापित करने के लिए आपसी झगड़ों को छोड़ना होगा।

६. व्यापारी समाज को खुदगर्जी छोड़कर सरकार से सहयोग करना चाहिये।

७. भारत में शाँति स्थापित करने के लिए एक सुदृढ़ सरकार की आवश्यकता है।

"बस भाई इस समय इन्हीं सात विषयों को चुनकर हम अपना कार्यक्रम समाप्त करते हैं। शेष फिर किसी दिन बैठकर विचार कर लिया जायेगा। आज आपका मैंने बहुत सा समय नष्ट कर दिया अमरनाथ जी!" रमेश बाबू बोले।

"इसे समय नष्ट करना कहोगे भय्या ! मैं तो समझता हूँ कि वास्तव में यदि मेरे समय का कोई सदुपयोग हो सकता है तो वह आज ही हुआ है।" कृतज्ञता प्रकट करते हुए अमरनाथ जी बोले और फिर सबने मिलकर एक एक प्याली चाय पी।

चाय पीकर अमरनाथजी ने बिदा ली और फिर रमेशबाबू तथा रशीदा कितनी ही देर तक अमरनाथ जी के विषय में बैठे बातचीत करते रहे । अमरनाथ जी के आज प्रथम बार मिलन का रशीदा पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह उनकी ओर अपना सम्पूर्ण स्वागत लेकर झुक पड़ीं और अमरनाथ 'नां' नहीं कह सके।

"तुमने अमरनाथ को धर्म संकट में फंसा दिया।" मुस्करा कर रमेश बाबू ने कहा।

"यह भला कैसे भय्या ! मैंने तो कोई विशेष बात नहीं की। जो कुछ भी हुआ है वह मैं मानती हूँ कि नाटकीय ढंग पर हुआ है परन्तु मैंने तो सब कुछ साधारण सरलता से कहा था।" कुछ सकपकाई सी रशीदा बोली।

"यह मुझे समझाने की आवश्यकता नहीं रशीदा ! क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे मनोभावों को भी नहीं समझ सकता। परन्तु व्यक्ति बहुत सरल और सहृदय है, यह मैं मानता हूँ। ऐसा व्यक्ति है कि जिसके जीवन में छुपाने के लिए कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है वह स्पष्ट है।"रमेश बाबू।

"यह सब कुछ आप जानें भय्या ! मेरे पास तो न यह सब कुछ समझने के लिये दिमाग़ है और न समय ही। आज आपने घूमने चलने का वचन दिया था मुझे। शायद भूल गये होंगे आप !" रशीदा बोली।

"नहीं बहिन ! आज मैं नहीं भूलूंगा। आज अवश्य घूमने चलेंगे। अमरनाथ जी ने मिलकर आज मेरे सिर का बहुत कुछ भार हलका कर दिया। आज हम लोग इण्डियागेट की तरफ़ घूमने चलेंगे । संध्या-समय वह घूमने का बहुत रमणीक स्थान है। चारों तरफ घास के सुथरे मैदानों पर बिछी हुई हरियाली वहां के झरने तथा पत्थर की सुन्दर बनी हुई नहर अपनी निराली ही शोभा के साथ दर्शकों के चित्र का आकर्षण बन जाती है। कितना शानदार दृश्य है वह भी जहाँ नवीनता और प्राचीनता का समन्वय दिखलाई देता है। यदि एक ओर दृष्टि डालो तो सरकारी दफ्तर के रूप में अंग्रेज़ी भारत की यादगार सामने दिखलाई देती है और दूसरी ओर स्थित है कितने वर्ष पुराना महाभारत के समय का पाण्डवों का बनवाया हुआ गढ़, है जिसकी केवल चारदीवारी, और वह भी खण्डहरों के रूप में ही अवशेष रह गई है। एक ओर दृष्टि डालने पर

यदि पराधीन भारत की वह दहकती हुई स्मृति जागृत हो उठती है कि जिसको जड़ मूल से नष्ट करने के लिए भारत के अनेकों सपूतों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी तो दूसरी ओर भारत का वह गौरव और गरिमापूर्ण समय भी सामने आ जाता है जब अपने देश के यश की पताका देश देशांतरों में फैराती थी और भारत के वीरों का लोहा दूर दूर देशों में माना जाता था।

क्या खूब स्थान चुना है अंग्रेज़ों ने भी सन् १९१४ की लड़ाई का स्मृति चिन्ह स्थापित करने के लिए ?" रमेश बाबू कहते जा रहे थे।

"तो तुम भय्या ! मैं समझ गई कि दिखलाओगे कुछ नहीं। बस यहीं बैठे २ सब कुछ सुनाकर मेरी तृप्ति कर देना चाहते हो। यह तुम्हारी आदत अच्छी नहीं है भय्या !" मुस्कराती हुई रशीदा खड़ी हो गई।

"नहीं पगली ! नहीं, आज अवश्य चलेंगे।" रमेश बाबू ने स्नेह भरे शब्दों में कहा। "और आज मैं अपने सब पिछले दिनों की कमी को पूरा करूंगा। आज मेरा चित्त न जाने क्यों इतना प्रसन्न है ? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो मेरे शरीर में फिर वही पुरानी स्फूर्ति आ गई है जिसके फलस्वरूप मैं कई कई दिन घूमते रहने पर भी तनिक सा थकान अनुभव नहीं करता था। मेरी चाल में बल रहता था और हृदय में उत्साह। उस उत्साह का अनुभव अपने जीवन में आज लाहौर से आने के बाद प्रथम बार कर रहा हूँ। मुझे आज ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो मेरे अब तक के परिश्रम का फल मुझे आज मिल गया।"

"जब किसी की इच्छित वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है तो प्रसन्नता होती ही है। आपको एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी और वह आपको मिल गया। यही कारण है आपकी प्रसन्नता का" रशीदा धीमे स्वर में कहती जा रही थी परन्तु बीच ही में रोक कर रमेश बाबू बोल उठे, "नहीं रशीदा नहीं ! योग्यता की बात नहीं है। बात वास्तव में कुछ और ही है जिसे मेरा हृदय अनुभव कर रहा है किसी अज्ञात प्रेरणा के साथ। कारण मैं स्वयं नहीं जानता परन्तु कुछ भेद अवश्य है। अमरनाथ जी के प्रति मेरा इतना खिंचाव क्यों हुआ यह मैं नहीं कह सकता परन्तु वह है बहुत ही प्रबल।" बहुत गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू कह रहे थे।

पहाड़ी नौकर जो कि तांगा लेने के लिये गया हुआ था तांगा लेकर आ गया। दोनों प्रसन्नता पूर्वक घूमने के लिये उठ खड़े हुए। घूमने जाने का स्थान था इन्डियागेट, यह पहिले से ही निश्चित हो चुका था।

(१४)

"किसी भेदिये ने जाकर ठीक समय पर सूचना दी। यदि पुलिस दस मिनट भी देर से पहुँचती तो जहाज़ ऊपर उठ चुका होता।" दारोग़ाजी ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"अब क्या होगा दारोग़ाजी! मेरा लाल अब किस तरह बचेगा?" आज़ाद का बुज़ुर्ग नौकर अपने भारी दिल को किसी प्रकार संभालता हुआ बोला। बुज़ुर्गवार का दिल बैठा जा रहा था और उनकी आँखें डबडबाई हुई थीं। यदि दारोग़ाजी इस समय आश्वासन न देते तो शायद वह चीखें मार-मार कर रोना प्रारम्भ कर देते।

"आप तसल्ली से काम लीजिये। यदि खुदा को मंजूर हुआ तो सब कुछ ठीक ही होगा। दफ़ात जो उन पर लगाई गई हैं वह ऐसी संगीन नहीं हैं कि जिनमें ज़मानत हो ही न सके। मैं आपको तरीक़ा बतलादूंगा आप ज़मानत देकर उन्हें छुड़ा लीजिये। फिर देखा जायेगा कि क्या करना होता है? ज़मानत नक़द रुपये की होगी उसका आपको प्रबन्ध करना होगा। रुपया मेरे पास भी नहीं है वरना भाई आज़ाद के लिये मैं ही कुछ करता। यह भार आपको ही अपने कंधों पर संभालना होगा।" दारोग़ा जी बोले।

"आप इसकी फ़िक्र न करें दारोग़ाजी! रुपये का इन्तज़ाम आप मुझ पर छोड़ दीजिये! एक लाख रुपया भी नक़द भरना होगा तो मैं भर दूंगा। मेरे मालिक के पास रुपये की कमी नहीं है, उनका जो ख़ज़ाना भरा पड़ा है, वह किस दिन काम आयेगा?" बुज़ुर्गवार बोले।

"तब सब ठीक हो जायेगा। मैं रुपये की कमज़ोरी से ही ज़रा डर रहा था। अगर रुपये की कमी न हुई तो मैं जो चाहूँगा कर सकूंगा। आप एक बात का ध्यान रखना कि मेरे यहाँ आने जाने की ख़बर किसी को न मिलने पाये वरना फिर सब कुछ असम्भव हो जायेगा और साथ ही मुझे भी नौकरी से बर्ख़ास्त होकर जेलख़ाने की हवा खानी होगी। नौकरी छूटने और जेलख़ाने जाने से मैं नहीं डरता लेकिन ऐसा होने पर मैं आज़ाद भय्या की कुछ भी मदद नहीं कर सकूंगा।" दारोग़ाजी गम्भीरता पूर्वक बोले।

"यह आप क्या कह रहे हैं भला दारोग़ाजी? क्या मैं इतना पागल हूँ कि अपने पैरों में अपने ही हाथों से कुल्हाड़ी मार लूंगा। मेरे भी यह बाल धूप में सुफ़ेद नहीं हुए हैं। इन राज़ की बातों को मैं खूब जानता हूँ और फिर आज़ाद के साथ इतने दिन रहा हूँ। नहीं समझता था जब तक आज़ाद भय्या के वालिद

साहेब का ज़माना रहा। तब तक तो मैं वाक़ई बुद्धू था क्योंकि वह इतने सीधे सादे इन्सान थे कि अपने पलंग और अपनी मसनद से उठ कर कहीं जाना उनके लिये तोबा करने के बराबर था। यहाँ पर यार लोग शतरंज के मुहरे नचाने के लिये हर समय जुटे रहते थे। उनकी रंगीन पेचवानी की गुड़-गुड़ाहट हर समय सुनाई देती रहती थी और मेरा काम भी घर की चारदीवारी के बाहर कभी शाज़ोनादिर ही पड़ता था। क्या खूब ज़माना था वह भी दारोग़ाजी? आये दिन जशन, आये दिन मुजरा यह घर एक लाजवाब गुलशन था; जिसकी ंगी-नियों से लाहौर का हर बशर वाकिफ़ था। बड़-बड़े हुक्काम इस ड्योढ़ी पर सलाम झुकाने के लिये आया करते थे और क्या खूब इख़लाक था उनका भी कि मेरी उनकी ज़िन्दगी में कभी किसी ऐसे आदमी से मुलाक़ात नहीं हुई कि जो उनके पास कुछ तमन्ना लेकर आया हो और उसकी वह तमन्ना उन्होंने पूरी न की हो। क्या खूब इक़बाल था उनका कि मिट्टी को छू दिया तो सोना हो गया दारोग़ाजी सोना! रुपया यूंही आता था, बिन बुलाया, बिन बुलाया। कभी रुपया हासिल करने की कोशिश करते हुए मैंने उन्हें नहीं देखा। उन्हें यह भी पता नहीं कि रुपया कहाँ से कितना आता था और कितना जाता था और कहाँ जाता था? आपके इसी ख़ादिम के हाथों में सब इन्तज़ाम रहता था। तिजोरी की चाबियाँ न कभी उनके पास रहती थीं और न कभी बेग़म साहिबां के पास। वह हमेशा से मुझी बदनसीब के हाथों में रही हैं। उनके मरने के बाद भी इन्तज़ाम में कोई फ़र्क नहीं आया। एक दिन अचानक खुदा की मरज़ी पर क्या किसी का चारा चल सकता है, वह और बेग़म साहिबां बीमार पड़ गये और एक ही दिन सिर्फ चार घंटे के आगे पीछे दोनों इस दुनिया से कूच कर गये। उस दिन आज़ाद भय्या को उन्होंने मेरे हाथों में सौंपा था। अपना फर्ज़ पूरा कर रहा हूँ दारोग़ाजी! जहां तक मुझसे बन पड़ा। आज दुनियां में मेरा अपना कहने के लिये आज़ाद के अलावा और कुछ नहीं है। वह मेरे आका हैं, बेटे हैं सभी कुछ तो हैं, जो कुछ भी हैं वही हैं।" कहते कहते बुज़ुर्गवार की जबान रुक गई और आँखें डब-डबा आईं। दारोग़ाजी ने भी उस पुराने आलीशान खांदान की बर्बादी के यह अंतिम दिन अपनी आँखों से देखे। आज़ाद के पिता के समय इस हवेली में क्या शानोशौकत रही होगी? किस प्रकार दुनिया की रंगीनियों से यह सब जग-मगाता होगा, वह नक्शा एकदम आँखों के सामने आगया और एक क्षण के लिये उनका दिल भी सहानुभूति से भारी हो आया। कितनी ही देर तक सोचते रहे कि इस ऐशोइशरत में पले हुए आज़ाद ने ज़िदगी के इन टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर

क्यों चलना पसंद किया ? क्या परेशानियों में फंसने में भी इन्सान को मज़ा आता है ? कैसी अजीब बात है ? कुछ समझ काम नहीं करती । इन्हीं विचारों में निमग्न दारोग़ाजी कुर्सी पर बैठ गये ।

"आप बैठिये मैं आपके लिये कुछ नाश्ता ले आऊं ।" और इतना कह कर बूढ़ा नौकर अन्दर की तरफ़ चला गया । दारोग़ाजी न जाने किन विचारों में तल्लीन से बैठे रहे । उनके दिमाग़ में बार-बार यही विचार चक्कर लगा रहा था कि इन्सान परेशानियों में क्यों पड़ता है ? रुपये के लिये, ठीक है क्योंकि रुपया प्राप्त करके उसे दुनिया का आनंद भोग करना होता है परन्तु जिसके पास रुपये की कमी नहीं वह क्यों फंसता है परेशानियों में ? शायद रुपये से भी चमकदार कोई अन्य वस्तु है जिसकी प्राप्ति के लिये व्यक्ति धन, घर सबसे तिनके की भांति नाता तोड़ देता है और ऐसा करने में उसे तनिक भी तकलीफ़ नहीं होती ।

इसी समय दारोग़ाजी के सामने मेज़ पर नाश्ते के लिये कुछ गाजर का हलुआ दाल भीजी, समोसे और कुछ जलेबियां, गर्मागर्म आगईं । साथ में चाय भी थी ।

"आपने खामखां इतना तकल्लुफ़ कर डाला ।" एक गर्म समोसा खाने के लिये उठाते हुए दारोग़ाजी बोले और फिर खाने में संलग्न हो गये ।

"इसमें तकल्लुफ़ क्या है दारोग़ाजी ! मैं तो तुम्हें भी आज़ाद की ही तरह अपना अज़ीज समझता हूँ । बेटा किसी तरह भी हो अब आज़ाद को बचाना तुम्हारा काम है । तुम समझ सकते हो कि मेरे प्राण उसी में अटके हुए हैं । जब तक वह तकलीफ़ में है मेरा खाना-पीना हराम है । मैं कुछ खा नहीं सकता, कुछ पी नहीं सकता ।" बुज़ुर्गवार बोले ।

"उनकी आप फ़िक्र न करें । मैं आज जाकर पूरी खबर ला दूंगा और तुम कल कचहरी जाकर उनकी ज़मानत कर सकते हो । एक बार उन्हें ज़मानत पर छुड़ा लाना फिर सोचेंगे कि हमको क्या करना चाहिये ?" बहुत गम्भीरता पूर्वक दारोग़ाजी ने कहा ।

"जैसा तुम मुनासिब समझो बेटा !" बूढ़ा नौकर बोला । दारोग़ाजी ने बेटा शब्द इस बूढ़े नौकर के मुख से आज अपनी याद में प्रथम बार सुना था । मां बाप का प्यार क्या होता है इस भेद से वह सर्वथा अपरिचित थे । उनकी याद से पूर्व ही उनके माता-पिता एक महामारी के शिकार बन गये थे । उनके मरने के पश्चात् उनकी बड़ी बहन ने उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया परन्तु दुर्भाग्यवश वह भी अधिक दिन साथ नहीं दे सकी । एक दिन अकस्मात् बैठे बिठाये दिल की हरकत धीमी पड़ने लगी । सब सगे सम्बन्धी एकत्रित हो गये और यह भी उनके

पलंग के एक पाये के साथ लगकर आँसू बहा रहे थे। बहन के मरने के पश्चात् बहन के घर रहना इनके लिये असम्भव हो गया और इन्होंने एक रेस्टोरेन्ट में नौकरी कर ली। कुछ दिन जीवन के इसी प्रकार व्यतीत किये। दिन में नौकरी करना और रात्रि में किसी स्कूल में जाकर पढ़ना। इस प्रकार प्राइवेट तरीके से पढ़ कर ही इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। रेस्टोरेन्ट का मालिक इन्हें बहुत प्यार करता था, मेहनत, ईमानदारी और वफ़ादारी के कारण।

इस रेस्टोरेन्ट में एक सुपरिन्टैंन्डैन्ट-पुलिस साहेब नित्य चाय पीने के लिये आया करते थे और यह उन्हें बहुत सफ़ाई के साथ चाय पिलाते थे। कभी वह ट्रे में दो आने छोड़ जाते थे और कभी चार आने परन्तु यह कभी उन पैसों को नहीं लेते थे। ट्रे में छोड़े हुए पैसों को उठाना यह अपनी मान-हानि समझते थे और इसीलिये पैसों की तश्तरी ज्यों कि त्यों उठा कर रेस्टोरेन्ट के मालिक के सामने रख देते थे।

एक दिन यह रहस्य सुपरिन्टैन्डैन्ट साहब पर भी खुल गया और वह इस साधारण सी बात से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी समय इन्हें बुला कर इनका नाम पूछा और कहा कि दूसरे दिन वह उनके बंगले पर उनसे मिलें।

यह दूसरे ही दिन सुबह उठ, हाथ मुंह धो, चाय आदि पीकर, सुपरिन-टैंडेन्ट साहेब की कोठी पर पहुंच गये। सुपरिनटैंन्डेन्ट साहेब को यह जानकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि वह मैट्रिक पास है और उन्होंने तुरन्त ही उसे सिपा-हियों में भर्ती कर लिया। इसके पश्चात् साहब का हाथ सिर पर रहा और एक दिन वह आया कि वह दारोग़ाजी कहलाने के हक़दार बन गये।

इस प्रकार दारोग़ाजी का संसार में इस समय कुछ नहीं था। आज़ाद के प्रति इनके दिल में इतना प्रेम न जाने क्यों उमड़ आया था कि बिना किसी लालच के अपनी इतनी कठिनाई से प्राप्त की हुई नौकरी तक को दाव पर लगाने के लिये भी यह तैयार हो गये थे। नाश्ता करके दारोग़ाजी वहां से चले गये और उस दिन उन्होंने आज़ाद के केस की पूरी जाँच पर्ताल करके एक बैरिस्टर साहेब से भी पूरा मशवरा कर लिया।

३०,०००) की ज़मानत अदालत ने माँगी और वह आज़ाद के बुज़ुर्गवार नौकर ने नक़द ख़ज़ाने में जमा करा दी। ज़मानत जमा करके आज़ाद को रिहाई मिली और बज़ुर्गवार उन्हें खुशी-खुशी साथ लेकर घर पर आये। बजुर्गवार बहुत प्रसन्न थे परन्तु आज़ाद का चित्त बहुत खिन्न था। उसके मस्तिष्क में रह रह कर यही विचार चक्कर लगा रहा था कि इस प्रकार की ज़मानतें कहां तक

दी जायेंगी और जब सरकार उसे पकड़ना ही चाहेगी तो फिर किसी नये जुर्म में फँसा कर पकड़ लेगी। मतलब यह है कि वह बच नहीं सकेगा। पाकिस्तान आज़ाद के लिये एक बड़ा कारागार है जिसकी सीमायें उसके लिये जेलखाने की चार-दीवारी से कम नहीं। उसकी ज़बान पर प्रतिबन्ध है, उसकी हरकतों पर रुकावट है, उसका पत्र-व्यवहार बन्द है, उसके विचारों को स्वतंत्रता नहीं, मतलब यह है कि इस स्वतंत्र पाकिस्तान में आज़ाद की हर चीज़ परतन्त्र है, बन्धन-मुक्त नहीं।

आज़ाद को अपनी भूल पर आज रह-रह कर पश्चात्ताप हो रहा था। शाँता के वह शब्द "कि एक दिन तुम अनुभव करोगे इस भूल का कि अब पाकिस्तान में तुम्हारे विचारों वाले व्यक्ति के लिये कोई स्थान नहीं" उसे रह-रह कर याद आ रहे थे। उस दिन जब शांता ने कहा था तो उसके पास समय था अपनी पाकिस्तान की जायदाद को अच्छे दामों पर बेचने के लिये और सावधानी के साथ अपना धन माल लेकर भारत के किसी सुरक्षित कोने में जाकर बसने के लिये; परन्तु आज, आज तो केवल प्राणों को लेकर जाना भी एक समस्या थी। अपने आश्वासन पर मैंने शांता को यहां से भेज दिया और उसकी मैं कोई सहायता न कर सका। पता नहीं वहां पर उसकी क्या दशा होगी? किन कठिन परिस्थितियों में वह अपना जीवन निर्वाह कर रही होगी? इसी प्रकार की अनेकों उलझनों में आज़ाद का दिमाग़ परेशान था।

आज़ाद अपने कमरे में अकेला बैठा था। चारों ओर अन्धकार छा गया और आज़ाद को बत्ती जलाने का भी ध्यान न रहा। इतने में मिस्टर इस्माइल ने आकर धीरे से दरवाज़ा खोला और वह सीधे आज़ाद के पास पहुँच कर कान में बोले, "सब काम तैयार है फौरन चलना चाहिये।"

आज़ाद का मुर्झाया हुआ चेहरा एकदम खिल उठा और उसने बिना एक शब्द भी मुख से कहे इस्माइल को गले से लगा। बुज़ुर्गवार पीछे खड़े थे। उन्होंने तिजोरी खोलकर एक नोटों का गड्डा निकाला और आज़ाद की तरफ़ करते हुए बोले, "मालिक यह आपकी अमानत है। मैंने कल आप से बिना पूछे ही आपके दो मकान बेच डाले। यह मकान वह थे जो आपके मालिक साहेब वसीयत में मेरे नाम कर गये थे।"

आज़ाद की आँखें भर आईं और वह एक क्षण के लिये बुज़ुर्गवार से लिपट कर फूट-फूट कर रो पड़ा।

"अधिक समय नहीं है आज़ाद भैय्या! पुलिस अभी-अभी मकान पर आपकी खोज करने के लिये आने वाली है। आपके नाम पर दो और वारेन्ट

बन चुके हैं।" दारोग़ाजी ने कहा और आज़ाद तुरन्त चलने के लिये उद्यत हो गया।

आज़ाद और मिस्टर इस्माइल दोनों जाकर कार में बैठ गये और बुज़ुर्गवार दरवाजे की चौखट कस कर पकड़े न जाने किस प्रकार खड़े रहे।

(१५)

"क्या आपने अपना पत्र एकदम बन्द कर देने का निश्चय कर लिया भैय्या?" शांता ने गम्भीरता पूर्वक पूछा।

"हाँ बहिन! इस समय तो यही निश्चय किया है।" उतनी ही गम्भीरता के साथ अमरनाथ ने उत्तर दिया।

"परन्तु भय्या! अब आपका खर्चा कहां से चलेगा? आप तो कहते थे कि खर्चे के विषय में आपने उन लोगों से कुछ बात चीत ही नहीं की।" कुछ उत्सुखता के साथ शांता ने पूछा।

"यह ठीक है शांता! परन्तु खर्चा तो मेरा पहिले पत्र से भी नहीं चलता था। प्रेस की नौकरी करके जो पैसा कमाता था उसे इस अपने पत्र में खर्च कर देता था। मेरा पत्र केवल मेरे विचारों के स्पष्टीकरण का साधन मात्र था। अपना पेट काट कर मैं उस साधन को जुटाता था, अब वह साधन मुफ्त में ही प्राप्त हो गया और जो पैसे उसमें खर्च होते थे वह बच गये। मैंने तो केवल यही सोच कर उन लोगों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों ही व्यक्ति बड़े भावुक तथा सहृदय हैं।" अमरनाथ जी बोले।

इतने में छोटी शांता भी पानी लेकर आ गई और बड़ी शांता ने स्टोव जला लिया। आज रविवार का दिन था। शांता और अमरनाथ जी पिकनिक के लिये ओखले आये हुए थे। नदी के किनारे आम के वृक्ष के नीचे उस कच्ची बनी हुइ सड़क की अन्तिम छत्तरी के पास इन लोगों ने अपना डेरा लगाया हुआ था। एक बड़ी दरी बिछाई हुई थी जिस पर छोटी शांता आनन्द के साथ लुड़कती फिरती थी। चाय पानी का सब सामान यह लोग साथ लेकर आये थे।

"कमला अभी तक नहीं आई।" शान्ता ने पूछा, "आपने कह तो दिया था न कमला से?"

"कह दिया था भाई कह दिया था! तुम कमला पर ऐसी लट्टू न जाने क्यों हो? यदि कमला न आई तो शायद तुम्हें चाय पीनी भी दूभर हो जाये और वह जो काजू और मिठाई वग़ैरा मैं लाया हूँ वह सब बेकार ही रह जायें!" अमरनाथ जी बोले।

"क्यों ! बेकार क्यों जायेंगी भय्या ? कम्पनी के बैल तो आपने काफ़ी इन्वाइट किये होंगे।" शांता यह कह ही रही थी कि सामने से सरदार करमसिंह जी और उजागरमल जी आते दिखलाई दिये, "यह लो भय्या ! आपकी मिठाई को टिकाने लगाने वाले भी आगये। थिन्क ऑफ़ दी डैविल्स अन्ड दे आर प्रेजेन्ट।" मुस्कुराकर सामने आने वाले दो व्यक्तियों की ओर संकेत करके शान्ता बोली।

अमरनाथ जी खिलखिला कर हंस दिये और इसी प्रकार हंसते-हंसते उन्होंने करमसिंह और उजागरमल का "आईए ! आईए !! हम लोग तो आपकी ही राह देख रहे थे।" कहकर स्वागत किया।

करमसिंह ने हंसी का उत्तर उससे भी ज़ोरदार हंसी के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर साइकिल से उतरते हुए दिया और उजागरमल जी ज़रा गम्भीरता पूर्वक मुस्काराए और फिर दोनों आकर बिछी हुई दरी पर बैठ गये।

"यदि क्षमा करो तो एक बात कह डालूं अमरनाथ जी !" उसी प्रकार मुस्कुराते हुए उजागरमल जी ने अपनी मोटी तोंद पर हाथ फेर कर कहा।

"क्षमा करने की भला क्या बात है भाई उजागरमल जी ! और फिर आप जैसे स्वतन्त्र विचारों वाले पत्रकार के लिए तो सभी कुछ क्षम्य है।" कहकर अमरनाथ जी ने उजागरमल जी के मुंह पर इस प्रकार ताका कि मानो कोई गम्भीर बात यदि इत्तफ़ाकन उनके मुख में आ भी जाये जो तो अमरनाथ जी अपनी पैनी दृष्टि के कांटे में टांग कर उसे बाहर खींच लायें। ऐसा न हो कि कहीं स्पष्ट करने की क्षमता न रहने के कारण उजागरमल जी के गहन गम्भीर विचार चक्कर खाकर उनके फूले हुए कुप्पासे गालों के अन्दर ही घुमड़ रह जायें।

"मेरे कहने का मतलब था कि आज की यह पार्टी कुछ फीकी-फीकी सी लगती है...।"

"यानी पुरलुत्फ़ नहीं है।" बीच ही में उजागरमल जी के विचारों को लेकर ज़रा तीव्र गति के साथ कुछ उछलकर करमसिंह जी कह गए।

"जी हां ! जी हां ! यही मेरा मतलब था।" उजागरमल जी बोले।

"लेकिन उसका साधन जुटाने का आप लोगों ने कुछ प्रयत्न भी नहीं किया !" कनखियों से झाँकते हुए एक व्यंग भरी दृष्टि डालकर शांता ने बड़ी तीव्रता से कहा और वह फिर अपने कार्य में जुट गई। मानो यह शब्द अचानक ही उसकी ज़बान से निकल गए, बिना अभिप्राय और बिना किसी विशेष अर्थ के।

अब करमसिंह और उजागरमल का ध्यान शाँता की ओर गया और उनकी कुछ जान में जान आई। नारी के अभाव की कुछ पूर्ति उन्हें शांता के रूप में प्राप्त हुई। आँखों को भी कुछ लाभ हुआ परन्तु जिह्वा बेचारी स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सकी। कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था कि शाँता के सामने बातें करते हुए उन्हें भय लगता था और उनकी आँखें कभी ऊपर को उठने का प्रयास नहीं कर पाती थीं। शाँता के मुख का भी इन दोनों व्यक्तियों ने केवल प्रोफ़ाइल मात्र ही साक्षात रूप में देखा था और एक बार जब सामने से देखने की इच्छा हुई थी तो इन्हें शान्ता के चित्र की शरण लेनी पड़ी थी!

"क्या आपने यह नहीं सुना बहिन शाँता क्या कह रही हैं।" अमरनाथ ने मुस्कराते हुए उजागरमल से पूछा।

"सुनता भला क्यों नहीं? परन्तु यह सवाल करमसिंह जी से किया गया था, क्यों बहिन शाँता!" शाँता की तरफ मुख करके उजागरमल जी ज़रा मुंह ऊपर-नीचे करके बोले।

"जी नहीं!" ज़रा सकपका कर करमसिंह बोले "मूल प्रश्न आपका था और प्रसंग भी आनंद न आने का आपने की छेड़ा था, मेरे लिये भला क्या है? साधु आदमी हूँ। साहित्य की सेवा करने में सर्वस्व अर्पण कर दिया। मैं तो जब सेवा के पथ पर चलता हूँ तो आनंद को उठाकर बालाये ताक यानी किसी आलमारी में रख देता हूँ।" गम्भीरता पूर्वक करमसिंह ने कहा।

"यही बात है लाला उजागरमल जी! मैं इनकी बात का पूरी तरह समर्थन करता हूँ। यह तो साहित्य के पुजारी हैं, कर्मठ व्यक्ति हैं। गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्खों को यह पाँच निशानियाँ दी क्यों! जानते हो? इसीलिये कि वह युद्ध का समय था इस लिये बाल काटने का समय नहीं था, कृपाण, कंघा, कड़ा और कुछ आवश्यक वस्तुऐं थीं। आज जो सरदार करमसिंह के साथ यह तुम्हें दिखलाई दे रही हैं वह इसलिये नहीं कि इन्हें धर्म से कोई विशेष प्रेम है, बल्कि इसलिए कि इनके पास साहित्य सेवा से इतना समय ही नहीं बचता कि यह इन व्यर्थ के झगड़ों में पड़ते फिरें। रविवार को जो तुम इन्हें गुरुद्वारे में नियमित रूप से जाते देखते हो सो इसलिए नहीं कि इनका वहाँ जाना बहुत आवश्यक है। बल्कि इसलिए कि यह इनके व्यापार यानी पत्रकारिता का एक अङ्ग बन गया है यही बात है न करमसिंह जी!" बहुत गम्भीरता पूर्वक अमरनाथ जी बोले और सरदार करमसिंह ने भी सिर हिला दिया।

सरदार साहेब के सिर हिलाते ही सब खिलखिलाकर हंस पड़े और बड़े आश्चर्य से देखा कि कमला उस हंसी में साइकिल के पैडल से नीचे उतर कर उनका साथ दे रही थी।

"धन्य है सरदार करमसिंह जी आपकी साहित्य सेवा। आप तो वास्तव में सतयुग के विशुद्ध साहित्यिक जन्तु निकले।" कुछ मुस्कुरा कर कमला बोली।

"मैं पूछता हूँ कमला देवी आपने जन्तु शब्द का प्रयोग क्यों किया? क्या इस प्रकार आपने एक पत्रकार का अपमान नहीं किया? और यदि किया त आपको इसका क्या दण्ड मिलना चाहिए?" उजागरमल जी ज़रा गम्भीर होकर पेट पर हाथ फेरते हुए बोले।

इधर कुछ दिनों से कमला और उजागरमल जी में कुछ खींचातानी चल रही थी। आकर्षण और उपहास ने आपस में लड़कर एक विचित्र रूप धारण कर लिया था। कमला के प्रत्येक शब्द पर टिप्पणी करना और उसपर अपने पाँडित्य की धाक जमाना वह अपना कर्त्तव्य समझने लगे थे और उनका यह प्रयास जितना भी आगे बढ़ता था कमला उनकी उतनी ही पोल-पट्टी अधिकाधिक स्पष्ट रूप से खोलती जाती थी।

कमला उजागरमल जी की बात सुनकर खिलखिला कर हंस पड़ी और फिर करमसिंह जी की तरफ़ एक विचित्र दृष्टि फेंककर बोली "यह लीजिए उजागरमल जी ने पार्टी के सामने एक प्रस्ताव रख डाला। क्यों करमसिंह जी क्या आप इस विषय पर अधिक टिप्पणी करवाना पसन्द करेंगे?"

करमसिंह कमला की तीव्र बुद्धि से डरते थे और फिर उसके गोरे गालों पर चमकती हुई दो पुतलियों के चक्कर में पड़ कर वह अपना और अधिक मज़ाक नहीं उड़वाना चाहते थे। वह एकदम कह उठे "नहीं कमला देवी! नहीं! यह सब तो मज़ाक है। मज़ाक में सब कुछ कहा जा सकता है।"

"परन्तु मैंने जन्तु शब्द का प्रयोग मज़ाक में नहीं किया करमसिंह जी! यह आप फिर सुन लीजिये। मैं इसी शब्द का प्रयोग उजागरमल जी के लिये और भी निखरे रूप में कर सकती हूँ।" ज़रा कड़क कर कमला बोली।

"मेरे लिये।" ज़रा क्रोध में भर कर उजागरमल ने पूछा।

"हाँ आपके लिये। क्यों करमसिंह जी! क्या इसमें कुछ असत्य है?" कमला उसी गम्भीरता पूर्वक कह रही थी।

"बिलकुल नहीं, कमला देवी बिलकुल नहीं। उजागरमल जी का शरीर तो एक जन्तु नहीं कई जन्तुओं का सम्मिश्रण सा मालूम देता है।"

करमसिंह की इस बात पर सब खिलखिला कर हंस पड़े और शांता पर तो अपनी हंसी रोके नहीं रुकी "'सम्मिश्रण' शब्द का आपने खूब प्रयोग किया करमसिंह जी। मैं आपको दाद देती हूँ।" और शांता फिर अपने काम पर जुट गई।

कमला ने अपनी साइकिल एक तरफ़ आम के पेड़ के तने से सटा कर रख दी और स्वयं आकर पार्टी के बीच में बैठ गई। कमला के बैठने पर शांता अपने ही स्थान से बोली, "क्यों उजागरमल जी! अब तो पार्टी पुरलुतफ़ हो गई न!" परन्तु उजागरमल जी इसका उत्तर न दे सके और कमला शांता की तरफ़ देखकर मुस्करा दी, यह समझ कर कि उसके आने से पूर्व वहां पर किस विषय पर बात चीत चल चुकी थी।

इस बीच में पहाड़ी नौकर ने शांता की मदद से चाय बना ली और सबने एक-एक प्याली चाय पी। फिर सब यमुना किनारे की तरफ़, जहां उसे रोक कर नहर निकाली गई है, चल दिये। कमला ने शांता का हाथ पकड़ा हुआ था और छोटी शांता अमरनाथ का हाथ पकड़े आगे-आगे चल रही थी। आज रविवार का दिन होने के कारण यहां पर बड़ी भीड़ थी। दिल्ली की तंग गलियों के रहने वाले अनेकों व्यक्ति यहां पर अपनी-अपनी दरी अथवा चटाई बिछाये लेट लगा रहे थे। कहीं पर पकौड़े बन रहे थे तो कोई घर से बन्द करके लाये हुए टिफ़नदान को ही अपने रूमाल पर खोल रहा था। किसी के साथ अपनी बीवी थी तो कोई अपनी न होने के कारण किराये की ही साथ में लेता आया था। कहीं पर ग्रामो-फ़ोन रिकार्ड बज रहे थे तो कहीं पर हारमोनियम के शौकीन बैठे अपना दिल बहला रहे थे। एक अजीब रंग था और विचित्र वातावरण। जंगल में मंगल हो रहा था। कुछ लोग पेड़ों पर रस्सियाँ डाले बच्चों को झुला रहे थे तो कुछ अकेले में लुभाये हुए कभी किसी तरफ़ और कभी किसी तरफ़ को ही ताक लेते थे। यह पत्रकारों की टोली सबके आनंद में से अपने मतलब का आनंद बटोरती हुई आगे बढ़ चली। समय धूप का था इसलिये वहां घूमने में कुछ अधिक लुत्फ़ नहीं आ सका और किनारे पर मछली पकड़ने वालों की सैर में इन लोगों ने कुछ दिलचस्पी नहीं ली, इसलिये थोड़ी ही देर में फिर वहीं पर अपनी बिछी हुई दरी का इन्हें सहारा लेना पड़ा जिसे कुछ समय पूर्व यह छोड़ कर गये थे।

"मैंने सुना है आपने 'इन्सान' में नौकरी कर ली है।" कुछ व्यंग्य के साथ बैठते हुए उजागरमल जी ने अमरनाथ जी की ओर मुख करते हुए कहा।

"जी हां" अमरनाथ जी ने संक्षेप में उत्तर दिया और शांता को छोड़ कर सभी ने बड़े आश्चर्य के साथ सुना।

"इन्सान में ?" कमला ने दुबारा आश्चर्य-चकित होकर पूछा।

"हां इन्सान में।" अमरनाथ जी ने फिर उसी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया और शांता की तरफ देख कर मुस्कुरा दिये।

"क्यों क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा कमला ?" शांता ने धीरे से पूछा।

"इसमें अच्छा लगने के लिए है ही क्या शांता बहिन ?"

"यही तो मेरा भी विचार है।" ज़रा उचक कर उजागरमल जी बोले और कमला की तरफ़ जरा ललचाई सी दृष्टि डालकर कुछ अभिमान और गौरव का अनुव किया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वह अब वर्तमान प्रगतिशील विचार वाले पत्रकारों में किसी से भी पीछे नहीं हैं।

"परन्तु आपका 'विचार' विचार रहित है और कमला के कथन में कुछ उसके विचार से विचारणीय हो भी सकता है।" बहुत गम्भीरता पूर्वक शांता बोली और फिर उसने अमरनाथ जी की तरफ़ देखा तो न जाने वह किन विचारों में निमग्न थे कि मानो उन्हें पता ही नहीं कि किस विषय को लेकर यहां पर इतनी लम्बी चौड़ी बातें चल रही हैं। शांता का वाक्य सुनकर करमसिंह ने हंसी की धड़ तोड़ दी। करमसिंह को जब कोई ऐसा अवसर मिलता था कि जहां पर उजागरमल जी पर कोई व्यंग्य कसा गया हो तो उनका रोम-रोम खिल जाता था और वह बिना इस बात का प्रयत्न किये ही कि वास्तव में व्यंग्य अथवा उपहास का क्या कारण बना है खिलखिलाकर हंस देते थे। उधर उजागरमल जी के तो तन बदन में करमसिंह की हंसी से आग लग जाती थी, और वास्तव में क्रोध के मारे वे अपने दाँत पीसने आरम्भ कर देते थे। करमसिंह की सी से उनका क्रोध इतना बढ़ जाता था कि तमाम शरीर तूफान की तरह कांपने लगता था और वाणी में हकलाहट पैदा हो जाती थी।

"लेकिन 'इन्सान' तो मज़दूरों का दुश्मन है। फिर आपने कैसे उसे ज्वाइन किया ?" कमला ने आश्चर्य से पूछा।

"यही तो मैं भी सोच रहा था।" उजागरमल जी ने डटकर कहा।

"इसीलिये तो मैंने ज्वाइन किया है कि शायद मेरे वहां पहुँचने पर 'इन्सान' मज़दूरों का दुश्मन न रहे।" अमरनाथ जी ने साधारणतया मुस्कुराते हुए कहा।

"परन्तु यह असम्भव है। क्या वह लोग आपके वहां पहुँचने पर अपने पत्र की पॉलीसी ही बदल डालेंगे ? और यदि वह ऐसा करेंगे तब मैं आपका

ऐसे छोटे पत्र में जाना आपकी मान हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझती ।" कमला ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

"यही मैं भी समझता हूँ ।" ज़रा और आगे खिसक कर उजागरमल जी बोले ।

"यह किस लिये कमला देवी ?" अमरनाथ जी ने उसी प्रकार मुस्कुराते हुए कमला से प्रश्न किया ।

"यह इसलिए कि वह पत्र ही क्या है जो इस प्रकार अपनी नीति बदल डाले ? पत्र के लिए उसकी नीति का स्थिर रहना अत्यन्त आवश्यक है । जो पर्चे नित्य प्रति अपनी नीति बदलकर समय के अनुसार अपने को बना लेते हैं उन्हें मैं गिरगिट की मिसाल दिया करती हूँ और उन पत्रों को मैं सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकती । उन पत्रों से तो मैं करमसिंह जी और उजागरमल जी के पत्रों को ही अच्छा समझती हूँ !" कमला अपने कहने की गति को न रोक कर कहती ही चली गई ।

"यह भला किस लिए ?" अमरनाथ जी उसी प्रकार मुस्कुराते हुए बोले ।

"क्योंकि इन बेचारों की कोई नीति नहीं है ।"यह पत्र केवल व्यवसाय के लिए निकाले गए हैं और अपने उस कार्य में दोनों सफल हैं ।" कहकर कमला चुप होना चाहती थी कि शांता बड़े ज़ोर से हँस पड़ी और फिर एक दम चुप होकर बोली—"तो तुम्हारा यह अभिप्राय है कि उजागरमल जी और सरदार करमसिंह जी पत्रकार ही नहीं केवल विज्ञापन एकत्रित करने वाले एजेन्ट हैं ।"

"हां यदि यह भी समझ लिया जाये तो पत्रकारिता को कोई विशेष हानि नहीं होगी ।" उसी गम्भीरता से कमला ने उत्तर दिया ।

"नहीं बिलकुल नहीं ।" उजागरमल ने बौखलाकर घुटनों पर खड़े होते हुए रुमाल से अपने माथे का पसीना पोंछ कर कहा ।

"हमारे पत्र विचारात्मक हैं !" करमसिंह ने भी दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा ।

"और यह भी समझ लीजिये कि ऐसा कहकर आपने हमारा अपमान किया है ।" उजागरमल जी बोले ।

"बिलकुल अपमान किया है । हम यह सहन नहीं कर सकते ।" करमसिंह जी उसी प्रकार ज़रा गर्मी से बोले ।

"परन्तु आप लोग कर भी क्या सकते हैं ? यदि आप लोग मज़दूर होते तो मैं आपको इस अपमान का बदला लेने के लिए हड़ताल करने को उकसाती ।

परन्तु दुर्भाग्यवश आप हैं कमला देवी के शब्दों में विचार रखने वाले जन्तु। आपको अपमान का अनुभव करने का कष्ट न करना पड़े इसलिए मैंने जन्तु से पूर्व विचार शब्द का प्रयोग उजागरमल जी के शब्दों में किया है। अङ्गरेजी भाषा में मनुष्य के लिए एनीमल शब्द का प्रयोग बहुत प्रचुरता से किया जाता है। आपने तो कितने ही ग्रंथों में पढ़ा होगा उजागरमल जी?"

"परन्तु यह भारतवर्ष है शांता देवी! और देव नागरी भाषा की यहां बातें हो रही हैं। यहाँ इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना केवल अपमान मात्र है और कुछ नहीं।" उजागर मल जी बोले।

"अगेन ईडियट, फिर बदतमीज़ी! मैं कहती हूँ यहीं नालायकी है। कोई तमीज़ ही नहीं है। क्या देवनागरी और क्या भारतवर्ष? संसार एक है। जब तक इस समस्त संसार के लिये एक ही प्रकार के नियम नहीं बनेंगे तब तक मानव शांति और सुख की नींद नहीं सो सकता। संसार का मज़दूर एक होकर रहेगा और संसार के हर व्यक्ति का पेट एक सा होगा किसी का कम अथवा अधिक नहीं। हर व्यक्ति को अच्छे कपड़े पहिनने और आराम से रहने का अधिकार होगा। यह सब समाज और देशों के संकुचित भेद भाव मिटा दिये जायेंगे। समय इन्हें स्वयं मिटा देगा। समय के थपेड़ों के सम्मुख यह नहीं रह सकेंगे, मैं दावे के साथ कहती हूँ।" कमला बोली।

"चलो तुम्हारा कहना हम मान लेते हैं बहिन! परन्तु भाई उजागरमल जी के पेट का क्या होगा?" मुस्कुराते हुए शांता ने पूछा। सरदार करमसिंह तो खिलखिला कर हँस पड़े और अमरनाथ जी भी मुस्कराये बिना न रह सके। कमला भी मुस्करा दी और अन्त में कमला की मुसकुराहट के सम्मुख उजागर मल जी पर भी बिना मुस्कुराये न रहा गया और हंसकर बोले, "भाई अमरनाथ जी! कमला भी हैं दिमाग़दार। जब बोलती हैं तो मैं तो इनकी बातों को सुनने में इतना संलग्न हो जाता हूँ कि यह भी ध्यान नहीं रहता कि यह कहती क्या हैं? परन्तु कहती ख़ूब हैं। इसकी दाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता।"

अमरनाथ जी ने भी सिर हिला दिया मानो उन्होंने उजागरमल जीके कथन का समर्थन किया हो, सब कुछ सुनकर और समझकर परन्तु शायद उन्होंने सुना कुछ भी नहीं। इस समय कमला और शांता वहां से उठकर छोटी शांता के पास वहाँ चली गई थीं जहां पर वह यमुना के पानी से नहर निकाल कर सिंचाई में संलग्न थी। कमला और शांता को अपनी ओर आते देख एक दम

खड़ी होकर गम्भीरता पूर्वक बोली "देखो जीजी, हमने कितना बड़ा कार्य किया है। यह हमने यमुना से नहर निकाली है।"

" यह तो खूब निकाली भाई तुमने शांता !" कमला ने प्यार से छोटी शांता को गोदमें उठाते हुए कहा। परन्तु शांता गोद में न ठहरी और तुरन्त नीचे उतर कर बोली, "केवल यही नहीं और भी तो देखिए अभी। "हमने अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन का कितना बड़ा कार्य सम्पूर्ण कर दिया ? इस नहर से सिंचाई का काम किया जारहा है। कितना बड़ा भू-भाग जो कि पानी की कमी के कारण बंजड़ पड़ा हुआ था अब खेती के काम में लाया जा रहा है। तुम जानती हो जीजी ! कि इस वर्ष इसमें कितना अधिक अन्न पैदा होगा ? आप शायद नहीं जानतीं।"

"शांता ! यह कमला जीजी कुछ नहीं जानतीं। तुम जबतक नहीं समझाओगी तबतक इनकी समझ में कुछ नहीं आयेगा।" मुस्कुराती हुई शांता बोली।

"आप मेरे इस महान कार्य को खेल न समझिये जीजी !" उसी गम्भीरता के साथ छोटी शांता ने कहा। "मैंने इसे बनाने में बड़ा परिश्रम किया है। देखिये किस प्रकार मैंने छोटी २ नालियां निकाल कर पानी को समस्त भूखण्ड पर पहुँचाया है ?"

कमला ने छोटी शाँता के कार्य की बहुत सराहना की और कुछ समय के लिये यह दोनों यहीं पर छोटी शांता के साथ खेल में आनन्द लाभ करने लगीं। उधर दूसरी तरफ़ उजागरमल जी और करमसिंह जी की स्वच्छंद वार्ता चल रही थी। उजागरमल जी और करमसिंह जी इस समय खूब खुल कर खेल रहे थे।

"तो शांता बहिन से अमरनाथ जी आपका कोई घरेलू रिश्तेनारी का सम्बन्ध नहीं है ?" उजागरमल जी बोले।

"भाई मुँह बोले का सम्बन्ध क्या कुछ कम होता है ?" ज़रा मुस्कुराते हुए तनिक व्यँग्य के साथ करमसिंह जी ने कहा।

"मैं भी तो यही कहता हूँ भाई ! संसार में जिसे अपना मान लिया बस वह अपना हो गया। एक हम भी तो हैं ना कि जिनका संसार में अपना कहलाने वाला कोई है ही नहीं।" एक लम्बी सांस खींचकर उजागरमल जी बोले।

"यह भला तुम क्या कहने लगे उजागरमल जी ? कमला तो दिनरात आपके ही नाम की माला जपती है।"अमरनाथ जी बोले।

"कमला..." कह कर करमसिंह जी ठहाका मार हँस पड़े, "और वह भी उजागरमल जी के नाम की। आप भी क्या इन्हें बनाने की बातें कर रहे हैं ?

बल्कि सच तो यह है कि वह इनसे घृणा करती हैं।" कुछ गम्भीर होकर करमसिंह जी बोले।

"कमला को आप नहीं पहचानते करमसिंह जी! आपने कभी किसी स्त्री के सम्पर्क में आये ही नहीं। उजागरमल जी ने देखी है। इनकी धर्म पत्नी...बस क्या कहूँ उनकी बात? यदि आप कभी इन दोनों की बातें सुनते तो ऐसा मालूम देता कि मानो आपस में छुरे कटारी चल रहे हैं। परन्तु दिलों में एक मीठी रस की धार बहा करती थी। यह तो औरतों की ऊपर की ही कटु बातें होती हैं जिनसे इनके दिल की मिठास मालूम की जाती है। मैं कुछ झूठ तो नहीं कह रहा हूँ उजागरमल जी!" अमरनाथ जी बोले।

उजागरमल जी ने अपनी स्वर्ग में पहुँची हुई स्त्री का एक बार स्मरण किया और तुरन्त सिर हिला कर मन ही मन कह दिया कि वास्तव में अमरनाथ जी आप सत्य कह रहे हैं। नारी-हृदय की आपकी परख सराहनीय है।

"खैर कुछ भी सही, परन्तु कमला देवी का ज़रा भी रुझान उजागरमल जी की तरफ़ हो इसमें मुझे पूरा-पूरा संदेह है।" करमसिंह जी फिर स्थिरता के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले। दाढ़ी पर हाथ फेरने की करमसिंह जी की बान थी और जब कभी भी उन्हें अपने किसी वाक्य पर विशेष ज़ोर देना होता था तो वह दाढ़ी पर ऊपर से नीचे को कई बार हाथ फेरते थे।

"मेरी तरफ़ नहीं करमसिंह जी की तरफ़ कमला देवी का रुझान मुझे तो मालूम देता है।" उजागरमल जी ने मन में खिसियाकर और ऊपर से मुस्कुराते हुए कहा।

"इसमें मुझे सन्देह है!" अमरनाथ जी गम्भीरता पूर्वक बोले।

"वह क्यों?" उसी गम्भीरता के साथ उजागरमल जी ने पूछा।

वह इसलिए कि कमला को इन लम्बे लम्बे बालों से, इस साफ़े से और धर्म-कर्म के चक्कर में पड़ने वाले व्यक्तियों से कोई प्रेम नहीं हो सकता। आपके विषय में तो वह जानती है कि मनमौजी स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हैं। न धर्म से कोई सम्बन्ध है न समाज से कोई नाता। अपने आनन्द में आनन्द है और अपने मजे में मज़ा। फिर कमला स्वतन्त्र प्रकृति की लड़की है। आपमें उसे वह गुण स्पष्ट दिखलाई दे रहे हैं जहां उसकी स्वच्छन्दता के मार्ग में कोई बाधा नहीं आयगी बल्कि यों कह सकते हैं कि कुछ और प्रोत्साहन ही मिलेगा।" अमरनाथ जी कह रहे थे।

"इसमें क्या सन्देह है अमरनाथ जी! मेरी प्रकृति को आप से अच्छी तरह और कौन समझ सकता है? मैं किसी के मार्ग में कोई किसी प्रकार की बाधा

नहीं डालना चाहता और फिर कमला! कमला तो मेरे दिल पर राज्य करेगी, मेरी आंखों की पुतलियों में खेलेगी और..."न जाने प्रेमावेश में उजागर मल जी और क्या क्या कह गए।

"बस बस और मत कहो; कहीं अधिक कहने से विस्फोट न हो जाये।" खिलखिलाकर हँसते हुए करमसिंह जी ने कहा।

उजागरमल जी प्रेम के आवेश में यह सब कुछ कह तो गये परन्तु बाद में उन्हें अपनी कमज़ोरी पर बहुत खेद हुआ और डरे भी कि कहीं कमला के कानों तक यह बातें न पहुँच जाएं। यदि पहुँच गईं तो भला वह क्या कहेगी? वह कहेगी कि "वाह हमारे बुद्धू प्रेमी तुम से प्रेम-प्रदर्शन करना भी नहीं आया। वह भी तुमने किया तो अपने प्रतिद्वन्दियों के सम्मुख।"

परन्तु अब पछताये क्या होत है जब चिड़या चुग गई खेत। कमान से निकला हुआ तीर फिर लौट कर नहीं आता, इसीलिये उजागरमल जी ने शाँत होकर एक सांस ली और फिर अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी का स्मरण करके कलेजे को थाम लिया। वास्तव में जब से उनकी स्त्री का देहान्त हुआ है उन्हें यह संसार निस्सार सा प्रतीत होता है। यों कमला के प्रति उनका आकर्षण तो स्त्री के जीवन काल से ही था परन्तु उसके मरने के पश्चात् तो कमला का प्रभाव उजागरमल जी के लिये एक समस्या बनता जारहा था। उजागरमल जी अपना प्रतिद्वन्दी समझते थे परन्तु अमरनाथ जी के साथ शाँता का इतना निकट सम्बन्ध देखकर उन्हें अपने लक्ष्य में सफल होने की कभी-कभी सम्भावना प्रतीत होने लगती थी और वह भी विशेष रूप से तब जब कि अमरनाथ जी स्वयं इस प्रसङ्ग को अपने मुँह से छेड़ते थे। उजागरमल जी का विचार था कि कोई भी व्यक्ति अपनी प्रेमिका के प्रेमी से इस प्रकार घुल-मिल कर बातें कर ही नहीं सकता जिस प्रकार अमरनाथ जी उनसे करते थे।

इस प्रकार की विचारधारा चल ही रही थी कि सामने से कमला, शांता और छोटी शांता आती दिखलाई दी और तीनों ने अपनी बातों का पैतरा बदल दिया। इसके पश्चात् एक बार फिर चाय पहाड़ी नौकर ने तैयार की और जो नमकीन, मिठाई, फल इत्यादि लाये गये थे उनका भोग लगाया गया।

उजागरमल जी और करमसिंह ने, यह बार-बार दुहराते हुए कहा "भाई खाने के मामले में भी भला क्या संकोच करना," अपना पार्ट खूब प्ले किया। खाने के बीच-बीच अनेकों प्रकार की बातें चलती रहीं परन्तु किसी विशेष समस्या को लेकर नहीं। चाय इत्यादि के पश्चात् छोटी शांता ने अपने मधुर कंठ से

दो गाने सुनाये और साथ ही साथ एक छोटा सा नाच भी दिखलाया। इसके पश्चात् संध्या समय सब मिल कर फिर बांध की तरफ़ वहां का सुन्दर दृश्यदेखते हुए बस स्टेण्ड पर आगये। सरदार करमसिंह और कमला ने अपनी-अपनी साइकिलें संभालीं और शेष तीनों ने बस का टिकट कटा लिया।

चलते समय उजागरमलजी को इस बात का बड़ा खेद रहा कि आज वह भी अपनी साइकिल लेकर क्यों नहीं आये ? यदि वह भी साइकिल लेकर आये होते तो क्यों सरदार करमसिंह जी अकेले कमला के साथ साइकिल पर जाते. और उन्हें इस प्रकार मनमारे बस के अन्दर रह जाना होता।

(१६)

जब से अमरनाथ जी यहां आये 'इन्सान' कार्यालय का रूप रंग ही बदल गया। पत्र का अपना प्रेस है। प्रेस तथा पत्र का सब प्रबन्ध अमरनाथ जी के हाथ में है। एक शानदार दफ्तर है जिसके बाहर चपरासी बैठा रहता है। किसी को व्यर्थ के लिये अन्दर आने की आज्ञा नहीं। प्रेस तथा पत्र दोनों ही अब लाभ से चल रहे हैं, घाटे का सौदा समाप्त हो चुका है। इन्सान अब दिल्ली का प्रमुख साप्ताहिक पत्र है जिसकी बिक्री दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। इस समय यह २५००० छप रहा है। विज्ञापन का दर भी ३००) प्रति पृष्ठ है और प्रथम पृष्ठ पर किसी भी मूल्य का विज्ञापन नहीं लिया जा सकता रशीदा और रमेश बाबू दोनों अपने कमरे में बैठे इसी विषय पर बात-चीत कर रहे हैं। "अब तो आपका प्रयास सफल हो गया रमेश भय्या।"

"हां! अब मैं समझता हूँ कि 'इन्सान' के चलने में कोई आपत्ति नहीं। यह कार्य अब सुचारु रूप से चल सकेगा।" रमेश बाबू ने उत्तर दिया।

"आपके इस कार्य में भाई अमरनाथ जी ने आकर जो अपनी विशेष योग्यता का परिचय दिया है वह सराहनीय है। उनकी सहायता के बिना हम लोग अपने इस कार्य में इतने शीघ्र फलीभूत नहीं हो सकते थे।" और दृढ़ता पूर्वक रशीदा बोली।

"इसमें भी भला कुछ संदेह की बात है रशीदा ! अमरनाथ जी एक हीरा हैं जो हमारे हाथ लग गये। उनका वह रात-रात भर दूसरे प्रेस में मेहनत करके जीविका उपार्जन करना और अवैतनिक रूप से सारे-सारे दिन 'इन्सान' में कार्य करना क्या कभी 'इन्सान' से भुलाया जा सकेगा ? उनका वह प्रथम परिश्रम पत्थर पर रेखायें बना चुका है रशीदा।" एक प्रसन्नता की झलक मुंह पर लिये हुए अमरनाथ जी पर गद-गद होकर रमेश बाबू बोले। और फिर कहने

"अच्छा सुनिये ! भारत सरकार ने हैदराबाद के खिलाफ़ पुलिस एक्शन ले लिया अर्थात् भारत की फौजों ने चार दिशाओं से रियासत को घेर कर उसकी राजधानी की ओर प्रस्थान कर दिया । जहां कहीं भी रज़ाकार और रियासती फ़ौज़ें सर उठा रही हैं उन्हें दबाया जा रहा है । आशा की जाती है कि दो दिन के अन्दर ही राजधानी पर अधिकार कर लिया जायेगा ।"

"सच !" बड़ा आश्चर्य सा प्रकट करते हुए रशीदा ने कहा ।

"सच नहीं तो क्या भूठ बोल रहा हूँ ।" मुस्करा कर अमरनाथ जी बोले ।

"मैं यही आशा करता था और अधिक इस ओर ढील देना भारत सरकार की भूल होती । अब संघ और हिन्दू महासभा के व्यर्थ का प्रोपेगेन्डा करने वालों को पता चलेगा कि भारत सरकार अपने उत्तरदायित्व के प्रति कितनी सचेत है ? पिछले दो मास से जनता में व्यर्थ की अफवाहें फैलाकर इन लोगों ने एक तूफ़ान मचाया हुआ था । इन्हें यह नहीं मालूम कि इस प्रकार की बा करके यह भारत का कितना अहित करते हैं ?" रमेश बाबू

"परन्तु अब जनता के मस्तिष्क का वह भ्रम कि भारत सरकार में इन साधारण सी शक्तियों से टक्कर लेने की शक्ति नहीं है काफ़ूर हो जायेगा । मैं बाज़ारों में देखता हुआ आ रहा हूँ कि लोग सरकार की इस कार्यवाही की हार्दिक प्रशंसा कर रहे हैं । कोई पटेल की सरहना कर रहा है तो कोई जवाहर-लाल की ? जो लोग कल तक यह कहा करते थे कि 'यह कांग्रेसी मुसलमानों से पता नहीं क्यों कान कटवा कर आये हैं कि उनके विपरीत कोई भी कार्यवाही करते हुए इनका साहस ही नहीं होता, इनका दिल दहलता है, अपने ही मुख से इनके इन्साफ़ और बहादुरी की दाद ! दे रहे हैं" अमरनाथ जी बोले ।

"इतना बड़ा परिवर्तन जनता के विचारों में !" आश्चर्य से रशीदा ने पूछा

"ऐसा ही होता है। जनता के पास सर्वदा मस्तिष्क की कमी रहती है । किसी भी देश के सफल नेता वही कहलाते हैं जो जनता को आपत्ति काल में भी विचालत न होने दें । जो कार्य भी करें उसे उचित समय पर सोच समझ कर करें । नेताओं पर समस्त देश का उत्तरदायित्व होता है केवल उनके अपने भाग्य का ही नहीं । ऐसी परिस्थिति में यदि वह कोई ग़लत कार्य कर डालें तो उसका प्रभाव समस्त देश पर पड़ता है । किसी भी कार्य की टीका टिप्पणी करना बहुत साधारण कार्य है परन्तु उसे कार्यरूप में परिणित करना एक समस्या होती है । हैदराबाद और काश्मीर इस समय भारत और पाकिस्तान के सामने कठिन समस्यायें बनकर खड़े हैं । इन समस्याओं को कोरी बातों के आधार पर नहीं

सुलझाया जा सकता। इन्हें सुलझाने के लिये बलिदान देने होंगे। नेताओं को देखना होता है कि क्या देश वह बलिदान देने के लिये उद्यत है? क्या उसके सभी साधन उसे उन परिस्थितियों में आज्ञा देते हैं कि वह उसके लिये उद्यत हो सकें? इस परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान करके कोई कार्यवाही करना साधारण कार्य नहीं। तीर एक बार कमान से निकल कर फिर नहीं लौटता। इसी प्रकार जो कार्यवाही एक बार कर दी जाती है वह फिर लौटानी सरल कार्य नहीं।" रमेश जी ने बतलाया। इसके पश्चात् फिर कितनी ही देर तक इसी विषय पर आपसे बातें होती रहीं।

इसी बीच में पहाड़ी नौकर चाय लेकर आ गया और तीनों ने बीच में मेज़ डालकर चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। चाय पर अचानक ही चाय पीते पीते बातों का क्रम राजनीति के क्षेत्र से बदलकर व्यक्तिगत क्षेत्र में आ गया। अमरनाथ जी को रशीदा और रमेश बाबू के विषय में अभी तक केवल इतना ही ज्ञान हो पाया था कि रमेश बाबू पाकिस्तान से आये हुए एक व्यक्ति हैं जिन्होंने यहां देहली के हत्याकाण्ड में रशीदा के प्राण बचाये थे और अब यह साथ साथ रह रहे हैं। दोनों के विचारों में बहुत कुछ सामंजस्य होने के कारण दोनों साथ साथ रह रहे हैं। एक दूसरे को भाई और बहन कहते अवश्य हैं परन्तु इनके हृदयों के कोमल स्थान में क्या भावनायें छुपी हुई हैं इसका पूर्ण ज्ञान उन्हें नहीं हो पाया था। एक युवक और एक युवती का इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से रहना, इतना एक दूसरे के प्रति प्रेम और श्रद्धा होना और फिर भी एक दूसरे से पृथक् रहना यह कुछ विचित्र सी बातें थी जो कोई भी सैक्स का विद्यार्थी उसे समझने में अपने को असमर्थ समझता था।

"रमेश बाबू! मेरे मन में एक प्रश्न, जिस दिन से मैं आपसे मिला हूँ, न जाने कितनी बार आया और सर्वदा ही मैंने उसको रोक लिया, पूछ न सका, न जाने क्यों?" अमरनाथ जी ने चाय की प्याली मेज़ पर रखते हुए कहा।

"ऐसा क्या प्रश्न है?" रमेश बाबू बोले। "यदि व्यक्तिगत है तब भी तुम्हें पूछने में संकोच न होना चाहिये और यदि किसी अन्य के विषय में है तो भी आपको उसका उचित उत्तर मिल ही सकता है।"

"प्रश्न बिलकुल व्यक्तिगत है इसीलिए इतना संकोच रहा। मैंने आपको अपने काम में जितना संलग्न देखा है उतने संलग्न मुझे जीवन में बहुत कम व्यक्ति दिखलाई दिये हैं। इतनी संलग्नता से कोई मनुष्य तभी कार्य कर सकता है जब उसका कोई निश्चित् लक्ष्य हो और ज्यों ज्यों वह अपने लक्ष्य की पूर्ति

देखता जाये उसका चित उमंग से भरता जाये और उसको चिन्ता कम होती जाये। परन्तु आपके विषय में ऐसा नहीं पाता। 'इन्सान' आज सफलता की ओर बहुत बड़ी प्रगति के साथ अग्रसर है। यह पत्र आपके जीवन की एक बड़ी साध है और इसके प्रति आपका प्रयास और परिश्रम सराहनीय है। परन्तु इस सफलता से आपके जीवन पर किसी भी प्रकार का प्रभाव पड़ता हुआ मैं नहीं देख रहा। आपका जीवन ज्यों का त्यों चल रहा है। न उसमें कोई उत्साह है और न किसी प्रकार की कोई उमंग, परिश्रम और उत्तरदायित्व अवश्य है' मैं पूछता हूँ कि उत्साह और उमंग के अभाव में परिश्रम और उत्तरदायित्व कब तक चल सकेंगे?" गम्भीरता पूर्वक इतना कहकर अमरनाथ जी चुप हो गए और उन्होंने चाय की प्याली उठाकर फिर अपने होंठों से लगा ली। उनके माथे पर पड़ी हुई दो चार सलवटें अभी तक ज्यों की त्यों तनी हुई थीं और उनसे पता चलता था कि यह व्यक्ति जो कुछ कहना चाहता है उसे अभी स्पष्ट-तया कह नहीं पाया है। विषय अभी तक विचारणीय है और उसकी छाया उसके मस्तिष्क में घुमड़ रही है।

"मैं तुम्हारे कहने का आशय नहीं समझ सका अमरनाथ जी! शायद आपका सम्बन्ध मेरे रूखे और शुष्क व्यवहार से है।" कुछ विचारते हुए रमेश बाबू ने कहा।

"शायद मैं ही अपने भाव को अधिक स्पष्ट नहीं कर सका रमेश बाबू! आपके समझने की भूल नहीं, रूखा आपका स्वाभव नहीं; जहां तक मैं समझ पाया हूँ। इस जीवन में कभी रंगीनियाँ भी रही हैं। सदा यह इसी प्रकार वैराग्य पूर्ण रहा हो यह मैं नहीं मान सकता। सरसता आपके जीवन के कण कण में विद्यमान है। एक नारी के साथ रहने वाला व्यक्ति कभी रूखा और नीरस हो ही नहीं सकता, यह बात मैं सप्रमाण कह सकता हूँ। नारी प्रत्येक रूप में जीवन की सरसता को प्रेरणा प्रदान करती है, इस कठोर सत्य को भुलाकर यह नर और नारी का संसार एक दिन के लिए भी आगे नहीं चल सकता। मैं तो कभी कभी सोचा करता हूँ कि यदि वास्तव में कोई परमात्मा है तो उसने प्रकृति को यह दो खिलौने किस लिए प्रदान किये? या यों भी कह सकता हूँ कि प्रकृति को ही इन दोनों के खेलने के लिए उस भगवान ने बनाया। यदि यह मेरा विचार सत्य है तो फिर जीवन में नीरसता के लिए स्थान कहाँ रह जाता है? जीवन प्रकृति का सरस रूप है और उसे नीरस बनाना न केवल अपने ऊपर अन्याय करना है बल्कि अपनी प्रकृति और अपने भगवान को धोखा देना है। धोखा मैं

जानता हूँ कि आप दे नहीं सकते। अवश्य कोई कठोर सत्य है जिसने आपको जीवन के प्रति इतना उदासीन कर दिया है। क्या वह कठोर सत्य मैं जान सकता हूं ?" कहकर अमरनाथ जी फिर चुप हो गए और फिर चायकी प्याली मुंह से लगा ली परन्तु जो कुछ वह कहना चाहते थे उसे अब भी स्पष्ट नहीं कर सके यह उनका मन कह रहा था। शायद उनके पास शब्द नहीं थे उनकी भावना को व्यक्त करने के लिए या विचार आ आ कर स्पष्ट करने के समय विस्मरण हो जाते थे।

रशीदा जो अभी तक गम्भीरता पूर्वक यह सब बातें सुन रही थी इसी बीच में बोल उठी, "बाबू अमरनाथ जी आपके कहने का मतलब चाहे भैया समझे हों या न समझे हों परन्तु मैं समझ गई। इसका उत्तर किसी समय शायद मैं आप को दे सकूं, भैया नहीं दे सकेंगे और मैं समझती हूँ कि यदि आप इस समय और विशेष आग्रह न करें तो अच्छा ही होगा वरना मेरी तमाम रात हराम हो जायेगी और भैया उनके मस्तिष्क की दशा को तो आप पहिचान ही नहीं सकेंगे।"

"यदि मुझसे कोई भूल हुई हो क्षमा करना रशीदा ! क्योंकि मेरा मन कुछ जानने के लिए व्यग्र था इसीलिए मैं आज अपने को न रोक सका। यदि मुझे पहिले से यह ज्ञात होता कि मैं अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए आप लोगों के इतने बड़े कष्ट का कारण बन रहा हूँ तो सम्भवतः मैं इस विषय की ओर संकेत मात्र भी न करता।" कुछ व्यग्रता के साथ अमरनाथ जी संकोच के साथ बोले।

"ऐसी कोई बात नहीं है अमरनाथ बाबू ! आप व्यर्थ हीं इतने परेशान होने लगे। यह तो साधारण सी बात थी जिसे आप दो शब्दों में भी मुझसे पूछ सकते हैं। रशीदा तो बड़ी ही बावली लड़की है। इसके कहने पर आप नाराज़ न होना। आप शायद मेरे जीवन की प्रेम कहानी को टटोलना चाहते थे, सो वह अब समाप्त हो चुकी है, शायद पूर्णतया समाप्त। मेरा जीवन सर्वदा से ऐसा नहीं रहा है जैसा इस समय है यह तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक है। और बातें रशीदा तुम्हें बतला देगी।" इतना कह कर रमेश बाबू कुछ परेशानी की सी दशा में खड़े हो गए और रशीदा तथा अमरनाथ जी को कमरे में ही बैठा छोड़ स्वयं जाकर बाहर बरांडे में घूमना प्रारम्भ कर दिया। रमेश बाबू की आंखों के सामने पिछला जीवन आकर खड़ा हो गया। कहां वह जीवन की चहल-पहल और कहां आज का यह मशीन का जीवन चारों ओर से जकड़ा हुआ बंधा हुआ ?

मन में एक बार आया कि वह इस सब बखेड़े को छोड़कर कहीं एकांत स्थान में चले जायें जहां शांति के साथ रह सकें रमेश बाबू का मन अब इन व्यर्थ के दिमाग़ परेशान करने वाले झमेलों से ऊब चुका था। वह चाहता था शांति और आराम। जीवन की संगीत लहरियां एक बार फिर प्राचीन स्वर में झंकृत हो उठीं और विलीन हो गईं उस नित्य के कार्यक्रम में जो जीवन का एक साधारण नियम बन चुका था।

रशीदा और अमरनाथ जी कुछ देर तक वहीं पर बैठे रहे और फिर अपने आफ़िस के कार्य पर चले गए। प्रेस का चक्र चल रहा था। आज 'इन्सान' प्रकाशित होना था। हैदराबाद पर कई उल्लेखनीय लेख 'इन्सान' में छपे थे। रमेश बाबू का एक लेख 'हैदराबाद भारत का एक अङ्ग है' पत्र के मुख-पृष्ठ पर था। पत्र निकलने से पूर्व ही 'इन्सान-कार्यालय, के सामने हांकरों की भीड़ लग गई थी।

आज़ाद भारत में

(१७)

आज़ाद पाकिस्तान की सीमा पार करके भारत में आगया फटे हाल, जेबें ख़ाली और जो रहा सहा पैसा था भी वह सीमा के पहरेदारों के हवाले करना पड़ा। पैसा देकर प्राण बचाना ही आज़ाद ने उचित समझा। आज़ाद को शांता का ध्यान था और उसका यह भी विचार था कि वह हो न हो कहीं देहली में ही होगी। इसलिये वह सीधा देहली के लिये रवाना हो गया। जिस समय भारत का विभाजन हुआ था तो शरणार्थियों को लाने और ले जाने के लिये सरकारी स्पैशल ट्रेनें चल रही थीं। उनमें किसी भी व्यक्ति को टिकट नहीं लेना होता था और मार्ग में कहीं-कहीं पर कुछ खाने का भी प्रबन्ध था परन्तु अब वह समय समाप्त हो चुका था और हर व्यक्ति के लिये ट्रेन का टिकट लेना आवश्यक था। आज़ाद के हाथ में एक घड़ी थी वह उसने अमृतसर में ५०) को बेच दी और इस रुपये की सहायता से वह गाड़ी पर सवार होकर दिल्ली आ पहुँचा।

दिल्ली आज़ाद के लिये कोई नया नगर नहीं था। वह यहाँ पहिले भी कई बार आ चुका था और यहाँ के प्रायः सभी बड़े-बड़े बाज़ारों से परिचित था। स्टेशन पर उतर कर आज़ाद ने सोचा कि वह सीधा जाकर उसी मेडन्स होटेल में ठहरे जहां पहले कईबार वह ठहर चुका था परन्तु उसे तुरन्त अपनी उन दिनों और वर्तमान परिस्थिति का भान हो गया और उसके हृदय में उठने वाले विचार वहीं

पर समाप्त हो गये। आज़ाद के पास अब केवल ३०) बचे थे और आनेवाले अनिश्चित काल तक के लिये यही उसकी जमा पूंजी थी।

किसी भी धर्मशाला में ठहरना आज़ाद अपनी मानहानि समझता था। यहां उसके कई सगे सम्बन्धी भी थे परन्तु उनके मकान पर जाकर ठहरना भी उसने उचित नहीं समझा, इसलिये बिल्लीमारान में एक छोटे से होटल में एक रुपया आठ आने रोज़ पर उसने एक कमरा किराये पर ले लिया और सबसे पहिले अपने को उसने रहने की समस्या से मुक्त किया।

आज़ाद ने कमरे को एक बाल्टी पानी लेकर अपने हाथ से धोआ और फिर वहां पर अपने छोटे से बिस्तर को खोल दिया। दरी बिछाकर उस पर सुफ़ैद चादर बिछा दी और फिर एक ओर लगा दिया अपना फूलदार तकिया। इसके पश्चात् आज़ाद ने स्नान किया और सब चीज़ों से मुक्त होकर जब वह कमरे में पहुँचा तो होटल के बैरे ने आकर खाने के लिये पूछा। आंज़ाद ने केवल एक सब्ज़ी के साथ चार चपाती और चाय का आर्डर दिया और इस प्रकार भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर आज़ाद ने कमरे का ताला लगा दिया और घूमने के लिये बाहर निकल पड़ा।

रहने की समस्या के पश्चात् दूसरी समस्या थी आज़ाद के सामने अपने निर्वाह की। आज़ाद आज तमाम दिन किसी नौकरी की तलाश में घूमा परन्तु कोई काम नहीं मिला। पूरे दिन का थका मांदा जब आज़ाद शाम को अपने होटल में पहुँचा तो होटल मैनेजर रजिस्टर लाकर आज़ाद के पास पहुंचा।

"बाबू जी ज़रा इस रजिस्टर की खाना पूरी कर दीजिये।"

"सुबह करा लेना जनाब ? इस समय मेरी तबियत बहुत ख़राब है और सिर में बहुत सख्त दर्द है।" आज़ाद बुरा सा मुंह बना कर बोला।

"सर-दर्द की मैं बाबू जी अभी आपको दवा ला देता हूँ ! आप एक चायकी प्याली के साथ वह दो टिकिया खा लीजिये बस सिर-दर्द तो काफ़ूर हो जायेगा" और इतना कह कर वह बिना जवाब की प्रतीक्षा किये ही वहां से चला गया आज़ाद कुछ बोल न सका। तमाम दिन आज उसने चाय नहीं पी थी इसलिये सिर वैसे ही चकरा रहा था। थोड़ी ही देर में होटल का नौकर चाय की प्याली लेकर वहा आया और उसी समय उसके पीछे-पीछे होटल का मालिक भी हाथों में दो टिकिया एस्प्रो की लिये आ गया।

"लीजिये यह दो गोलियां खाकर चाय पी लीजिये ! दर्द-सर ऐसा अच्छा हो जायेगा [illegible] सिर-दर्द था ही नहीं।" मैनेजर ने कहा।

ऐसी बात नहीं थी कि आज़ाद एस्प्रो को नहीं जानता था। तुरन्त गोलियां लेकर उसने मुंह में एक-एक करके रखीं और ऊपर से चाय का घूँट भर लिया और फिर धीरे धीरे स्वाद के साथ चाय की प्याली पीकर खत्म की। चाय पीकर आज़ाद कुछ देर के लिये अपने बिस्तर पर आराम के साथ लेट गया और होटल-मैनेजर वहां से अपना रजिस्टर लेकर बिना कुछ कहे सुने ही चला गया।

आज़ाद को कुछ क्षण के लिये नींद आ गई। नींद से जब आज़ाद की आंखें खुलीं और उसने कमरे से बाहर झांक कर देखा तो चारों ओर बिजली का प्रकाश पाया। सूर्य अस्त हो चुका था और इस समय बजे थे रात्रि के आठ। आज़ाद धीरे से उठा और उठकर शौच इत्यादि से निवृत्त होकर उसने मुँह हाथ धोये और फिर अपने कमरे में आकर कंघे से बाल सँवारे।

"कहिये जनाब अब तो तबीयत ठीक है ना आपकी?" होटल मैनेजर ने पीछे से आकर पूछा।

"जी हां अब ठीक है। तमाम दिन परेशानी की दशा में घूमते घूमते मेरा सर चकराया गया था।" आज़ाद ने बड़ी कृतज्ञता से उत्तर दिया। "मैं आपके इस सुलूक के लिये आपका अहसानमन्द हूँ।"

"एहसान की आवश्यकता नहीं जनाब! यह तो इन्सानियत का फ़र्ज़ है। हमारा यह होटल रुपया कमाने की वह मशीन नहीं है जहां और लोगों की जेबें काटकर अपनी जेबें भरी जाती हैं। यह तो चन्द मज़दूरों का पेट भरने के लिये एक साधन मात्र बना लिया है। यहां यात्री बहुत कम आते हैं। केवल छड़े ही आदमी यहाँ पर ठहर सकते हैं। बूढ़े, बच्चे, चाहे औरत हों या मर्द यहां आने की उन्हें आज्ञा नहीं।" मैनेजर कहा।

"यह क्यों?" आश्चर्य से आज़ाद ने पूछा।

"हमारे होटल की अधिष्ठात्री जी की यही आज्ञा है।" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"इसका मतलब यह है कि आप इसके मालिक नहीं है।" आज़ाद ने गम्भीरता पूर्वक पूछा।

"जी नहीं। इस होटल का कोई मालिक नहीं है। यहां मालिक कहलाने का नियम ही नहीं है बाबू जी! यहां पर सब मज़दूर हैं और सब मालिक। यहां तक कि यहां के बैरे; यहां के रसोईये, यहां के गाइड़ यह सभी मालिक हैं, नौकर नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने काम पर स्वयं लगा रहता है किसी को भी किसी का कर्तव्य समझाने की आवश्यकता नहीं।" मैनेजर ने कहा।

आज़ाद बड़े ही आश्चर्य के साथ यह सब सुन रहा था। फिर कुछ सहम कर उसने पूछा, "फिर यह आपकी अधिष्ठात्री जी कौन हैं ?" और इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा में आज़ाद उनके मुंह पर ताकने लगा।

"उन्हें आपने नहीं देखा। शायद आप भूल रहे हैं। वह वही देवी हैं जो सुबह आपको यहाँ छोड़ गई थीं। कितना कार्य करती हैं वह बाबू जी ! यह आप अन्दाज़ नहीं लगा सकते। बस यह समझ लीजिये कि उन्हें चौबीस घण्टे चैन नहीं। हर समय हर घड़ी दूसरों के ही लिये परेशान रहती हैं। एक बहुत बड़े घर की लड़की हैं परन्तु घरबार सब को लात मार मार दी है। आज कल यही होटल उनका आधार है और इसमें भी २५ कॉमरेड खाना खाते हैं।"

इतना कहकर मैनेजर बाहर किसी काम से चला गया और आज़ाद कितनी ही देर तक सोचता रहा कि वह युवती कितनी विचित्र थी कि उसने मुझे फ़तहपुरी पर देखते ही यह अनुमान लगा लिया कि मैं क्या चाहता हूँ ? कितने सँक्षेप में उसने पूछा, "आपको ठहने के लिये स्थान की आवश्यकता है शायद ? चलिये मैं आपको सस्ता और अच्छा स्थान बतला देती हूँ।" और मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया। "अच्छा है न स्थान ?" स्थान दिखला कर उसने पूछा और मैंने "हां" कह दिया। आज़ाद इन्हीं विचारों में निमग्न था कि इतने में वही देवी सामने से आती दिखलाई दी और आज़ाद ने देखा कि वह सीधी उसी तरफ आ रही थी। सामने आकर बोली "कहिये जो स्थान मैंने आपको दिखलाया कुछ बहुत बुरा तो साबित नहीं हुआ ?"

"जी नहीं ! बुरे के क्या माने ? बहुत अच्छा स्थान है और फिर यहां की इन्सानियत का आदर्श देखकर तो मेरा अब यह जी चाहता है कि मैं जीवन भर यहीं पर बना रहूँ।" बहुत सादगी और गम्भीरता के साथ आज़ाद ने कहा।

"यह बात है ?" मुस्कुराकर देवी जी ने कहा।

"यही बात है।" आज़ाद ने उसी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया।

"परन्तु यहां रहने के लिए घर बार, मां, बहन, स्त्री, बच्चे सभी से नाता तोड़ना होता है। यहां सब बराबर हैं, इन्सान हैं, कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं, किसी की किसी पर सत्ता नहीं, किसी का किसी पर बड़प्पन नहीं। यह सब बातें मन्जूर हैं क्या ?" कह कर वह देवि उसी प्रकार मुस्कुराती जा रही थीं।

आज़ाद भी शांति के साथ कह रहा था दृढ़ प्रतिज्ञ होकर "मेरा घर समाप्त हो चुका, मेरा कोई सम्बन्धी नहीं, मां, बहन कुछ नहीं, स्त्री बच्चे बनने का समय ही नहीं आया। इन्सानियत का सबक मैंने अपने एक मित्र से पढ़ा था।

परन्तु अब वह स्वप्न सा प्रतीत होता है क्योंकि मित्र भी किनारा कर गया। आज मैं इस दुनिया में अकेला हूँ और…"कहते कहते आज़ाद का गला रुंध गया और वह चुप हो गया।

वह देवी भी कुछ देर तक मौन रही और उसने आज़ाद में वह वस्तु पाई जिसकी खोज में कि वह न जाने वह कितने दिन से चिंतित थी।

"क्या मैं आपका नाम पूछ सकती हूँ?"

"मुझे आज़ाद कहते हैं।"

"नाम तो अच्छा है।" पहिले की तरह मुस्कुराती हुई बोली।

"बुरा कुछ मैं भी नहीं हूँ अपने नाम से।" मुस्कराकर आज़ाद बोला।

"क्या मैं भी आपका नाम मालूम कर सकता हूँ?"

"अवश्य! मेरा नाम कमला है।" कह कर उस देवी ने रसोई की ओर देख कर कहा, "क्या अभी तक खाना नहीं बना?

"खाना तैयार है।" एक रसोइये ने उत्तर दिया।

"क्या सब खाना मेज़ पर पहुँच गया?"

"जी हां!"

"अच्छा तो घंटी बजाओ।"

"बहुत अच्छा", कहकर घंटी बजाई गई और खाने के कमरे में तुरन्त एक चहल पहल दिखलाई दी। होटल में जितने भी यात्री ठहरे हुए थे सब वहां पर आकर एकत्रित हो गए और कमला तथा आज़ाद भी उन्हीं में से थे। खाना प्रारम्भ होने से पूर्व कमला ने आज़ाद को अपना एक नया मेहमान कहकर सब यात्रियों के बीच इन्ट्रोड्यूस किया और इसके बाद सबने एक साथ मिलकर भोजन किया। होटल के बैरे तथा किचन के रसोईये तक भी मेजों पर बैठे साथ भोजन कर रहे थे।

भोजन के उपरान्त सब हाथ मुँह धोकर अपने अपने कमरे में चले गए। आज़ाद भी अपने कमरे में चला गया। चलते समय कमला देवी एक बार फिर आज़ाद के पास आई और बोली, "यदि आपकी तबियत यहां न लगती हो तो मैं आपका किसी और स्थान पर ठहरने का प्रबन्ध कर सकती हूँ।"

"बस आपकी कृपा है। इस समय मैं कहीं नहीं जाऊंगा। मेरा चित्त कुछ खिन्न सा है इसलिए यहीं पर आराम करूंगा। कल प्रातःकाल जब आप आयेंगी तो मैं कुछ और बातें आपसे करना चाहूँगा।"आज़ाद बोला।

"अच्छा तो मैं अब चली। मुझे एक पार्टी में पहुँचना है। प्रातःकाल फिर भेंट होगी।" कहकर कमला विदा हो गई और आज़ाद अपने कमरे में बिस्तर पर लेट गया।

प्रातःकाल आज़ाद ज्यों ही कुल्ला आदि से निवृत्त होकर कुर्सी पर बैठा कि सामने मेज़ पर चाय आ गई। चाय दो आदमियों की थी। चाय रखने वाले ने कहा, "बहिन जी अभी आती हैं।"

"कमला देवी ?" आज़ाद ने पूछा!

"जी हाँ !" आगन्तुक ने उत्तर दिया।

"तब क्या वह सोती भी यहीं हैं ?" आज़ाद ने पूछा।

"जी नहीं, वह बहुत सवेरे यहां आ जाती हैं।"

इतने में सामने से कमला देवी आती हुई दिखलाई दीं। उन्हें आता देखक आज़ाद खड़ा हो गया और बड़े ही आदर से उसने कमला को बिठलाया।

"इतना आदर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं हैं।"

"चाय पीजिये! मुझे कुछ आवश्यक बातें आपसे करनी हैं और फिर एक कार्य पर जाना है। बेचारे मज़दूरों की परेशानिया देख-देख कर मेरा मन हर समय परेशान रहता है। कांग्रेस सरकार ने तो पूंजीवादी मनोवृत्तियों में ब्रिटिश सरकार को भी कई क़दम पीछे छोड़ दिया है। जहां भी देखो धनपतियों का बोल-बाला है। कांग्रेस के सब पुराने वायदे झूठे पड़ गये हैं। आज तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह वायदे कभी उन्होंने किये ही नहीं थे।"

दोनों ने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। इसके पश्चात् आज़ाद ने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया, "मुझे भारत-सरकार की परिस्थिति के विषय में तनिक भी ज्ञान नहीं। मैं कल ही पाकिस्तान से किसी प्रकार अपनी जान बचा कर आया हूँ। मेरे ख़िलाफ़ वहां पर वारंट थे और मैं ज़मानत पर छूटा हुआ था। अपने एक मित्र दारोगाजी की सहायता से मैं सीमा पार कर सका हूँ।" यह आज़ाद भावुकता में कह तो गया परन्तु कहने के पश्चात् बहुत सकपकाया।

"डरिये नहीं! यहां कोई खुफिया पुलिस का आदमी नहीं है जो आपकी सूचना पुलिस तक पहुंचाये। यहां आपको हर प्रकार की सहायता मिलेगी।" कहकर कमला खड़ी हो गई और अपना बेग हाथ में लिये खटा-खट करती हुई ज़ीने से नीचे उतर गई।

"आपके लिये चाय और लाऊं ?" चाय लाने वाले व्यक्ति ने दुबारा अन्दर आकर पूछा।

"एक प्याली और।" आज़ाद ने कहा और चाय तुरन्त आ गई। चाय पीकर आज़ाद फिर लेट गया। आज़ाद का मस्तिष्क अभी तक आराम नहीं पा सका था। यह सत्य था कि इस समय उसके सामने से रहने खाने की चिंतायें समाप्त हो चुकी थीं। उसे क्या करना है ? किस दिशा में अपने जीवन की प्रगति को लगाना है ? यह सब निश्चय करने में आज़ाद अभी तक असमर्थ था। इस गम्भीर प्रश्न पर विचार करने वाला मस्तिष्क भी उसके पास इस समय नहीं था। वास्तव में आज़ाद एक सिपाही था, सिपहसालार नहीं। इसलिये उसने अपने पिछले जीवन में कभी विचार करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की थी।

(१८)

"भैया आपका लेख मुझे बहुत पसंद आया। हैदराबाद की समस्या पर आपने जो पहिले प्रकाश डाला था परिस्थिति उससे पृथक और कुछ नहीं बन सकी। आज भारत सरकार को वही करना पड़ा जो आपने अपने पिछले लेख में लिखा था। उस समय कुछ कांग्रेसी भाईयों ने आप पर तानेज़नी की थी। भारत टाइम्स में तो उस लेख पर टिप्पणी भी निकली थी।"

"यह सब कुछ तो चलता ही रहता है बहिन ! परन्तु हमारे आज के अङ्क में रमेश बाबू का लेख बहुत मार्के का है शायद तुमने वह नहीं पढ़ा।" अमरनाथ जी बोले।

"आप तो भय्या ! रमेश बाबू और उनके लेखों पर इतने लट्टू हैं कि उनके अतिरिक्त आपको सब कुछ फीका ही फीका लगता है। यहां तक कि आपकी अपनी स्वतंत्र विचार-धारा भी उनके विचारों में उन्हीं की बन गई है। यदि मैं यह कह दूं कि उसमें अपना कहलाने के लिये कुछ रह ही नहीं गया है तो कुछ अनुचित नहीं होगा।" शांता बोली।

"मैं तो यही चाहता हूँ शान्ता बहिन कि मेरे विचारों में कुछ अपनापन न रह कर केवल उनकापन हो जाये परन्तु वह अभी तक हो नहीं पाया। यह मैं अपनी असमर्थता मानता हूँ। उनके विचारों का गाम्भीर्य प्रयत्न करने पर भी मेरे विचारों में नहीं आ पाता। जब मैं उनसे बातें करता हूँ तो ज्ञात होता है कि मानो मैं किसी बहुत गहरे समुद्र के किनारे पर खड़ा हूँ।" अमरनाथ जी बोले।

इसके पश्चात् शांता ने बातों का रुख बदल दिया और अपने स्कूल में होने वाले वार्षिक उत्सव की बात छिड़ गई। शांता इस स्कूल की हैडमिस्ट्रेस थी। जब से शांता ने इस स्कूल का चार्ज संभाला था स्कूल दिन दूनी और

रात चौगुनी उन्नति करता जा रहा था। जब वह वहाँ गई थीं तो केवल ३५ कन्यायें पढ़ने के लिये आती थीं और इस समय वहां पर आने वाली कन्याओं की संख्या २२५ थी। स्कूल के प्रबन्ध में भी शांता ने काफ़ी सहयोग दिया और बहुत सा रुपया भी कन्याओं के संरक्षकों से मिल कर एकत्रित कर लिया था। स्कूल के लिये सरकारी सहायता का भी प्रबन्ध शांता के ही परिश्रम से हुआ। इस प्रकार यह पाठशाला इस समय बहुत सुचारु रूप से चल रही थी।

शांता ने पाठशाला के वार्षिकोत्सव पर आने के लिये अरमनाथ ज को निमंत्रण दिया और साथ ही रमेश बाबू तथा उनकी बहिन के विषय में पूछा कि क्या वह भी वहां आने का कष्ट कर सकते हैं?

अमरनाथ जी कोई निश्चित उत्तर न दे सके क्योंकि उन्हें मालूम था कि आगामी सप्ताह में रमेश बाबू बाहर जाने वाले थे, किस दिन और कहां, यह ज्ञान उन्हें नहीं था। "रशीदा बहिन के विषय में मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि वह अवश्य आ सकेंगी क्योंकि वह कहीं नहीं जा रही हैं।" अमरनाथ जी ने कहा और फिर इधर-उधर की बातें चल पड़ीं।

"क्यों भय्या! आपको इतने दिन वहां काम करते हुए हो गये और आप यह भी कहते हैं कि आप उनके घनिष्टतम सम्पर्क में हैं परन्तु आप आज तक यह नहीं बतला सके कि रमेश बाबू कौन हैं, कहां के हैं, यहां किस प्रकार आये और रशीदा का उनसे क्या सम्बन्ध है?" शांता ने मेज़ पर अपने दोनों हाथों की कोहनियां टिका कर अपने मुंह को दोनों हाथों पर सँभालते हुए कहा।

"यह सब कुछ मालूम करने की जिज्ञासा मेरे हृदय में न हो ऐसी बात नहीं है बहिन? परन्तु यह सब ज्ञान प्राप्त करने में मेरी असमर्थता है। मैंने कई बार इस प्रकार का प्रयत्न किया है परन्तु सब व्यर्थ और निष्फल सिद्ध हुआ। मैं असमर्थ रहा। जब कभी भी इस प्रकार की बात चलती है तो रमेश बाबू की दशा बिलकुल विचित्र सी हो जाती है और न जाने वह किस विचार-जाल में फँस जाते हैं।" अमरनाथ जी ने उत्तर दिया।

"अच्छा यह रशीदा कौन है? उनके पास किस प्रकार रहती है और दोनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है यह भी क्या आप मालूम नहीं कर सके?"

"रशीदा कौन है यह मैं नहीं कह सकता परन्तु इस कार्यालय पर जितना रुपया लगा हुआ है वह सब रशीदा का है। रमेश बाबू को वह भय्या कहती है और रमेश बाबू उसे रशीदा, बस यही दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जान सका। दोनों में परस्पर घनिष्ट-प्रेम है, यह बात

भुलाई नहीं जा सकती, परन्तु वह दोनों सगे भाई बहिन नहीं हैं।" अमरनाथ जी ने उत्तर दिया।

"प्यार क्या भैया आप मुझे नहीं करते?" शांता ने मुंह नीचा करके कहा।

"क्यों नहीं शांता?" अमरनाथ जी बोले।

"सगे तो हम भी नहीं कहे जा सकते परन्तु मैं आपको सगे भाई से भी अधिक समझती हूँ।" शांता मुस्कुराती हुई बोली।

"ख़ैर कुछ भी सही शांता! यह एक राज़ की बात है जिसे मैं अभी तक नहीं मालूम कर सका और तुम न जाने कैसी लड़की हो कि इस मकान की चहार दिवारी से पाठशाला और पाठशाला से यह मकान बस यही तुम्हारी दुनिया है। तुम यदि दो चार बार मेरे साथ वहां चलकर उनके सम्पर्क में आ जातीं तो शायद रहस्य उद्घाटन में अधिक सफल हो जातीं।" अमरनाथ जी विश्वास के साथ बोले।

"परन्तु मैं जीवन में आज तक भय्या कभी बिना बुलाये कहीं नहीं गई। आपने उन लोगों से अवश्य कभी न कभी कहा होगा कि आपके भी एक बहिन है। क्या कभी उन्होंने उस बहिन से मिलने की इच्छा प्रकट की?" उत्सुकता पूर्वक शांता ने पूछा।

"बहन सच बात तो यह है कि इस विषय में कभी बात-चीत ही नहीं हुई।" अमरनाथ जी ने उत्तर दिया और साथ ही उन्हें कुछ बुरा भी लगा कि क्यों उन्हों ने कभी शांता के विषय में उनसे बातचीत नहीं की?

शांता का भ्रम दूर हो गया। उसका विचार था कि शायद वह लोग कुछ अभिमानी हों परन्तु अमरनाथ जी के इस उत्तर ने बात स्पष्ट कर दी। इसी प्रकार की बातें चल रही थीं कि इतने में बाहर से छोटी शांता ने आकर दूर उंगली का संकेत करते हुए सूचना दी कि कमला बहिन आ रही हैं। कमला को देखकर दोनों की बातों का रुख़ बदल गया। शांता बहिन एकदम कह उठीं "कमला आज कई दिन बाद इधर आ रही है। न जाने क्या कारण है कि कई दिन से उसे इधर आने का अवकाश ही नहीं मिला?"

"आजकल वह पार्टी के कार्य में बुरी तरह से फंसी हुई है। मैंने तो सुना है कि उसने अपना घर का रहना भी त्याग दिया है और एक पार्टी-होम तय्यार किया है।" अमरनाथ जी ने कहा।

"पार्टी-होम!" आश्चर्य से शांता ने पूछा।

"हां! वह एक ढांचा कमला ने रूस के ढंग पर तय्यार किया है। मैंने

सुना है कि वही उसकी संचालिका है और उसका प्रबन्ध भी बहुत सुन्दर है। उसमें पार्टी के कॉमरेड रहते हैं और सब का सब कार्य वह सब लोग स्वयं अपने ही हाथ से करते हैं। मुझे एक दिन कमला ने तुम्हारे साथ आकर वह होम देखने के लिये कहा था परन्तु मैं पिछले दिनों कुछ ऐसा कार्य में फँसा रहा कि मुझे ध्यान ही नहीं रहा उस बात का।" अमरनाथ जी बोले।

इतने में कमला वहां पर आगई और अमरनाथ जी ने मुस्कुरा कर तथा शांता ने खड़े होकर बड़े प्रेम-भाव से कमला का स्वागत किया। कमला न जाने क्यों शाँता को बहुत प्यारी लगती थी। यह बात दूसरी थी कि कमला और शांता में सैद्धांतिक रूप से बहुत बड़ा मतभेद था परन्तु व्यक्तिगत रूप से दोनों में ही बहुत स्नेह हो गया था। कमला एक बहुत बड़े अमीर परिवार की होते हुए भी क़ाम्युनिस्ट-विचार रखती थी और धनपतियों के प्रति उसको महान् घृणा थी। सरमायेदार, यहां तक कि उसका पिता और उसके भाई भी कभी उसके स्नेह के पात्र नहीं बन पाये। शायद यदि राज्यसत्ता कभी उसके हाथ में आ जातीं तो वह पहिले उन्हीं लोगों को गोली से उड़वा देती। गोली से उड़वाने से छोटी सजा देना कमला को पसन्द नहीं था।

यों कमला का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा था, लोभ, लालच, स्वार्थ यह सब उसे छू तक नहीं गये थे; कर्मठ होने में उसकी बराबरी करना कठिन था, उसका हर कार्य तूफ़ानी वेग के साथ बहुत व्यवस्थित रूप से होता था, अपने विचार की वह बहुत पक्की लड़की थी, आलस्य और आरामतलबी का संकेत मात्र भी उसके जीवन में नहीं था, उसका जीवन था इस समय मज़दूर और सरमायेदारों की समस्याओं का एक झमेला।

जिन मित्रवर्गों की पार्टी में भी कमला चली जाती थी उसके सौंदर्य का माया-जाल युवकों पर जादू का काम करता था। विद्यार्थी नवयुवक तो कमला के संकेत पर नाचने लगे थे। कमला के इशारे में न जाने कैसी मादकता थी कि उसका पालन न करना एक नवयुवक के लिये असम्भव बात बन गई थी। दिल्ली की सभी ट्रेड यूनियनें कमला के संकेत पर चलती थीं। कमला का प्रभाव धीरे-धीरे मज़दूरों और विद्यार्थियों में बढ़ता जा रहा था। यह प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा था कि यहां की पुलिस के लिये भी कमला का इस प्रकार स्वतंत्र घूमना एक परेशानी हो चली थी।

कमला कुछ देर शांत बैठी रही और एकटक न जाने क्या अमरनाथ जी के मुँह पर देखती रही। शांता भी चुप थी। यह मौन न जाने कितनी देर तक

बना रहता यदि इसी बीच में छोटी शांता बीच में आकर न कूद पड़ती और कमला जीजी का हाथ पकड़ कर यह न कह बैठती "कमला जीजी ! मैंने सुना है कि आपने एक होम (घर) तय्यार किया है। क्या आप उसमें मुझे नहीं रखेंगी ?"

"तुम्हारे लिये अभी शांता बहिन का ही होम (घर) उपयुक्त है।" गालों पर एक हलकी सी चपत लगाते हुए प्यार से कमला ने कहा, "वह होम तुम्हारे लिये अभी उचित नहीं है। एक समय आयेगा, जब तुम उसे समझ सकोगी और उसमें जाकर रहना आवश्यक समझोगी।' गम्भीरता पूर्वक कमला ने कहा।

"परन्तु जीजी ! मैं तो आज भी बहुत चतुर हूँ। आपने ही तो कहा था पिछले दिन कि छोटी शांता चतुराई में बड़ी शांता के भी कान काटती है।" छोटी शांता ने यह बात गम्भीरता पूर्वक कही परन्तु इसे सुनकर अमरनाथ जी तथा शांता दोनों ही खिल-खिला कर हंस पड़े।

इसके पश्चात् एकदम बातों का टापिक पार्टी-होम पर ही केन्द्रित होगया और अमरनाथ जी ने जी खोलकर इस प्रकार के होटलों की निन्दा की। इस प्रकार की व्यवस्था के विपरीत उन्होंने एक लम्बा-चौड़ा आज न जाने क्यों एक व्याख्यान दे डाला। यों तो साधारणतया अमरनाथ जी केवल आवश्यक विषयों और समयों पर ही बोलना उचित समझते थे परंतु आज न जाने क्या मन में आ गई ? शांता और कमला दोनों चुप-चाप वह सब सुनते रहे। कमला शायद एक दो बार बीच में "शटअप" कह भी बैठती परन्तु शांता उसे संभाले रही। परन्तु वह भी समय आ ही गया जब कमला प्रयत्न करने पर भी अपने को न रोक सकी और एकदम कह उठी, "यह सब फ़िजूल की बकवास है। गृहस्थ—आश्रम, पति, पुत्र, घर की मर्यादा, जीवन के नियम यह कम अक़ली और दकियानूसी विचारों वाले व्यक्तियों की ढकोसले बाज़ी है, बदमाशी है। मैं इन सब बातों में विश्वास नहीं करना चाहती, नहीं कर सकती। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-पथ पर चलने के लिये सिपाही बनना होगा, सैनिक !"

"परन्तु मैं तो सैनिक नहीं बन सकता। मेरी ही तरह और भी बहुत से व्यक्ति हैं जो सैनिक नहीं बन सकते। फिर आपकी व्यवस्था में हम जैसों के लिये कौन सा स्थान होगा ?" मुस्कुराते हुए अमरनाथ जी ने कहा।

"ऐसे व्यक्तियों को गोली से उड़ा दिया जायेगा। उनका जीवन वृथा है उनके जीने से कोई लाभ नहीं।" कमला अमरनाथ जी के लिये यह शब्द कह तो गई परन्तु कहने के पश्चत् वह बहुत सकपकाई।

"आपने ठीक कहा कमला देवी !" उसी प्रकार मुस्कुराते हुए अमरनाथ जी बोले। "आपके हृदय की इसी स्पष्टता का मैं आदर करता हूँ। मुझे आशा है कि जिस निस्संकोच भाव से यह बात आज आपने कही है यदि कल समय आ जाये तो इसी निस्संकोच साहस के साथ आप इसे कार्यरूप में परिणित करने में भी सफल होंगी।" कह कर अमरनाथ जी चुप हो गये।

कमला चुप थी। अमरनाथ जी के हृदय को पढ़ना कमला जानती थी। वह स्पष्ट रूप से समझ गई कि अमरनाथ जी के इन शब्दों में लेश मात्र भी व्यंग्य की पुट नहीं थी। वह जो कुछ भी कह रहे थे अपनी अन्तरात्मा से कह रहे थे और स्पष्टभाव से कह रहे थे। कमला हृदय से अमरनाथ जी की भक्ति करती थी, आदर करती थी परन्तु उनकी विचारधारा में एक गम्भीर गांठ पड़ती जा रही थी। अमरनाथ जी का अत्यधिक झुकाव कमला की तरफ़ था परन्तु नारी-जीवन का इतना चंचल और स्वतंत्र रूप वह अपनी गृहस्थी के लिये स्वीकार करने से डरते थे। प्रेम का रूप बदल रहा था, भक्ति और श्रद्धा का रूप बदल रहा था, साथ-साथ व्यवहार की प्रणाली भी धीरे-धीरे बदलती जा रही थी। सरल जीवन गम्भीर होते जा रहे थे। राजनीतिक मतभेद जीवन में मतभेद पैदा करता जा रहा था।

"क्या आप लोग खाना खा चुके ?" अचानक बातों का रुख बदलते हुए कमला ने कहा और उसने कुछ अधिक अपने होम वाले विषय पर बातें चलाना पसंद नहीं किया।

"अभी नहीं खाया" संक्षेप में अमरनाथ जी ने उत्तर दिया और फिर एक दम कमला के होम वाले विषय को ही ले दौड़े, "अच्छा तो फिर कमला देवी आपके होम में सब खाना एक साथ खाते हैं और एक ही प्रकार का।"

"जी हां।" कमला ने गर्व के साथ कहा।

"बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर ! यह तो आपने कमला देवी कमाल कर दिया क्या ही सुन्दर व्यवस्था आपने बनाई है ? आपकी इस व्यवस्था का सब कुछ सुन्दर है कमला देवी ! लेकिन मुझे खेद केवल इतना ही है कि इस समस्त व्यवस्था में अपना कहलाने के लिये कुछ भी नहीं है, अपनी व्यवस्थायें अपने-अपने देश के अनुकूल होती हैं। वह स्वयं बन जाती हैं जब समय आता है परन्तु दूसरों की नक़ल करने से कभी लाभ नहीं होता।" इतना कह कर एक गम्भीर दृष्टि से अमरनाथ जी ने कमला के मुख पर देखा।

"होता है अमरनाथ जी ! होता है । आप भूल सकते हैं इस विषय में । मैं ऐसे अजीब दृष्टांत आपको दे सकी हूँ जहां नक़ल करने वाले मूल तैय्यार करने वालों से न जाने कितने आगे निकल गये । अच्छी व्यवस्था जहां भी मिले अपना लेनी चाहिये । आज भारत में कितना भेद-भाव पैदा हो रहा है । वर्तमान कांग्रेस-सरकार जिस प्रकार इन भेद-भावों को मिटाना चाहती है वह उसे मिटाने में असमर्थ सिद्ध होगी । मैं आपको लिख कर दे सकती हूँ कि वह सफल नहीं होगी बल्कि और बढ़ने की सम्भावना है । आज इस अव्यवस्थित भारत को व्यवस्थित बनाने के लिये सोवियट रूस के सिद्धांतों को अपनाना होगा । हमें क्रांतिकारी मार्गों पर चलना होगा । भारत से अंगरेज़ी सरकार का हट जाना मैं कोई क्रांति नहीं मानती । यहां की शासन-व्यवस्था पहिले की अपेक्षा और अधिक ख़राब हो चुकी है ।" कमला अपनी झोंक में आकर कहती जा रही थी ।

अब शांता को भी ज़बान खोलनी पड़ी और वह मुस्कुराते हुए कमला बहन के मुंह पर देखकर बोली "क्यों बहन एक इतनी बड़ी राज्यसत्ता समाप्त हो गई और तुम्हारे निकट कोई क्रांति ही नहीं हुई ?"

"हां नहीं हुई बहिन शांता ! समाज का ढांचा ज्यों का त्यों खड़ा है । उसके भेद-भाव ज्यों के त्यों खड़े हैं । मज़दूर उसी तरह कुचला जा रहा है । सरमायेदार उसी प्रकार ऐश करता है और बिना काम किये शराबें पीता है । यह सब क्यों ? मैं कहती हूँ कि किसी भी व्यक्ति को बिना काम किये खाना खाने का क्या अधिकार है ? सुबह से शाम तक गद्दों पर कमर घिसने वालों को हलवा पूरी और सुबह से शाम तक झल्ली ढोने वालों को सूखी रोटी भी नहीं—यह सब क्या व्यवस्था है, क्या स्वराज्य है ? यदि इसी का नाम स्वराज्य है तो ऐसे स्वराज्य से कोई लाभ नहीं, व्यर्थ है यह राज्य-प्रबन्ध । मैं इसके विरुद्ध आंदोलन करूंगी, क्रांति की चिंगारी भारत के कोने-कोने में जलाऊंगी और कहूँगी कि यह स्वराज्य धोखा है, मज़दूरों का शत्रु है, सरमायेदारों का साथी है; इसे हटाना है और भारत के उद्धार के लिये भारत में काम्यूनिज्म लाना होगा । बिना काम्यूनिज्म आये भारत का उद्धार नहीं होगा, नहीं होगा ।"

इतना कहकर कमला खड़ी हो गई और खड़ी होकर बोली, "मैं यहां आई थी कि शायद चाय मिल जायेगी शांता जीजी के यहां परन्तु यहां व्यर्थ की बहस छिड़ गई और किसी ने खाने-पीने की बात ही नहीं पूछी । आज सुबह से मैंने कुछ नहीं खाया । एक ऐसे ही झमेले में फँसी रही ।"

"फिर बैठो न बहिन ! चाय पीकर ही जाना होगा । मैं तो वास्तव में तुम लोगों की बातें सुनने में ऐसी फंस गई कि चाय इत्यादि के लिये पूछना भूल ही गई" शांता ने कमला को बिठलाते हुए कहा ।

"परन्तु मुझे अब देर हो रही है और चाय बनने में देर लगेगी" कमला यह कह ही रही थी कि सामने दरवाजे से पहाड़ी नौकर चाय की ट्रे लाता हुआ दिखलाई दिया और उसके पीछे छोटी शांता थी ।

"लो जीजी चाय पीओ ! मैं आपके लिये बनवाकर लाई हूँ ।" छोटी शांता ने कमला से कहा । सब देखते ही रह गये और बड़ी शांता ने छोटी शांता को उठा कर उसका मुंह-चूम लिया ।

सबने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी । चाय पीते-पीते अचानक अमरनाथ जी कह उठे, "तो कमला देवी ! आपकी वह हड़ताल वाली स्कीम तो फ़ेल हो गई ।"

"परन्तु मैं उसे फ़ेल नहीं मानती । इस प्रकार के प्रयत्नों से मज़दूरों में हड़ताल करने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है । आज इन पूंजीपतियों को सरकारी शक्ति प्राप्त है और वह मज़दूरों पर मनमाना अत्याचार कर सकते हैं परन्तु संसार की इस प्रगति में अत्याचार पछड़ कर ही रहेगा । मैं कहती हूँ अमरनाथ जी कि कॉम्यूनिज्म आकर रहेगा । संसार की कोई शक्ति उसे नहीं रोक सकती । अमरीका का एटमबम उसे नहीं रोक सकता । राज्यसत्ता उस वर्ग के प्रतिनिधि संभालेंगे जो वर्ग देश में सबसे अधिक होगा । भारत किसान और मज़दूरों का देश है । इसलिये यहाँ की राज्यसत्ता इसी वर्ग के प्रतिनिधियों के हाथों में रहेगी ।" कमला ने कहा ।

"यही तो मैं भी कहता हूँ कमला देवि ! मेरे विचार से आप यहीं पर भूल कर रही हैं । यहां आप समझती हैं वर्तमान राज्य-सत्ता को संभालने वाले किसानों के प्रतिनिधि नहीं हैं ।" अमरनाथ जी बोले ।

अमरनाथ जी के इन साधारण से शब्दों ने अग्नि पर घृत का कार्य किया और कमला आगबबूला होकर बोली, "नौनसैंस, ईडियट, गधे कहीं के । यह सब बदमाश हैं, चोर हैं, धोखेबाज़ हैं । यह जनता को धोखा देते हैं । धन-पतियों के हाथों की कठपुतलियां हैं । बिड़ला के हाथों के खिलौने हैं । उनके उपहास की सामग्री हैं । मैं इन्हें जनता का प्रतिनिधि नहीं मानती ।" और इतना कह कर कमला चाय पर से खड़ी हो गई ।

"नाराज़ न हो कमला बहिन ! यह तो चाय पर होने वाला वाद-विवाद है राजनीतिक क्षेत्र का नहीं । यहां क्रोध व्यर्थ है और शांता की मेज़ पर क्रोध करना

तो बिलकुल ही व्यर्थ है क्योंकि मैं तो दोनों के डिसकशन से कुछ राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया करती हूँ।" शांता बोली।

शांता की यह गम्भीर बात सुनकर कमला और अमरनाथ जी दोनों बड़े ज़ोर से खिल-खिला कर हंस पड़े और फिर तीनों ने बड़े प्रेम के साथ बैठ कर चाय पी।

"तो फिर विवाह की बात कब तक पक्की होगी?" शांता ने चुटकी लेते हुए कहा।

कमला ने कनखियों से एक ओर को ताका, मानो वह इस प्रकार की बातों से भाग जाना चाहती है, परन्तु शांता छोड़ने वाली कहां थी? उसकी बातों का जवाब दिये बिना रहा नहीं जा सकता था। कमला को कहना ही पड़ा, "शांता बहिन! विवाह एक झमेला है जिसका ज़िक्र आप मेरे सामने न किया करें। वास्तव में यदि सच पूछो तो मुझे इससे घृणा है। मुझे जीवन में बहुत कुछ करना है, मेरी आकांक्षायें और इच्छायें बहुत प्रबल हैं, इसलिये मैं अपने उस उन्नति के मार्ग में रुकावट नहीं पैदा करना चाहती।"

"तो आपके विचार से शादी एक रुकावट है। मैं कहती हूँ कि यह आपकी भूल है। विवाह से क्या होता है? एक साथी मिलता है। साथी पाकर किसी की शक्ति का ह्रास नहीं हो सकता, बल्कि वृद्धि होती है। तुम इस वृद्धि के मार्ग को रुकावट का मार्ग बतलाती हो कमला! यह ग़लत है। यदि सभी इस प्रकार का विचार रखने लगें तो यह सृष्टि समाप्त हो जाये।" शांता बोली।

"परन्तु सृष्टि को चलाने के लिये विवाह की आवश्यकता नहीं। वह चल सकती है। जब चल सकती है तो फिर मैं पूछती हूँ कि बंधन क्यों? मैं बंधन नहीं चाहती, मैं चाहती हूँ मुक्ति। मैं छुटकारा चाहती हूँ, फंसना नहीं। संसार का हर प्राणी स्वतंत्र रहे यह मेरी इच्छा है। मैं जीवन में अपने इसी सिद्धांत को सफल बनाना चाहती हूँ।" कमला बोली।

"परन्तु तुम्हारे कॉम्यूनिज्म में तो हर प्रकार का बंधन है। मानव की स्वतंत्र प्रवृत्तियों के लिये तो लेशमात्र भी विकास का साधन वहाँ नहीं मिल सकता। मानव जीवन एक यंत्र बन कर रह जाता है। यहां तक कि आपका खाना-पीना पहिनना, ओढ़ना और रहना-सहना भी एक यंत्र की भाँति सूई के नाके में को निकल कर चलता है। वहां आपकी स्वतंत्र प्रवृत्ति को ठेस नहीं लगेगी क्या?" शांता बोली।

कमला ने इस बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहा और उसने अपने हाथ की कलाई पर बंधी हुई घड़ी पर देखा। घड़ी में चार बज गये थे।

"अच्छा फिर!" कहकर कमला खड़ी हो गई। "मुझे पार्टी-मीटिंग में जाना है। चाय के लिये छोटी शांता को धन्यवाद।"

शांता कमला को मकान से बाहर तक छोड़ने के लिये आई और अमरनाथ जी वहीं पर न जाने किन विचारों में निमग्न से बैठे रहे।

(१६)

रमेश बाबू कुछ दिन के लिये मंसूरी चले गए। रशीदा ने भी साथ चलने के लिये आग्रह कम नहीं किया परन्तु रमेश बाबू ने कार्य-भार का बहाना कर्त्तव्य के रूप में इस प्रकार सामने लाकर उपस्थित किया कि रशीदा को चुप रह जाना पड़ा और अमरनाथ जी का साथ-साथ यह कहना, "अरे भाई! यदि सभी लोग चले जाओगे तो बेचारे 'इन्सान' का क्या होगा?" रशीदा के मार्ग में बाधा बन कर आ गया। रशीदा और अमरनाथ जी यहीं रहे कार्यालय को सुचारु रूप से चलाने के लिये।

अब रशीदा और अमरनाथ जी दोनों ही नित्य साथ साथ एक मेज़ पर बैठ कर चाय पीते थे। इधर-उधर की गप्पें लड़ती थीं, कुछ हंसी दिल्लगी भी कभी-कभी हो जाती थी, हास्य के साथ-साथ व्यंग्य को भी जीवन में स्थान मिलता था—इन सब में होती थीं खिची हुई कुछ रेखायें हास्य की, आकर्षण की, व्यंग्य की, मादकता की, प्रलोभन की, मधुरता की और अंत में यदि यह कह दिया जाये कि पुरुषत्व और नारीत्व के समन्वय की तो कुछ अनुचित न होगा।

नारी स्वाभाविक रूप से पुरुष की ओर खिंचती है और पुरुष नारी की ओर। यह आकर्षण कोई ऐसी विशेष बात नहीं है कि हम यहां इसे समस्या बनाकर इसके ही झमेले में पड़ जायें। संध्या और प्रातःकाल दोनों का मिलकर घूमने जाना, कभी-कभी घूमते समय अमरनाथ जी का रशीदा के हाथ को अपने हाथ में ले लेना भी कुछ-कुछ प्रयोग में आने लगा—बस इससे अधिक कुछ नहीं; यह सब भावुकता का खिलवाड़ था जो दो जीवनों को खिला रहा था। आकर्षण की दोनों ओर कमी नहीं थी परन्तु अमरनाथ जी के अन्दर कभी-कभी एक ऐसी झिझक आ जाती थी कि उस दिन उनका तमाम समय न जाने किन-किन विचारों में चला जाता था और इस प्रकार कार्यालय का नुकसान भी होता था।

कार्यालय के कार्य की व्यवस्था ख़राब हो चली। किसी-किसी दिन तो घूमने के लिये प्रातःकाल जब अमरनाथ जी और रशीदा निकल जाते तो लौटने में

ग्यारह बजा देते और जब लौट कर आते तो देखते कि प्रेस के कर्मचारी दरवाज़ों पर पड़े ऊंघ रहे हैं। इस प्रकार प्रेस व्यवस्था कुछ बिगड़ी और पत्र का नियम भी अनियमित हो गया, और डाक लेट होने लगी।

पहिली बार डाक लेट होते ही रमेश बाबू का पत्र आया, जिसमें लिखा था, "अमर रशीदा ! पत्र देर से प्रकाशित होने का कारण केवल अव्यवस्था हो सकती है। क्या मेरी अनुपस्थिति में दोनों व्यवस्थित व्यक्ति अव्यवस्थित हो गये ? मुझे ऐसी आशा नहीं थी। विस्तृत समाचार तुरन्त लिखना।

तुम दोनों का

रमेश।"

रमेश बाबू का पत्र पढ़ कर दोनों ही बहुत लज्जित हुए। किसी प्रकार खोज कर रशीदा ने उत्तर निकाला "यदि आप बुरा न मानें तो क्यों न रमेश भैय्या को लिख दिया जाये कि मशीन टूट गई थी इसलिये पत्र देर से प्रकाशित हुआ। इस उत्तर को पाकर उनके हृदय का खेद कम हो जायेगा और हम लोगों की अव्यवस्था वाली बात भी छुप जायेगी।" रशीदा बोली।

"नहीं रशीदा ! नहीं ! यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं जानता हूँ कि तुम केवल रमेश बाबू को इस समय होने वाले खेद से बचाने के लिये यह सब झूठ लिखाना चाहती हो परन्तु नहीं ! यह मेरी अकर्तव्यपरायणता का प्रायश्चित्त नहीं हुआ। मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूंगा रशीदा ! मैंने अमानत में खयानत की है। यह मैंने पाप किया है, अन्याय किया है, धूर्तता की है।" एक पागल की भांति अमरनाथ जी कह गये।

"यह आप क्या कह रहे हैं अमरनाथ बाबू ! खुदा के लिये अपने शब्द वापस ले लीजिये। वरना मेरा दिल टूट जायेगा अमरनाथ बाबू ! आप निर्दोष हैं, आपने कोई पाप नहीं किया। प्रायश्चित्त उसके लिये आवश्यक है जिसने कोई पाप किया हो। मैंने भी कोई पाप नहीं किया। हम दोनों स्वतंत्र हैं, हमें पूर्ण अधिकार है अपने भविष्य के विषय में निश्चय करने का। मैंने जो कुछ भी कहा या किया है अपनी विचार शक्तियों को प्रयोग करके कहा और किया है। मैं यह नहीं कहती कि मैं एक भाव रहित रूखे स्वभाव की लड़की हूँ; मेरे अन्दर नारी में व्यापक रहने वाले सभी गुण और दोष वर्तमान हैं परन्तु फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि मैंने अपने मस्तिष्क पर भी काफ़ी ज़ोर दिया है। परिणाम चाहे जो भी हो उसकी मुझे चिंता नहीं।

"मैं भाग्य पर भी विश्वास रखती हूँ अमरनाथ बाबू ! भाग्य की फटी हुई चादर को युक्तियों और प्रयत्नों की सूई से नहीं सिया जा सकता। आप मेरा भाग्य नहीं बदल सकते और मैं आपका नहीं बदल सकती। यदि दो भाग्यों में यही लिखा है कि एक दूसरे से टकराओ और चकना-चूर हो जाओ तो वही होगा, और होकर रहेगा। मैं और आप उसे नहीं रोक सकते। इसलिये मैं कहती हूँ कि आप इस प्रकार प्रयत्न करने की भी कोशिश न करें।" रशीदा बोली।

अमरनाथ बाबू चुप-चाप बैठे यह सब सुनते रहे। उनका सिर चकरा रहा था। वह अपने को इस समय एक ऐसे पापी के रूप में देख रहे थे कि जैसे किसी ने अपने विश्वासी मित्र के साथ घोर विश्वासघात किया हो। वह रमेश बाबू को आज क्या उत्तर दें कि उन्होंने रमेश बाबू के घर पर दिन दहाड़े डाका क्यों मारा ? जिस घर का रमेश बाबू उन्हें चौकीदार बनाकर गये थे उस घर पर इस प्रकार मालिक बन बैठना विश्वासघात नहीं तो और क्या है ? वह लज्जा से गड़े जा रहे थे और उसी प्रकार मौन एक चित्रित मूर्ति के समान एक टक आकाश की ओर न जाने क्या देखते रहे ?

प्रेस की छुट्टी हो गई। सब कर्ल्क, टाइपिस्ट, कम्पोज़िटर्स, मैशीनमैन छुट्टी कर गये परन्तु अमरनाथ बाबू उसी प्रकार बैठे रहे।

आज दोपहर बाद की चाय का समय रूखा ही चला गया। उधर रशीदा रमेश भय्या के पत्र के डर के कारण सुबह से ही काम पर ऐसी जुटी कि उसे चाय के समय का ध्यान ही न रहा और दूसरी ओर अमरनाथ बाबू अपनी परेशानी में फंसे हुए थे। उनका धर्म संकट क्या था इसे रशीदा कम समझ पाई।

"लो चाय आ गई।" रशीदा ने सामने आते हुए कहा और कमरे की बत्ती जला दी। "ऐसे अंधकार में आप क्या कर रहे थे ? क्या आपको बत्ती खोलने की भी फ़ुर्सत नहीं मिली ?" आज मेरी भी यही दशा रही। तमाम दिन काम करते-करते परेशान हो गई परन्तु हाँ इतना मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि मैंने दस दिन का कार्य एक ही दिन में समाप्त किया है। परन्तु अमरनाथ बाबू ! यह कम्पोज़िटर्स लोग भी खूब ही होते हैं। आज मैं आपको अपने अनुभव की बात बतलाऊंगी।" रशीदा बोली।

अमरनाथ बाबू कुछ सचेत से होकर बैठ गये। यह बात अच्छी ही हुई कि रशीदा ने कुछ प्रश्न करने के पश्चात् एक ऐसा विषय छेड़ दिया कि जिसमें उन्हें बोलना ही न पड़े और उनका काम केवल रशीदा के भाषण को सुनने मात्र से चल जाये। रशीदा ने फिर कहा, "प्रेस चलाने के लिये मैनेजर, कम्पो-

ज़ीटर, मैशीनमैन और ग्राहक (काम छपवाने वाले का) के समन्वय की आवश्यकता है। इन सबके मेल से प्रेस चलता है परन्तु यह समन्वय करना एक कठिन कार्य है। जहां समन्वय व्यवस्थित रूप से हो जाता है वहाँ व्यापार सफल हो जाता है और जहां इनमें से एक में भी ढिलाई हुई तो व्यापार में हानि होने लगती है। भारत के प्रायः सभी व्यापरियों को कुछ न कुछ अभावों का सामना करना होता है। जो इन अभावों की जितनी सफलता से पूर्ति करता है वही काम में उतना ही सफल होता है।" इतना कह कर रशीदा चुप हो गई और चुप थे अमरनाथ जी भी।

रशीदा का आज का रूप पिछले दिन के रूप से सर्वदा पृथक था। रशीदा का यह स्वरूप अभी तक पहिले कभी अमरनाथ जी ने नहीं देखा था परन्तु फिर भी उन्होंने उस पर कोई अश्चर्य प्रकट नहीं किया।

बड़े प्रेम से दोनों ने चाय पी साथ ही प्रातःकाल घूमने चलने का रशीदा का प्रस्ताव अमरनाथ जी को फिर मानना पड़ा सुबह, शाम, सुबह, शाम-फिर प्रेम का चक्र पहिले जैसी गति के साथ कृष्ण चक्र की तरह घूमने लगा। खेल, तमाशे सिनेमा, इन्डियागेट, महरौली, कुतुब इत्यादि स्थानों की यात्रा होने लगी और दोनों जीवनों में नई ताज़गी नई तरावट आ गई।

अब की बार जो तरावट आई उसमें एक बड़ा भारी अंतर आ गया था और वह यह था कि पहिली बार उन्होंने अपने कर्तव्य को भुला दिया था परन्तु इस बार वह उन्होंने याद रखा और प्रेस–कार्यालय के संचालन में किसी प्रकार की भी बाधा नहीं आने दी; बल्कि प्रेस ने इतनी उन्नति की कि अमरनाथजी ने प्रेस के लिये प्रेस का एक अपना प्लाट ख़रीद लिया और प्रेस की अपनी ही बिल्डिंग बनवाने की स्कीमें पास होकर इञ्जनियर्स के पास नकशे के लिये काग़ज़ात पहुंच गये। कार्य फिर बड़े वेग के साथ चल पड़ा।

रमेश बाबू का दूसरा पत्र आया। उसमें लिखा था–"अमर और रशीदा !

अब पत्र का कार्य सुचारु रूप से चल रहा मालूम देता है क्योंकि पत्र समय पर आ जाता है और उसकी छपाई इत्यादि भी दोष रहित है।

मैं तुम दोनों के तथा तुम्हारे कार्य-कर्त्ताओं के इस सहयोग पूर्ण कार्य के लिये तुम्हें बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप दोनों का यह सफल कार्य कभी असफल न होने पायेगा इसके लिये जीवन में सदा सचेत रहना

तुम्हारा अपना

रमेश।"

पत्र की भाषा बहुत स्पष्ट तथा गम्भीर थी जिसे पढ़ कर अमरनाथ जी को महान् दुःख हुआ और रशीदा ने उसे साधारण तथा अपने साथ सहानुभूति मात्र ही समझा। भाई ने रशीदा के हृदय को पहिचान लिया, रशीदा यही समझी परन्तु अमरनाथ जी ने सोचा कि रमेश बाबू उनके सिर पर व्यंग्य के कस-कस कर जूते लगा रहे हैं। वह एक बार तिल-मिला उठे और कह उठे, "नहीं, नहीं, नहीं, मैं विश्वासघात नहीं करूंगा, नहीं करूंगा," और फिर मौन होकर एक तरफ़ को मुंह कर लिया।

रशीदा कुछ भी न समझ सकी और सब काम छोड़कर अमरनाथ बाबू का मुंह ताकने लगी। फिर थोड़ी देर पश्चात् बोली, "क्या आपको कभी-कभी कोई किसी प्रकार का फ़िट भी आ जाता है अमरनाथ जी ?"

"नहीं कुछ नहीं !" कुछ अव्यक्त से शब्दों में अमरनाथ जी ने जवाब दिया और फिर मेज़ पर कोहनी टेक कर हथेलियों पर मस्तक को टिका लिया और रशीदा ने आश्चर्य से देखा कि अमरनाथ बाबू की आंखों से टपा-टप आंसुओं की झड़ी बँधी हुई है।

रशीदा सन्न सी रह गई और यह भी न समझ पाई कि आख़िर कारण क्या है कि अमरनाथ जी इस प्रकार रो रहे हैं। उसके मुख की हास्य रेखायें चिंता में विलीन हो गईं। फूल से चमकते हुए मुख-चन्द्र पर ग्रह नक्षत्रों के फेर से ग्रहण की पूर्णिमा आगई। हृदय भारी हो गया अमरनाथ जी के इस प्रकार दुःखी होने के कारण को जांनने के लिये आख़िर रशीदा से रहा नहीं गया और वह भी रोती सी सूरत बनाकर अमरनाथ बाबू के सामने हाथ जोड़ कर बोली, "क्या मुझसे कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है कि जिसके आघात से आपकी यह दशा हो गई।" रशीदा के इस कथन में कितना सत्य था। व्यंग्य की अपेक्षा इसे चाहे कोई और न समझे परन्तु अमरनाथ जी से वह छिपा न था। वह जानते थे उनका दिल जानता था, उनका मन जानता था।

अमरनाथ बाबू से अब और उसी प्रकार मौन मुद्रा में न बैठा गया और उन्होंने तुरन्त आगे बढ़ कर रशीदा के दोनों जुड़े हुए हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा, "यह क्या कर रही हो रशीदा ? तुम अपना यह पागलपन नहीं छोड़ोगी। मैं तो और कुछ परेशानियों में फंसा हुआ इस प्रकार बैठा था। मैं सोच रहा था कि कमेटी ने अभी तक नक्शा पास करके नहीं दिया और रमेश बाबू के लौटने के दिन समीप आ गये। मैं सोचता था कि यदि यह रुकावट मार्ग में न आती तो रमेश बाबू के लौटने तक मैं प्रेस और 'इन्सान' कार्यालय को इसके

अपने मकान में ले जाता। अपने लगाये पौदे को लौट कर जब रमेश बाबू इस रूप में पाते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती।"

"आप बात बदल कर कह रहे हैं अमरनाथ बाबू! मुझे आप इतना नादान न समझें कि मैं आपको समझती ही नहीं। एक नारी जिससे प्रेम करती है उसे पूरे तौर पर नाप तौल कर देख लेती है और यदि कोई स्त्री अपने इस गुण में अपूर्ण है तो समझ लो कि उस स्त्री के नारीत्व का दोष है। मेरा दावा है कि मैं आपको जितना आप अपने आप को समझते हैं उससे कई गुना अधिक समझती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि जीवन के किस पहलू का आपको ज्ञान है और किस पहलू से आप अनभिज्ञ हैं। मैं जानती हूँ कि यदि जीवन में मैं और आप साथ-साथ रहें तो हमें अपने गृहस्थ रूपी जहाज़ को चलाने के लिये कौन-कौन सी पतवारें संभालनी होंगी और किस-किस प्रकार आप यह सब कुछ नहीं जानते। जीवन केवल कोरी भावना मात्र नहीं कठोर सत्य है। इसलिये इसके यात्रियों को भी भावनाओं के जंजाल से मुक्ति पाकर जीवन की कठोर सत्य समस्याओं पर विचार करना चाहिये।" रशीदा बहुत दृढ़ता पूर्वक कह रही थी और अमरनाथ जी चुप-चाप बैठे सुन रहे थे। रशीदा का जो निखरा रूप अमरनाथ जी ने रमेश बाबू के जाने के पश्चात् देखा वह उनके लिये शिक्षाप्रद और आश्चर्यजनक था। व्यवहार के नाते वह कठोर सत्य था और उसमें अपने को भुलाने के लिये तो कोई स्थान ही नहीं था।

रशीदा फिर कहने लगी "मैंने व्यक्ति दो प्रकार के देखे हैं और पढ़े हैं। घर, गृहस्थ, कोई समाज, कोई सभा सब का एक सरदार होता है। जो उस सरदार के पीछे अपनी पूर्ण शक्ति के साथ चलेगा वही जीवन में सफल होगा। अब रही सरदार की बात, सरदार स्त्री भी हो सकती है और पुरुष भी। कुछ पुरुष ऐसे होते हैं कि उन्हें यदि उनकी स्त्रियां जीवन में न संभालें तो वह न जाने कितनी बार डुबकियाँ खायें। यही दशा कुछ स्त्रियों की भी होती है। इसलिये कुछ परिवार स्त्रियों के चलाये चलते हैं और कुछ पुरुषों के चलाये और कुछ दोनों के चलाये चलते हैं परन्तु आपका परिवार सर्वदा वह होगा कि जो स्त्री के चलाये चलेगा क्योंकि आपमें किसी परिवार की बागडोर संभालने की योग्यता और क्षमता ही नहीं है। एक फूल स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी रक्षा के लिये मालिन की आवश्यकता होती है। वही आवश्यकता तुम्हें भी जीवन में चाहिये। यदि आपको यह आवश्यकता पूर्ण करने वाली स्त्री जीवन में न मिली तो आपका जीवन श्राप हो जायेगा यह मैं लिखकर दे सकती हूँ आपको।"

अमरनाथ जी सोच रहे थे कि 'वाह ! क्या क्रिटिक दिमाग़ पाया है लड़की ने वाह !' प्रशंसा के लिये उनका हृदय गद-गद होता जा रहा था । मन 'रमेश बाबू के प्रति उसका क्या कर्तव्य है' इसी उलझन पर अटका हुआ था । कभी-कभी रह-रह कर अमरनाथ जी को कमला की भी याद आ जाती थी परन्तु वह बहुत कम, क्योंकि रशीदा का आकर्षण उनके सामने एक इतनी बड़ी दीवार बनकर आ गया था । इसके ऊपर से होकर कमला को झांकना इनके लिये कठिन हो गया था । अमरनाथ बाबू इस समय रशीदा के ऊपर दिल से लट्टू थे । उनके रास्ते में था केवल उनका रमेश बाबू के प्रति कर्तव्य । मन कहता था कि तूने विश्वासघात किया है और उनका तमाम बदन सिहर उठता था । इस विचार ने अमरनाथ बाबू का जीवन एक समस्या बना दिया था । उन्हें हर समय सोते-जागते खाते-पीते बस वही रोग सताता था । दूसरी तरफ़ रशीदा खूब आनन्द के साथ रहती थी और जीवन की एक सफल अभिनेत्री की भांति अपने पार्ट अदा कर रही थी । वह पूर्ण रूप से सुखी थी। अमरनाथ जी के पुरुषत्व पर यह उसके जीवन की प्रथम विजय थी जो जीवन के अन्त तक उसे घर की कर्ण-धार बनाये रखेगी । रशीदा को पूर्ण विश्वास था अपने ऊपर कि यदि उसे अपने लिये जीवन में कोई ऐसा साथी मिल जाये जो योग्य हो और विचारशील भी, व्यवस्था चाहे उसे न आती हो, उसे मैं संभाल लूंगी। "रक्षा का कार्य मैं अपने और ऊपर लूंगी तुम्हें किसी विषय में भी जीवन भर लज्जित नहीं होना पड़ेगा, तुम्हारे घर की कहीं पर भी बदनामी न होगी यह सभी भार मेरे ऊपर रहेगा और इन को पूर्ण रूप से निभा सकूंगी ।

"और मैं आपको बतलाऊं" रशीदा फिर बोली, "मैं कमला बहिन को भी जानती हूँ—शायद यह आप नहीं जानते अमरनाथ जी ! कमला का नाम मेरे मुंह से सुनकर आपको आश्चर्य अवश्य हुआ होगा कि यह मैंने कहां से खोज निकाला परन्तु यह आप जानते ही हैं, कोई सौदा करते समय छोटी-छोटी वस्तुओं की भी जांच की जाती है और फिर यहां तो जीवन का सौदा है । यदि इस सौदे को अनाड़ी के हाथों में सौंप दो तो जीवन भर पछताओगे । हम तो केवल यही कह सकते हैं ।" कह कर रशीदा ज़रा भारी सा मुंह करके एक ओर को हो गई ।

अमरनाथ जी को मानो लगा वह आज नाराज़ हो गई । कुछ मनाने के स्वर में थोड़ी देर बाद अमरनाथ जी बोले, "अच्छा अब व्याख्यान तो सुन लिया कहीं घूमने नहीं चलोगी क्या ?"

रशीदा का हृदय कह उठा कि उसने विजय पाई और विजय के ही स्वर में कहा, "क्यों नहीं चलेंगे घूमने ? चलिये ! आज बारिश होगी जो आपको घूमने चलने का ध्यान तो आया, चार महीने हो गये, न खाने को कहना न नहाने को । मैं कहती हूँ, समय से पहिले कुछ नहीं होगा और आप कहते हैं कि एक दिन में पत्र के लिये लालकिला बनवा कर खड़ा कर देना चाहिये। किसकी शुभ कामनायें नहीं हैं इस शुभ कार्य के साथ परन्तु समय आने पर ही तो यह सब हो सकेगा, समय से पूर्व नहीं।" दोनों इसके पश्चात् घूमने के लिये निकल गये और आज एक सिनेमा देखने का प्रोग्राम बना।

(२०)

कमला ने जो व्यक्ति अपने लिये प्रारम्भिक काल में छाँटा वह अमरनाथ जी था। परन्तु बाद में आकर इस विचारधारा में एक तनाव आ गया। इस तनाव आ जाने का प्रधान कारण रशीदा का बीच में आ जाना था। कमला का अधिकार धीरे-धीरे कम होता गया और रशीदा का बढ़ता गया। कमला का रुझान उसके प्रारम्भिक काल से कुछ कॉम्युनिज्म की तरफ़ था। इस समय तो वह शहर की प्रधान कॉम्युनिस्ट थी और उसने एक छोटा सा रूस बसा लिया था बल्ली मारान मुहल्ले में अपने होम के अन्दर। क्या ही सुन्दर मॉडल तैय्यार किया था यह कमला ने अपने उस प्यारे रूस का जिसने मज़दूरों को जीवन दान दिया, और उसे मानव की भांति रहना सिखलाया।

कमला का होम बड़े ज़ोर से चल रहा था इस समय। कमला को होम से इस समय बड़ी भारी आय थी और वह सब रुपया इस समय पार्टी के ही हित में लगा रही थी। इस होम के पास इस समय दस वैतनिक व्यक्ति थे जो कि जहां भी उनका दाव लगे कॉम्यूनिज्म का बीज बोना प्रारम्भ कर दें। कुछ न कुछ बीज अवश्य जम आयेंगे। यह बीमारी स्टुडेन्टों और ट्रेडयूनियनों की ओर से चलती थी और साधारण जनता को दुख देती थी और सरमायेदारों को तो चौराहे पर खड़ा करके गोलियों से उड़वाये जाने की सज़ा देने को उद्यत रहती थी।

इस होम को इस स्टेज पर लाने वाला कौन था ? क्या अकेली कमला ने यह सब कुछ किया ? नहीं, कदापि नहीं ! करने वाला था आज़ाद। जीवन की जिस समस्या को दोनों व्यक्ति मिलकर सुलझाने का प्रयत्न करेंगे वह शीघ्र सुलझ जायेगी और पृथक-पृथक ज़ोर लगाने से कभी-कभी दोनों ही शक्तियां नष्ट हो ज़ाती हैं।

कमला ने आज़ाद के रूप में वह शक्ति पाई जिसने उसके आन्दोलन की व्यवस्था को संभाल लिया। व्यवस्था का ढ़ांचा दिन प्रतिदिन अच्छा होता चला गया और साथ-साथ पार्टी की शक्ति भी बढ़ने लगी।

चीन में कॉम्यूनिस्टों की विजय का समस्त देशों की कॉम्यूनिस्ट पार्टियों पर प्रभाव पड़ा ? उनकी शक्तियां बढ़ीं और दूसरी शक्तियों की नज़रों में यह खटकने लगी। प्रत्येक देशीय सरकार की नज़रों में यह पार्टी खटकने लगी। हर देश की शासन व्यवस्था ने पार्टी के इस बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का प्रयत्न किया परन्तु यह प्रभाव फिर भी अनेकों स्थानों पर अपना प्रभाव दिखलाये बिना न रहा।

कमला ने आज़ाद के रूप में एक ज़बरदस्त शक्ति प्राप्त की और वह जीवन में और भी बड़ा कार्य करने के लिये अग्रसर हुई। वह जा रही थी एक राज्यसत्ता को छिन्न-भिन्न करके अपनी सत्ता स्थापित करने। उसके हृदय का वेग अपार था। कमला में कार्य करने की कितनी क्षमता थी यह केवल आज़ाद जानता था। अमरनाथ इस शक्ति का मूल्यॉकन न कर सका।

आज़ाद जब से दिल्ली आया तो पार्टी के ऐसे कार्य में फँसा कि कभी उसे उस होम से बाहर निकलने का अवकाश ही नहीं मिला। उनका दिल बहलावा केवल यही था जब संध्या को कमला पार्टी के फील्डवर्क से आती तो वह दोनों साथ-साथ बैठ कर चाय पिया करते थे। दोनों एक दूसरे को अपनी-अपनी प्रोग्रेस सुनाते थे। एक कहता कि मैंने आज रूस के इतने प्लान दिल्ली प्रान्त के अमुक अमुक भाग में वँटवाये और दूसरी कहती कि मैंने आज अमुक-अमुक ट्रेड यूनियन में अमुक-अमुक व्यक्ति छाँटे हैं जो पार्टी के मैम्बर होना चाहते हैं।

"चलिये दोनों की प्रोग्रेस खूब रही। अब हमारी पार्टी की दशा बहुत अच्छी है। हमारे पास मैम्बर कम हैं परन्तु जितने हैं वह सब गृहत्यागी हैं, उनका घर गृहस्थों से कोई सम्बन्ध नहीं। उनके जीवन का लक्ष्य बन चुका है कॉम्यूनिज्म का प्रचार करना। हमारी पार्टी अब दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होती जा रही है।" कमला ने विश्वास के साथ कहा।

"यह सच है कमला ! क्यों कि उत्थान का मूल मंत्र है त्याग। जब तक कोई त्याग नहीं जानता उन्नति नहीं कर सकता। कांग्रेस ने त्याग किया राज्य-सत्ता प्राप्त की परन्तु राज्य-सत्ता को पाकर त्याग को भुला दिया और एक ऐसे माया जाल के चक्कर में पड़ी कि उस मायाजाल के चक्करने इनको पथ भ्रष्ट कर दिया। यही इनकी अवनति का प्रधान कारण है।" आज़ाद ने कमला की हां

में हां मिला दी और दोनों के विचार एक होगये। दोनों के विचार स्वतंत्र हैं और साथ-साथ चल रहे हैं, विवाह की कुछ आवश्यकता नहीं और विवाह से प्राप्त किये हुए जीवन का भी अभाव नहीं। जीवन ज्यों का त्यों सुचारु रूप से चल रहा था इतना अवश्य था कि व्यर्थ का रहस्य कहलाने वाला विवाह जाल नहीं था। किस की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं।

कमला के इस होम का पता धीरे-धीरे दिल्ली सी० आई० डी० को लग गया और एक दिन संध्या समय जब आज़ाद और कमला चाय पी रहे थे तो पुलिस ने आकर छापा मारा। एक कॉमरेड ने बड़ी चतुराई से काम किया और उसने आगे बढ़ कर कमला तथा आज़ाद को पीछे के मार्ग से निकाल दिया। एक कामरेड ने स्वयं अपने को आज़ाद बतलाकर गिरफ़तार करा दिया और पुलिस इनके काग़ज़ातों की तलाशी लेकर तथा दो तीन अन्य कॉमरेडों को हिरासत में लेकर वहां से विदा हुई।

कमला और आज़ाद धीरे से गली पार कर चांदनी चौक के बाज़ार में चहलक़दमी करने लगे। आज़ाद आज होम से बाहर निकला तो उसे ऐसा लगा कि इस दुनियां में रहने वाला तू भी एक प्राणी है।

"बाहर का जीवन भी क्या खूब जीवन है?" आज़ाद बोला।

"जी हां" कमला ने मुंह बनाकर कहा, "जब लम्बी २ नापनी पड़ती है तब पता चलता है बाहर के जीवन का। घर में बैठे २ ठाठ के साथ जो काम होजाता है वह बाहर की भागदौड़ में नहीं हो पाता। यहां तक कि कभी-कभी तो थकान के कारण बदन इतना चूर-चूर हो जाता है कि मन बाहर की ड्यूटी देते-देते ऊब जाता है। अब और अधिक बाहर की ड्यूटी देने के लिये मन नहीं चाहता।"

"तो हम लोग ड्यूटी बदल लेंगे कमला! तुम चिन्ता न करो। मैं, तुम देखोगी कि बाहर की ड्यूटी भी उसी निपुणता से निभाऊंगा जिस निपुणता से आफ़िस को निभा रहा था। अब आफ़िस की बागडोर तुम संभालो।"

आज से दोनों कार्य धारायें बदल गईं और कमला ने आफ़िस संचालन अपने हाथो में ले लिया। दोनों ही अपना-अपना कार्य करने में कुशल निकले। बाहर के कार्यककर्त्ताओं ने आज़ाद को अपनाया और कार्य करने वाली व्यवस्थापक मैशीन ने कमला को।

काम में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। भारत-सरकार ने कॉम्यूनिस्ट पार्टी के ख़िलाफ़ कानून तो नहीं घोषित किया परन्तु उन व्यक्तियों पर क्रोध प्रकट किये बिना न रही जो उपद्रवों की जड़ थे? सरकार ने आन्दोलनों को दबाने

का यही उपाय सोचा और कॉम्युनिस्ट पार्टी के कार्य-कर्त्ताओं पर कड़ी नज़र रख कर उपद्रवकारियों को जेल में सुरक्षित रख दिया जाय। यह भीउस समय तक के लिये कि जब तक जनता को समझा कर इतना अधिकार में न कर लिया जाये कि उन पर फिर उनका कुछ प्रभाव न पड़े ।

काम्यूनिस्टों को हैदराबाद की कुव्यवस्था से भी अपनी शक्ति बढ़ाने में सहायता मिली और दूसरी ओर बंगाल में चीन का प्रभाव पड़े बिना न रह सका।

कमला का होम पूर्ण रूप से सरकार के हाथों में चला गया और इस होम के समाप्त हो जाने पर कमला के कार्य को बहुत बड़ा धक्का लगा। उसके पास आय का जो साधन था, जिसके बाल पर पार्टी के मैम्बर बढ़ते चले जा रहे थे, वह उसके पास से जाता रहा। कॉमरेड़ों की दशा बिगड़ने लगी, और उनके जूते काफ़ी हाउस में पालिश विहीन दिखलाई देने लगे। मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं और दशा ख़राब हो चली। काम तो कोई और आता नहीं। दस्तकारी नहीं जानते। पार्टी के प्रोपोगेन्डा अब चले किस प्रकार जब पार्टी के पास रुपया ही नहीं रहा।

कमला और आज़ाद आज कल दोनों ही फटेहाल हो गये। कभी कभी तो दो-दो दिन फ़ाके से हो जाते थे परन्तु कभी किसी के पास दीन शब्द नहीं बोले। ऐसी ही दशा में एक दिन कमला शांता के मकान पर दो दिन की भूखी चाय पीकर आई थी।

आज अचानक बैठे-बैठे आज़ाद कहने लगा, "कमला हम प्रोपोगेन्डे का ही व्यापार क्यों न करें। अपनी एक न्यूज़एजेंसी खोल देते हैं। व्यवस्था हमारी बनी-बनाई है। भारत के हर शहर में हमारे कॉमरेड हैं। मैं आशा करता हूँ कि हम बहुत शीघ्र सफल होंगे इस कार्य में।"

कार्य कमला की समझ में आ गया और दोनों ही इस कार्य में जुट गये। दो महीने के अन्दर अन्दर कमला और आज़ाद ने इस विज्ञापन एजेन्सी को एक बड़ा रूप दे दिया और इनकी आय दिनप्रति दिन फिर बढ़ने लगी।

कामरेडो में भी ज़रा ताज़गी आई। सबको काम करने को मिला और चार पैसे मिले। काफ़ी-हाउस में भी फिर चहल-पहल दिखलाई दी और उनके पुराने जूते भी पालिश की रगड़ से चमक उठे। जो रेस्टोरेन्ट पिछले कुछ दिनों से कॉमरेड़ों की कम चहल-पहल से तनिक अस्वस्थ वातावरणमें आये थे वहां फिर गांधी और जवाहरलाल पर गन्दे शब्दों की बौछार होनी प्रारम्भ हो गई। काँग्रेस सरकार को

खुदग़र्ज़ों और सरमायेदारों की सरकार कह कर पुकारा गया और वातावरण में फिर एक खलबली सी दिखलाई दी।

होटल के जिस केबिन की तरफ़ भी नज़र डालो बस यही बातें होती मिलेंगी। कोरे-कोरे कटु शब्दों के साथ आलोचना, क्योंकि विचार प्रकट करने की वर्तमान सरकार ने हर व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान की हुई है।

इस एडवरटाइज़िंग एजेन्सी की कार्यकर्ता सब लड़कियां थीं जो फील्ड-वर्क करती थीं और ऑफिस का सब कार्य लड़कों के हाथों में था। जिस जिस विज्ञापनदाता के पास भी वह कामरेड पहुँच गई उसने आर्डर दे दिया और वह भी कम से कम वर्ष भर के लिए। इस प्रकार एजेन्सी का काम सुचारु रूप से चल निकला और कमला तथा आज़ाद दोनों की ही परेशानियाँ कुछ दूर हुई परन्तु, उनके मार्ग में एक और कठिन समस्या इस समय यह आ गई थी कि कमला और आज़ाद दोनों के ही वारेन्ट कट थे। पिछले दिनों एक कॉमरेड ने अपना नाम आज़ाद बतलाकर कुछ दिन के लिए आज़ाद का वारेन्ट स्थगित होने में सहायता अवश्य की किन्तु जेल में जाते ही वह रहस्य खुल गया और वारन्ट ज्यों का त्यों जारी रहा। कमला तथा आज़ाद दोनों को ही अन्डर ग्राउन्ड रहना पड़ गया। इसीलिए आजकल साथ साथ रहने का अधिक अवकाश न मिलता था।

"सरकार की वर्तमान नीति से हमारे काम में काफ़ी बाधा पड़ गई।" कमला ने चाय की मेज़ पर बैठते हुए कहा।

"हाँ और एक विशेष कठिनाई जो इस समय हमारे साथ है वह यह है कि भारत की जनता हमारे साथ नहीं है। जितने अच्छे कार्यकर्ता हमारे पास हैं यदि उतना ही अच्छा हमारा प्रभाव भी जनता में होता तो सरकार की इस नीति का प्रभाव हमारे आन्दोलन पर उल्टा ही पड़ता।" आज़ाद कमला के मत का प्रतिपादन करते हुए बोला।

"यह सब प्रभाव केवल इस बात का है कि सन् ४२ के आन्दोलन में कॉम्युनिस्ट पार्टी ने देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन का विरोध किया था। भारत की जनता नहीं जानती कि यह स्वराज्य जो उन्हें मिल गया है वह ब्रिटिश राज्य से भी बदतर है। उस समय हमें अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का अधिकार था और यदि अधिकार न होते हुए भी आन्दोलन किया जाता था तो जनता उसका साथ देती थी। उस समय आन्दोलन करने वाले कहलाते थे देश भक्त और आज वह हो गए हैं देशद्रोही। अपनी सरकार जो

ठहरी। इसे पूर्ण अधिकार है कि यह ग़रीबों के गले काट काट कर अमीरों के खज़ाने भर दे। इसे पूरा पक है कि यह सूखे मजदूरों के शरीर में से रक्त निकलवा निकलवा कर मोटी मोटी तोंद वाली जनता की जोंकों के शरीरों में इंजेक्शन द्वारा और रक्त भर दें। एक ओर मज़दूर सूख कर हड्डी और पंजरमात्र रह जायें और दूसरी ओर पूंजीपति का शरीर रक्त और चर्बी के आधिक्य से फटने को तैयार हो जाये।" कमला बोली।

"यह नहीं हो सकता, नहीं होगा।" क्रोध में आकर आज़ाद ने चाय पीनी छोड़ दी। ग़रीब मज़दूर का रक्त पूंजीपति नहीं पी सकेगा, नहीं पी सकेगा मैं हर मज़दूर के रक्त में वह विष पैदा कर दूंगा कि एक एक मज़दूर के बदन की एक एक बूंद अनेकों पूंजीपतियों को यमलोक पहुंचाने में सफल होगी। पूंजी को मैं मज़दूरी से गौण बना दूंगा। प्रधानता हर व्यापार में मज़दूरी को होगी। उस दशा में किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार न होगा कि वह दूसरों की कमाई में से मलाई उतारकर खा जाय और कमाने वाले के पल्ले पड़े केवल मक्खन निकला हुआ दूध। मैं इस व्यवस्था को मिटाकर छोड़ूँगा कमला! अब समय निकट आ गया है जब जनता भी समझने लगेगी कि काँग्रेस ने कितने कितने वायदे उनके साथ किये थे और वह कहाँ तक उन्हें पूरा करने में सफल हो रही है।" आज़ाद बोला।

"क्यों नहीं समझेगी? मैं तो कहती हूँ समझने लगी है। फिर हमारे कार्य का क्षेत्र व्यापारी वर्ग नहीं है! यह लोग तो बेपैंदी के लोटे होते हैं। 'जैसा देश वैसा वेश' इन लोगों का सिद्धान्त रहता है। हमारा प्रभाव विद्यार्थियों पर धीरे धीरे खूब तेज़ी के साथ बढ़ता जा रहा है। और मज़-दूरों पर तो हमारा एक छत्र राज्य है, मानोपोली है। मज़दूर जब हमारे हाथ हैं तो देश भर की मिलें हमारे हाथ में है, रेलें हमारे हाथ में हैं। हम जिस दिन चाहें उन्हें जामकर सकते हैं।" कमला सगर्व बोली।

"यह ठीक है कमला देवी! परन्तु मैं अभी अपना अधिकार उतना पूर्ण नहीं मानता। यह गिरगिट की चाल चलने वाली सोशलिस्ट पार्टी एक अजीब चूं चूं का मुरब्बा बनकर भारत की राजनीति में फँसी हुई है। घड़ी भर में यह सरकार का साथ देने लगती है और घड़ी भर में उससे पृथक हो जाती है। यह लोग भी अजीब दोग़ले किस्म के आदमी हैं। मुझे तो इन लोगों का कहना सुनना कुछ समझ में नहीं आता। परन्तु फिर भी इन लोगों ने अपना खटराग अच्छा बनाया हुआ है। सरकार का पूर्ण

रूप से विरोध न करने के कारण इनके अस्तित्व को कहीं ठेस नहीं लगती और सरकार को भी यह एक ऐसी पार्टी मिल गई है कि जिसके पास चाहे दो चार लीडरों के अतिरिक्त और कुछ भी न हो परन्तु फिर भी यह भारत की राजनीति में एक प्रधान पार्टी बन गई है और इसका अपना एक स्थान भी बन चुका है।" आज़ाद बोला।

"मैं कहती हूँ आज़ाद बाबू कि अभी भारत का मज़दूर भी अच्छी तरह से ट्रेण्ड नहीं हुआ है। मज़दूर अभी केवल नारों को समझता है, सिद्धाँत को नहीं। जब तक वह यह नहीं समझने लगेगा कि कॉम्यनिज्म उसकी अपनी चीज़ है और इसके अतिरिक्त सब उसे भुलावे में डालने वाले मायाजाल हैं उसे गुलाम बनाये रखने के चमकदार फन्दे हैं, उसका खून चूसने के लिए जोंकें हैं, तब तक वह अपना निश्चित् मार्ग निर्धारित न कर सकेगा।" कमला बोली।

"तुम्हारा विचार बिल्कुल ठीक है कमला देवि! परन्तु अब समय आ गया है कि मज़दूर को यह समझना ही होगा, क्योंकि वह और अधिक भुलावे में नहीं रखा जा सकता। यदि वह भुलावे में रहा तो नष्ट हो जायेगा। परन्तु संसार की शक्तियाँ उसे नष्ट नहीं होने देंगी। जिसका जो अधिकार है वह उसे अवश्य प्राप्त होगा। यदि वह स्वयं प्रयत्न न करेगा तो उसकी पीठ पर कोड़े मार-मार कर उससे यह प्रयत्न कराया जायेगा और इस प्रकार उसे यह करना ही होगा।"आज़ाद ने कहा।

"मैं आपकी राय से बिल्कुल सहमत हूँ। आज़ाद बाबू बिल्कुल! चाय पीती पीती कमला उछल पड़ी मानो आज़ाद ने कोई अजीबो ग़रीब बात कह डाली हो। कमला को आज़ाद में इतना अपनापन अनुभव हुआ कि मानो कमला के ही मनकी बात उसने चुराली। "कमला शाँति से व्यवस्था नहीं चाहती बल्कि अशाँति से चाहती है।" कमला ने अपने उन छोटे छोटे सुन्दर से नथनों को कई बार फुलाकर बड़े गर्व के साथ कहा। "मैं खण्डहर पर फिर से एक विशाल भवन बनाना चाहती हूँ जिसकी बुनियादें नई होंगी, जिसकी दीवारें नई होंगी और जिस पर छत भी नई डाली जाएगी। पुरानी छतें काम नहीं देंगी, पुरानी कड़ियों में घुन लग गया है, पुराना चूना और सीमेंट बेजान हो चुका है। काँग्रेस सरकार ऊपरी टीपटाप के पश्चात् मकान पर कली करके यह कहना चाहती है कि यह मकान उसने नया तैयार किया है, यह उसकी भूल है। अब पुराने मकान नहीं रह सकते, पुरानी व्यवस्थायें नहीं चल सकतीं, पुरानी सभ्यता को स्थान छोड़ देना होगा नई सभ्यता के लिए। संसार नवीनता की ओर चल

रहा है फिर भारत कैसे पीछे रह सकता है ? यहाँ के मज़दूर भी हाड़ और चाम के बने हुए हैं, उन्हें भी अच्छा खाना और पहिनना बुरा नहीं लगता। वह क्यों नहीं होटलों में जाकर जिन्दगी का मज़ा लें ? तमाम दिन परिश्रम करके उन्हें क्यों यह अधिकार नहीं है कि वह जीवन को जीवन मान कर चल सकें। उन्हें उनके परिश्रम का फल मिलना चाहिये। क्यों वह जीवन भर सरमायेदारों की कृपा के पात्र बने रहें ? सरमायेदारी का रुपया इन्हीं मज़दूरों के खून और पसीने की कमाई में से चुराया हुआ अथवा लूटा हुआ रुपया है ! मज़दूरों को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने देश के धन पर जिस प्रकार भी हो सके अधिकार कर लें और उनसे कह दें कि बस यह शोषण प्रवृत्ति अब और अधिक नहीं चल सकेगी। यदि तुम लोग हमारे सामने आओगे तो तुम्हें अपनी प्रवृत्तियों के साथ प्राणों से भी हाथ धोने होंगे।" कमला ने गम्भीर होकर कहा।

"परन्तु सरकार आज मिल-मालिकों के साथ है, मज़दूरों के नहीं, पूँजी-पतियों के साथ है कार्यकर्त्ताओं के साथ नहीं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ऐसी सरकार नहीं रह सकती और न उसे रहने का अधिकार ही है।" आज़ाद ने ज़रा क्रोध के साथ कमला के व्याख्यान की पुष्टि करते हुए कहा।

"यही होगा आज़ाद बाबू ! यही होगा। चीन में मार्शल च्यांकाई शेक की जो दशा हुई वही भारत में जवाहरलाल की होगी। जवाहरलाल भारत का च्याँकाईशेक है। यह वह किसी दिन समझेगा और अवश्य समझेगा।" कमला ने गर्व के साथ कहा और फिर घड़ी की तरफ़ देखा—"नौ बजने में केवल दस मिनट बाकी रह गए। अब हम लोगों को चलना चाहिये। ठीक नौ बजे सभा प्रारम्भ करके दस मिनट में ही समाप्त करनी होगी।"

दोनों व्यक्ति उठ खड़े हुए और होटल से बाहर आकर उन्होंने एक मोटर साइकिल रिक्शा किराये पर ली। दस मिनट में मोटर साइकिल रिक्शा ने आज़ाद तथा कमला को उनके लक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। इधर घड़ी ने टन-टन करके नौ बजाने प्रारम्भ किये और उधर कमला तथा आज़ादने कमरे में प्रवेश किया सब कॉमरेडों ने दोनों का खड़े होकर फ़ौजी सैल्यूट से स्वागत किया और फिर सब के सब शांत होकर बैठ गये। कमला ने कहना प्रारम्भ किया "अब सब ट्रेड यूनियनों में हमारे कॉमरेड छा गये हैं, समय आ चुका है जब कि हमें कुछ करना चाहिये। और अधिक शांत अब हम लोग नहीं रह सकते। हड़ताल ही हम लोगों के पास एक अस्त्र है। हड़ताल का सफल होना या असफल होना हमारा उद्देश्य नहीं है हड़तालें कराना मात्र ही हमारा उद्देश्य है। हम चाहते हैं कि क्रांति

पैदा हो और वह तभी हो सकती है जब यह वर्तमान व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर शक्तिहीन हो जाये और फिर उसके खंडहरों पर चलने के लिए तुम लोग नई सड़कें बना सको, नई व्यवस्था तयार कर सको। इस व्यवस्था को समाप्त करने के लिये तुम्हें जो कुछ भी बलिदान देना होगा उसे तुम कर्तव्य समझकर दोगे। कहिये क्या आप लोग तैय्यार हैं?"

"तैयार हैं।" चारों ओर से आवाज़ आई। कॉमरेडों में जोश का ठिकाना नहीं था। सब जी जान से पार्टी का काम करने को उद्यत थे।

"अब आपके सामने जो प्रोग्राम होगा उसे व्यवस्थित रूप से समझा कर आज़ाद बाबू रखेंगे और आप शांति पूर्वक उसे समझिये।" कहकर कमला एक तरफ़ बैठ गई।

आजाद बाबू ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया, "डियर कॉमरेड्स (प्यारे कॉमरेडो)!

आपको जानना चाहिये कि भारत आज़ाद नहीं हुआ है बल्कि और भी अधिक गुलाम हो गया है। भारत के पत्रकार भी गुलाम हैं। 'नेशनमैन' जो अङ्गरेजी सरकार के सामने अङ्गरेजों का पत्र माना जाता था आज सरकार के विचारों का प्रतिपादन उसी प्रकार करता है जिस प्रकार किसी के हाथ में रोटी का टुकड़ा देख कर कुत्ता दुम हिलाने लगता है। जिस पत्र को भी देखो उसकी यही दशा है। एक 'इन्सान' पत्र निकलता है उसकी प्रतियाँ आपने देखी होंगी। 'पिद्दी न पिद्दी का शोरवा' और वह भी अपने को विचार प्रधान पत्र मानकर अपना एकांकी स्थान समझता है कॉम्यूनिस्ट पार्टी के ख़िलाफ जितना ज़हर यह पत्र उगलता है उतना भारत टाइम्स भी नहीं उगलता। ख़ैर! मेरा यह सब कहने का मतलब यह है कि हमें पहिले प्रेस कर्मचारियों को अपने हाथों में लेना होगा और फिर जो पत्र भी हमारी निंदा करेगा उसी प्रेस में हड़ताल कराकर उसे बन्द करवा दिया जायेगा। प्रेस और पत्र का सिलसिला एक बार बन्द होने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से जुड़ पाता है।"

"हम सब आपके विचार से सहमत हैं।" सब ने एक स्वर में कहा।

इसके पश्चात् कमला ने सब कॉमरेडों को दिल्ली के हल्कों में इस प्रकार बाँट दिया कि प्रायः सभी प्रेसों तक उनकी पहुंच हो सके। फिर कुछ बाँटने के इश्तहार उन सबको दिये गये और कुछ दीवारों पर चिपकाने के लिए पोस्टर। यह सब कार्यवाही समाप्त होने पर आज़ाद और कमला वहां से बिदा हो गये। बिदा होते समय भी सब कॉमरेडों ने फिर फ़ौजी सैल्यूट दिया।

रमा से भेंट

(२१)

रमेश बाबू ने मंसूरी में एक कोठी किराये पर ले रखी थी ! ऐश के साथ रह रहे थे परन्तु साथ ही साथ अपने 'इन्सान' का उन्हें २४ घंटे ध्यान रहता था। वह रहते मंसूरी में थे परन्तु उसका ध्यान हर समय पड़ा रहता था दिल्ली में। काम की प्रगति-रिपोर्ट जो उनके पास जाती थी उसे देखकर वह अमरनाथ और रशीदा दोनों को ही न जाने कितनी बार शाबाशी दिये बिना नहीं रह सकते थे। प्लाट खरीदने की स्वीकृति उन्होंने अमरनाथ जी को पहिले ही पत्र पर दे दी थी और साथ ही पत्र तथा प्रेस के लिए बिल्डिंग बनवाने की भी।

मंसूरी में रमेश बाबू के काफ़ी परिचित हो चले थे और उनमें सबसे अधिक थीं मिस रमा जो कि पास वाली कोठी में रहती थीं और उनके पिता थे एक बहुत बड़े डाक्टर जिनकी वह इकलौती कन्या थीं। रमा स्वभाव की बड़ी ही नटखट थी और उसे शाँत रहना तो मानो आता ही नहीं था। उसका हर अङ्ग हर समय मटका करता था और चाहे वह इतनी सुन्दर न थी परन्तु बनाव शृंगार में सब को मात करती थी और किसी न किसी प्रकार अपने अन्दर एक ऐसा आकर्षण अवश्य पैदा कर लेती थी कि जिससे वह घुलमिल कर बात करना चाहे वह मना नहीं कर सकता था। यही दशा बेचारे रमेश बाबू की भी थी। रमा देवी से उनकी एक दिन अचानक ही टक्कर हो गई। रमा टेनिस खेल कर आ रही थी अपने रैकिट को इधर उधर घुमाती हुई ज़रा मस्ती के साथ और रमेश बाबू निकल रहे थे अपनी कोठी से। रमा ग़लती से अपनी कोठी में घुसने के बजाय पास वाली रमेश बाबू की कोठी में घुस गई और अकसमात् दोनों की टक्कर हो गई टक्कर होने पर दोनों कुछ पीछे हटे और रमेश बाबू ने क्षमा मांगते हुए कहा— "मेरा दोष केवल इतना ही है कि मैं जल्दी में था और कुछ सोच रहा था। मैंने नहीं देखा कि आप सामने से आ रही हैं।"

"और मेरा दोष केवल इतना है कि मैं अपनी कोठी को भूलकर आपकी कोठी में घुस गई।" रमा ने भी साथ २ कहा।

"यह तो कोई दोष की बात नहीं है क्योंकि पड़ोसी की कोठी में जाना, उनसे मिलना, बातें करना, चाय पीना इत्यादि को मैं दोष नहीं मान सकता। हाँ मेरा दोष अवश्य है। यह आपकी सज्जनता है कि आपने कुछ नहीं कहा। यदि आपके

स्थान पर कोई और देवी होती तो यह कहे बिना न रहती कि क्या भगवान ने आपको देखने के लिए दो आँखें भी नहीं दीं ?"

रमा अपने चश्मे को संभाल रही थी परन्तु वह संभलती भला कैसे उसकी तो एक कमानी टूट चुकी थी।

"ओह आपका चश्मा भी टूट गया। ख़ैर लाइये यह मुझे दे दीजिये और आप यह मेरा धूप का चश्मा लगा लीजिये" कहकर रमेश बाबू ने अपना चश्मा रमा की ओर कर दिया।

"यह मेरे नहीं लगेगा मैं अपना ही ठीक करा लूंगी। आप चिंता न करें और आप तो कहीं बड़ी फुर्ती से जा रहे थे। जाइये ना ! कहीं ऐसा न हो कि आपका वह काम भी रह जाये।" रमा बोली।

रमेश बाबू चलने को ही थे कि रमा ने फिर टोकते हुए कहा "तो फिर वह चाय वाली बात तो पक्की रही ना !" रमा मुस्कुरा रही थी।

"हां संध्या को आप अवश्य पधारिये मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा।" रमेश बाबू ने उत्तर दिया।

उस दिन के पश्चात् फिर आना जाना निरन्तर प्रारम्भ हो गया और आपस के सम्बन्ध भी दिन प्रति दिन घनिष्टतम होने लगे। रमा रमेशबाबू को अपनी तरफ़ खींचना चाहती थी परन्तु रमेशबाबू एक वह चट्टान थे कि जिसने हिलना सीखा ही नहीं था। वह इतना जड़ साबित होगा इसका रमा को स्वप्न में भी ध्यान नहीं था। वह टैनिस खेलने नहीं जाता, होटलों में जाने का उसे शौक़ नहीं, रेस देखना वह बुरा समझता है, यहाँ तक कि ताश खेलने से भी उसे नफ़रत है फिर भला रमा से उसकी कैसे पटे ?

रमेशबाबू करते क्या हैं रमा यह कुछ नहीं समझ पाई। पत्र क्या होता है यह रमा न जानती हो ऐसी बात नहीं थी परन्तु बाप की इकलोती कन्या लाड़ प्यार में पली, स्वतन्त्रता से रही, उसे कैसा पति चाहिये, सुन्दर, युवक उसके हाथों में खेलने वाला, उसकी चापलूसी करने वाला, उसके सौंदर्य का हर समय बखान करने वाला, धन-वान न सही क्यों कि उसकी उसके पास कमी नहीं थी परन्तु यहाँ तो दिल अटक गया एक विचित्र प्रकार के व्यक्ति पर जो न चापलूसी ही कर सकता है और न किसी प्रकार बाहर के जीवन में उसका साथ ही दे सकता है, हां इतना अवश्य है कि उसके साथ बैठकर चाय पीते समय यह अवश्य अनुभव होता है कि वह किसी बड़े आदमी के सथ बैठकर चाय पी रही है और रमेश बाबू के मुख से निकाले हुए शब्दों का तो रमा मूल्याँकन ही नहीं कर पाती थी। रमा का

हृदय उछलने लगता था और ऐसा अनुभव होता था कि मानो उसे उसकी इच्छित निधि प्राप्त हो गई है और वह जीवन में बहुत सुखी है, बहुत।

"आपका स्वभाव बहुत विचित्र है रमेश बाबू"। एक दिन चाय पर बैठकर रमा ने कहा और वह रमेश बाबू के मुंह पर एक तिरछी सी दृष्टि डाल कर मुस्कुरा दी।

"क्यों ?" रमेश बाबू ने संक्षेप में पछा।

"इस लिये कि मैं आज तक प्रयास करने पर भी आपको नहीं समझ पाई।" रमा बोलीं।

"यह मैं नहीं मान सकता रमा देवी ! हाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि शायद आपने सही तौर पर समझने का प्रयास ही नहीं किया। किसी को समझने के लिये यह आवश्यक होता है कि अपने को खोदे। जो व्यक्ति अपनत्व को उसमें खो सकता है वही उसे पहिचान सकता है। तुम पूछोगी कि क्या आपको समझने वाले व्यक्ति इस संसार में हैं, तो मैं कहूँगा कि हाँ हैं मुझे आज तक केवल पाँच व्यक्तियों ने समझा है। उनमें से एक तो परमपिता परमात्मा की गोद में चले गये। वह एक वृद्ध मुसलमान था, दो व्यक्तियों का पता नहीं, यह दोनों मेरे सहपाठी थे और दो व्यक्ति आज मेरे कार्यालय के कार्य को देहली में संभाले हुए हैं।

"आपके कार्यालय को ?" आश्चर्य ने रमा ने पूछा।

"हां मेरा नहीं, एक पत्र का कर्यालय है, उसे स्थापित मैंने किया था 'इन्सान' नाम से इन्सान की भलाई के लिए, परन्तु आज मैं उस कार्यालय को जनता का समझता हूँ। मुझे अपने व्यक्ति को केवल कुछ वस्त्र और खाने पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।" रमेश ने कहा।

"तो यों कहिये कि आपने यह राज़ आजतक मुझसे छुपाये रखा कि 'इन्सान' पत्र और प्रेस के मालिक आप ही हैं। आप बड़े छलिया आदमी मालूम देते हैं।" रमा ने मुह बना कर कहा।

"यदि तुम यह धारणा अपने मन में बना लोगी तो मैं फिर कहता हूँ कि तुम मुझे समझने में भूल करोगी। मेरा कुछ नहीं है मैं किसी भी चीज़ का मालिक वालिक नहीं। हां इतना अवश्य है, कि इसे चलाने वाले मेरे परामर्श से ही सब कार्य करते हैं और इस पत्र में मेरे लेख छपते हैं।" रमेश बाबू बोले।

"आपके लेख छपते हैं ? कितने विचित्र हैं जी आप ? आप तो कहते थे कि मैं पहाड़ पर घूमने आया हुआ हूँ, कोई काम नहीं करता। यह राज़ आपने मुझे

आज तक नहीं बताया कि आप लेखक भी हैं। अब मैं समझ गई कि 'इन्सान' पत्र में 'एक मानव' के नाम से लिखने वाले व्यक्ति आप ही हैं।" रमा ने दृढ़ता पूर्वक कहा और फिर रमा ने केतली उठाकर दूसरी गरम प्याली चाय की बनाई।

रमेश बाबू को 'हाँ' कहनेमें संकोच न हुआ क्योंकि वह अस्वीकार भी नहीं कर सकते थे। रमा यदि यह जान भी गई तो रमेश ने इस बात में कोई हानि नहीं समझी क्यों कि जब कोई व्यक्ति किसी के इतने सम्पर्क में आ जाता है तो उस पर इस प्रकार के भेद छुपे हुए नहीं रह सकते। इस प्रकार भेद अवश्य खुल जाते हैं।

"मैं तुम से छिपाना कुछ नहीं चाहता था रमा! कारण केवल यही रहा कि इन बातों को कहने का कभी संयोग ही नहीं हुआ। तुम जानती ही हो मेरा स्वभाव कि व्यर्थ के लिये बातें करना मुझे अच्छा नहीं लगता। न मैं स्वयं व्यर्थ अधिक बोलता हूँ न किसी अन्य को ऐसा करते देखकर प्रसन्न होता हूँ।" रमेश बाबू ने यह शब्द इतनी गम्भीरता से कहे कि कुछ क्षण को रमा को ऐसा लगा मानो वह एक बहुत ऊँचे स्थान को छूने का प्रयत्न कर रही है और शायद वह उसे कभी जीवन में छू नहीं पायेगी। उसका यह प्रयास दुःसाहस मात्र है इस लिये उसे यह नहीं करना चाहिए परन्तु साथ ही एक दम हृदय में एक हिलोर सी उठी और वह एक क्षण के अन्दर ही उस विचार पर छा गई।

रमा मुस्कुरा रही थी अपनी स्वाभाविक छटा के साथ। रमा की मुस्कान में एक ऐसी अनुपम छटा थी कि जिसका प्रभाव रमेश बाबू पर भी बिना पड़े नहीं रहता था। कभी कभी तो उस मुस्कुराहट के वेग में आकर रमेश बाबू का तमाम शरीर रोमांचित हो उठता था। एक विलक्षण आकर्षण उसे रमा के अन्दर दिखलाई देने लगता था परन्तु साथ ही साथ रमा के अभावों की पूर्ति उन विलक्षण गुणों से नहीं हो पाती थी। जब कभी रमेश बाबू रमा को अपनी साथिन के स्थान पर रख कर देखते तो उनका मन कह उठता था, "नहीं— यह जीवन-संग्राम में पूरी नहीं उतर सकती। यदि यह अनमेल जोड़ा किसी प्रकार की परिस्थितियों में फंसकर बांध भी लिया तो जीवन की नौका किसी भी भँवर में फंसकर डूब जायेगी। ऐसा साथी होने से तो यही क्या बुरा है कि आज स्वतन्त्र तो हैं। न किसी के लेने में न देने में।"

कुछ भी सही चाय का समय अच्छा कट जाता था। रमा चाय बनाकर पिलाती थी और रमेश बाबू बड़े आनन्द के साथ पीते थे। रमा ने अब चाय के

अतिरिक्त और समयों पर भी यहां आना जाना प्रारम्भ कर दिया था। रमेश बाबू के मकान को वह अपना मकान समझने लगी थी और कभी कभी स्वय खड़ी होकर रमेश बाबू के पहाड़ी नौकर से वह कमरों की सफ़ाई और सामान की व्यवस्था भी ठीक करा देती थी। तमाम फ़र्श की सफ़ाई करना, पलंग की चादर बदलवाना, मेज़पोशों को बदलवाना, परदों को ठीक करवाना यह सब कार्य वह अपनी देख-रेख में कराती थी। जब रमेश बाबू लौट कर आते और यह सब कुछ देखते तो उन्हें लगता कि वास्तव में उनके जीवन के किसी अभाव की पूर्ति वहां पर विद्यमान थी।

साफ़ चादर पर लेटकर जब साफ़ पर्दों, साफ़ फ़र्श और साफ़ मेज़पोशों पर रखे हुए गुलदस्तों पर दृष्टि जाती तो मन चाहता कि क्यों न वह इस व्यवस्था करने वाली से एक स्थाई सम्बन्ध करले? इस प्रकार की व्यवस्था पाकर उसका अपना कार्य कितनी उन्नति कर सकेगा? फिर तो उसके पास हर समय केवल लिखने के ही लिये होगा। वह कितना सुन्दर लिख सकेगा? उस व्यवस्था की कल्पना के स्वप्न में पड़ कर कभी कभी रमेश बाबू को नींद आजाती और वह खुलती उसी समय जब रमा आकर कहती, "आज सोते ही रहेंगे आप। यह भी ध्यान नहीं कि आपने आज कुछ वचन दिया था किसी को।" कहते हुए रमा सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ जाती।

"लो! मैं तो सचमुच भूल ही गया था रमा देवी! आप बैठिये मैं अभी आधे घण्टे में तैयार हो जाता हूँ, ज़रा शेव बनाना होगा।" रमेश बाबू ने खड़े होते हुए कहा।

"बैठने आप मुझे कहाँ देंगे? अभी आपको चाय जो पीनी है। मैं तो समझ रही थी कि वहाँ पहुँचूंगी तो चाय तय्यार मिलेगी परन्तु यहाँ बिना अपनी काया को कष्ट दिये कुछ प्राप्ति होने की सम्भावना ही नहीं।" मुस्कुरा कर रमा ने कहा।

"कॉम्यूनिज्म जो आ रहा है। बिना काया को कष्ट दिये अब कुछ नहीं होगा रमा देवी।" कहकर रमेश बाबू ने छोटा शीशा सामने मेज़ पर रखा और सेफ्टी रेज़र को हजामत के लिये तय्यार करने लगे।

रसोई घर की तरफ़ जाती जाती रुक कर सामने वाली कुर्सी पर रमा बैठ गई और बोली, "क्यों जी! ज़रा मुझे आप यह तो समझाइए कि यह कॉम्यूनिज्म क्या बला है?" रमा का मुख बहुत गम्भीर बना हुआ था इस समय और वह

यह प्रकट करना चाहती थी कि मानो वह कॉम्यूनिज्म के विषय में भी नहीं जानती।

"अच्छा बतलायेंगे! और अवश्य बतलायेंगे कि कॉम्यूनिज्म क्या है परन्तु यह समय नहीं है इस बात का। यदि देर करोगी तो चाय रह जायेगी। पहिले पहाड़ी से कह आओ कि वह चाय बना डाले और फिर यदि चलने से पूर्व कुछ समय रहा तो आज कॉम्यूनिज्म पर ही बात चीत कर डालेंगे।" रमेश बाबू बोले।

"बहुत अच्छा!" कहकर रमा रसोई की तरफ़ चली गई और बहुत शीघ्र चाय बनाने का सब प्रबन्ध करके तुरन्त लौट आई। आकर फिर उसी सामने वाली कुर्सी पर बैठकर सामने की मेज़ पर कोहनियां टेक दीं और हथेलियों पर मुंह रख कर बोली, "बतलाइए! अब तो आपको बतलाना ही होगा कि कॉम्यूनिज्म क्या है?"

"अवश्य!" रमेश बाबू ने कहा, "परन्तु तनिक मुझे हजामत तो बना लेने दो। क्यों कि कॉम्यूनिज्म विद्रोह और क्रांति की भावनाएं कूट कूट कर भरी हैं। कहीं यह बातें सुन कर मेरे उस्तरे में कॉम्यूनिज्म का असर हो गया तो बस मेरे गालों की खैर नहीं।" कहकर रमेश बाबू मुस्कुरा दिये और रमा बोली "आप तो अब उपहास करने लगे हैं।"

"उपहास नहीं रमा! मैं सत्य कह रहा हूँ। कॉम्यूनिज्म का मूल सिद्धांत है विद्रोह! यह लोग विद्रोह द्वारा देश को उभारना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि यह रास्ता ग़लत है। हमें गान्धी जी ने शाँति का मार्ग सिखलाया है। धन एकत्रित हो रहा है सरकार पर न सही, पूंजीपतियों पर सही परन्तु वह अपने ही देश में। पूंजीपति भी आख़िर उस धन का क्या करेंगे? किसी व्यापार में लगायेंगे, मिल में लगायेंगे इत्यादि। यह सब सरकार के नियन्त्रण में होगा। जब यह सरकार के नियन्त्रण में नहीं होगा तब सरकार को अधिकार में होगा कि वह उसे पूर्ण रूप से अपने अधिकार में करले और पूंजीपति को उसका मूल्य कुछ दे अथवा न दे।" रमेश बाबू बोले।

"मैं क्या पूछ रही थी और आपने क्या बतलाना प्रारम्भ कर दिया? मैं कॉम्यूनिज्म क्या है यह पूछ रही थी आप बतलाने लगे कि आप भारत की उन्नति के लिए सरकार का कौनसा मार्ग उचित समझते हैं?" मुस्कुराते हुए रमा ने कहा।

रमेश बाबू ने आज समझा कि रमा का राजनीतिक दृष्टिकोण कितना स्पष्ट तथा विस्तृत है? वह रमा को अभी तक केवल एक मनचली छैल छबीली, तहज़ीब-

याफ्ता अच्छे घराने की एक योग्य कन्या समझते थे। उसका मस्तिष्क राजनीति-में भी इतना सुलझा हुआ है यह देख कर रमेश बाबू को विस्मय के साथ साथ हर्ष भी हुआ। इतने में रमा सामने से पहाड़ी नौकर को चाय लाता हुआ देखकर बोली, "अच्छा अब आप जल्दी से शेव कर लीजिये क्यों कि चाय आ गई और समय भी अधिक नहीं रहा।"

रमेश बाबू ने शेव समाप्त की और फिर इसके पश्चात् दोनों ने चाय पी।

"लो यह बिस्कुट खाओ रमा! मैं कल संध्या को लेता आया था।" रमेश बाबू ने खड़े होकर आलमारी से बिस्कुटों का डिब्बा निकालते हुए कहा।

"तो यों कहिये कि यह बिस्कुट आप मेरे लिए लाये हैं क्यों मुझे ख़ाली चाय पीना रुचिकर नहीं था।" रमा ने बिस्कुट दाँतों में दबाने से पूर्व कहा।

"आप यदि यह भी समझें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी बशर्ते कि आप केवल अपने ही लिये समझ कर इस डिब्बे को उठा कर पीछे की तरफ़ न रख दें और मेरी प्लेट खाली की खाली ही रह जाये।" मुस्कराकर रमेश बाबू ने कहा। रमा बड़े ज़ोर से हंस पड़ी और डब्बा सामने डालते हुआ कहा "ऐसा भला कहीं हो सकता है। आप पहिले और मैं पीछे।"

"नहीं पहिले आप।" रमेश बाबू बोले।

आख़िर पहिले रमा को ही खाना पड़ा। रमेश बाबू को आज की चाय में और दिनों की अपेक्षा बहुत अधिक आनंद आया। वह बराबर बिस्कुट खा-खाकर चाय पीते जा रहे थे और रमा रमेश बाबू के हृदय की गति को खूब सावधानी से पढ़ती जा रही थी। रमा ने देखा कि रमेश बाबू बराबर बिना चीनी की ही चाय पीते जा रहे थे और यह अनुभव भी नहीं कर रहे थे कि उसमें चीनी नहीं पड़ी थी।

रमा को अपनी सफलता पर गर्व हुआ और उसके नयनों में पहिले से भी चार गुनी मादगता झलक आई। हृदय में एक थिरकन होने लगी और तमाम वदन रोमांचित हो उठा और मस्तक पर छोटी-छोटी पसीने की बूंदें झलकने लगीं। एकदम होंटों के पास पहुंची हुई रमेश बाबू की प्याली को रोक कर बोली, "बाप रे बाप! आप तो आज फीकी ही चाय पीते जा रहे हैं।" और प्याली हाथ से ले ली।

"फीकी?" आश्चर्य से रमेश बा ू ने कहा, "परन्तु मुझे तो यह फीकी नहीं लग रही।"

"वह नहीं लग सकती थी रमेश बाबू ! जीवन का मिठास प्रत्येक वस्तु को मीठा बना देता है।" कहते हुए रमा ने प्याली में चीनी मिला दी और अपने हाथ से रमेश बाबू के होठों पर लगा कर कहा, "यह लीजिये अब पीजिये ! अब इसमें मीठा मिल गया।"

यह सब कुछ एक जादू से समान हुआ, क्या हुआ, इसे पूरी तरह शायद दोनों ही नहीं समझ पाये परन्तु कुछ हुआ अवश्य ऐसा कि जैसा जीवन में पहिले कभी नहीं हुआ था, यह दोनों ने ही अनुभव किया। चाय के पश्चात् दोनों व्यक्ति बाहर घूमने के लिये निकल गये।

(२२)

शांता का जीवन कुछ दिन से बहुत फीका सा हो गया था अमरनाथ भय्या अपने मकान पर आते रोज़ थे परन्तु भाग दौड़ के साथ। उनका घर पर बहुत ही कम ठहरना होता था और कभी वह अब शाँता के कहने पर भी चाय पीने के लिये नहीं रुकते थे। दफ्तर के काम का बहाना उनके हास इतना ज़बरदस्त था कि इसके सामने शांता को भी चुप रह जाना पड़ता था और शांता को यह तो पता था ही कि रमेश बाबू पत्र के संचालक आज कल मंसूरी गये हुए हैं, इसलिये हो सकता है कि अमरनाथ जी को बिल्कुल भी अवकाश न मिलता हो।

इधर कमला जब से फ़रार हुई है तब से एक दो बार शांता के पास आई अवश्य है परन्तु यों ही चोरी छुपके दो चार मिनट के लिये कभी-कभी चाय पीने के बहाने। शांता कमला को प्यार करती है और चाहती है बहुत, यह रहस्य कमला पर भी छुपा हुआ नहीं था। यही कारण था कि कमला उसका विश्वास करके उसके पास चली आती थी। अमरनाथ बाबू का वह अब विश्वास नहीं करती और साथ ही साथ उन्हें अपना पोलिटिकल एनीमी (राज नतिक शत्रु) भी मानने लगी है। अमरनाथ जी का पत्र कमला की पार्टी की कार्य-वाहियों की निंदा करे और कमला उसे सहनकर सके यह नहीं हो सकता था कमला इस पत्र को समाप्त कर देगी।

शांता चाय पीने के लिये बैठी ही थी कि सामने से कमला आती दिखलाई दी। कमला अन्दर घुसी और धीरे से बोली, "बहिन मेरे पीछे पुलिस है।" वह कुछ घबरा रही थी।

"घबराओ नहीं और सामने वाले कमरे में जाकर दूसरे वस्त्र बदल लो फिर जाकर रसोई में चाय बनाने लगो। बस ! वहीं रहना जब तक यह लोग यहां आकर चले न जायें।" समय की गम्भीरता को समझते हुए शांता ने कहा।

"बहुत अच्छा।" कहकर कमला अन्दर चली गई और शांता ने ठाट के साथ बैठ कर चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। अभी दो चार घूंट ही भरे थे कि इतने में पुलिस की टोली मकान के सामने आकर खड़ी हो गई और इधर-उधर को झांक कर उनमें से एक जो कि सबइन्सपैक्टर मालूम देता था, आगे बढ़कर शांता के सामने तक आ गया। शांता उसे देख कर खड़ी हो गई और विनम्र भाव से बोली, "कहिये! क्या मुझसे कोई काम है आपको? मेरा नाम शांता है साथ ही बंगाली मार्के में जो कन्या-विद्यालय है उसकी मैं मुख्याध्यापिका हूँ।"

"जी नहीं!" कुछ लज्जित सा होकर सब इन्सपैक्टर बोला। "हम लोग एक लड़की की खोज में थे। वह कॉम्यूनिस्ट लड़की है 'कमला'। उसने शहर भर में बड़ा उधम मचाया हुआ है। हमें सूचना मिली है कि वह इधर को आई है। आपने तो यहां पर सामने से जाती हुई किसी लड़की को नहीं देखा?"

"नहीं, मैं तो यहां पर कितनी ही देर से बैठी हूँ। यहां पर तो मैंने किसी को आते जाते नहीं देखा। बैठिये! चाय पीजिये।" शांता बोली।

"क्षमा कीजिये कष्ट के लिये। इस समय मुझे ज़रा जल्दी है खोज की। ऐसा न हो कि कहीं वह इधर-उधर से होकर नौ-दो ग्यारह न हो जाये। इन कॉम्यूनिस्टों के मारे आज कल नाक में दम है! इनका हर बच्चा बिच्छू के मानिन्द होता है बस यों समझिये हेडमिस्ट्रेस साहिबा कि इनके काटे का इलाज नहीं!"

"आप बहुत परेशान मालूम देते हैं इन कॉम्यूनिस्टों से!" मुस्कुरा कर शांता ने पूछा!

"मैं नहीं, आज भारतवर्ष का हर व्यक्ति इनसे परेशान है! यह लोग आतंक फैलाकर अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते हैं परन्तु यह नहीं समझते कि आतंक के बल पर तो ब्रिटिश साम्रज्यवाद भी नहीं ठहर सका जिसकी जड़ें पाताल में उतर चुकी थीं। फिर नई आने वाली सत्ता भला आतङ्क के बल पर किस प्रकार जनता की सहानुभूति प्राप्त कर सकती है?" भारतवर्ष का आज का समाज इन कॉम्यूनिस्टों को सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता। यह वही ग़द्दार लोग हैं जिन्हों ने सन् बयालीस के आंदोलन में कांग्रेसी सत्याग्रहियों को चुन-चुन कर पकड़वा दिया था विदेशियों द्वारा। आज यह देश का हित करने चले हैं मानव समाज और मज़दूर आन्दोलनों की दुहाई देकर। यह हिन्दुस्तान का सर्वनाश करना चाहते हैं। यह चाहते हैं कि भारत भी इन का पिछलग्गू बन कर स्टालिन के हाथों की एक कठपुतली मात्र बन जाये, परन्तु यह असम्भव है, नहीं होगा, नहीं होगा।"

यह सब सुनकर शांता मौन रह गई। सन् ४२ का आन्दोलन याद आते ही एक बार मन में आया कि वह दारोग़ा जी से कहे कि चलिये यह है 'कमला' इसे आप पकड़ लीजिये और वह दण्ड दिलवाईये जो देश द्रोहियों को मिलना चाहिये, परन्तु साथ ही ध्यान आया कि कमला तो स्वयं सन् ४२ के सत्याग्रह में दो वर्ष के लिये जेल गई थी। उस समय तो वह कॉम्यूनिस्ट नहीं थी। उसके विचारों में य जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है वह सब बाद में आकर हुआ है। और इस समस्त परिवर्तन का दोषी वह मानती थी अमरनाथ जी को। यदि अमरनाथ जी कमला के प्रति इतनी उदसीनता प्रकट न करते तो कोई कारण नहीं था कि आज तक कमला और अमरनाथ जी का छोटा सा सुन्दर ग्रहस्थ न बन गया होता।

"आपका कथन और आपकी आकांक्षा भगवान् करे सफल हों।" नेत्रों में आंसू भरकर शान्ता ने कहा, "सन् ४२ और भारत विभाजन में मेरा सर्वस्व लुट गया भय्या! मैं तो आज कुछ भी नहीं विचार सकती। राजनीति पर जब विचार करती हूँ तो मेरा देवता मेरी आंखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है। कितना महान्, कितना अचंचल, कितन बलवान—कोई शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकती, कोई आपत्ति उसे हिला नहीं सकती, कोई महानता उसे नीचा नहीं दिखा सकती। आप खोजिये भय्या! भगवान् करे आप सफल हों और आप अवश्य सफल होंगे।"

यह शान्ता ने इस नाटकीय ढङ्ग से कहा कि दारोग़ा जी बेचारे पीछे लौट लिये और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि यहाँ पर कमला हो ही नहीं सकती। पुलिस वालों की टोली मोहल्ले भर की खोज करके वहां से चली गई और कमला का पता न लगा सकी!

"लो कमला! अब सब लोग गये तुम चाय पीलो।" शान्ता ने कहा।

"नहीं बहिन! मेरा एपाइन्ट मेन्ट (निश्चित् समय) मिस हो जायगा, मैं नहीं रुक सकती, मैंने उन्हें समय दिया है।" कमला ने बड़े वेग के साथ घड़ी देखते हुए कहा।

"उन्हें किन्हें कमला!" आश्चर्य से शाँता ने पूछा।

"आप नहीं जानती बहिन! उन्हें। उनका नाम आज़ाद है। शायद पत्रों में कहीं आपने पढ़ लिया हो।" सरल भाव से कमला ने उत्तर दिया।

"आज़ाद!" आश्चर्य से शान्ता ने कहा, "क्या मैं आज़ाद के विषय में तुमसे कुछ पूछ सकती हूँ कमला बहिन?"

"हां हां ! क्यों नहीं ? मैं तुम पर विश्वास करती हूँ शान्ता बहिन ! और आपकी गम्भीरता से भी अपरचित नहीं हूँ कि आपके पास गई हुई बात एक कुए में गिरी हुई बात के समान होती है।" कमला ने कहा।

"विश्वास रखो कमला ! यदि फांसी पर भी लटकना पड़ा तो भी तुम्हारे साथ विश्वास घात नहीं होगा।" शांता बोली।

"यह सब कहने की आवश्यकता नहीं, परन्तु ज़रा शीघ्रता करो बहिन ! नहीं तो मेरा सब करा धरा मिट्टी में मिल जायेगा और यदि आज भेंट न हुई तो आने वाले तीन दिन तक कहीं पर भी भेंट न हो सकेगी। सब प्रोग्राम ख़राब हो जायेंगे और बहुत बड़ा कार्य ख़राब हो जायेगा !" कमला ने कहा।

"यह आज़ाद बाबू कहां के रहने वाले हैं ?" शांता ने पूछा।

"यह विस्तार के साथ मैंने उनसे कभी नहीं पूछा; हां, इतना अवश्य जानती हूँ कि यह लाहौर के रहने वाले हैं और पाकिस्तान सरकार की ज़मानत पर से भाग कर यहां आये हैं। वहा इनपर तीन मुसलमानों को मारकर दो हिन्दू लड़कियों को बचाने और फिर भारत भेज देने का जुर्म लगाया गया था। बस अब मैं चली !" कहकर कमला चली गई।

शान्ता का दिल धड़कने लगा। वह समझ गई कि यह आज़ाद और कोई नहीं उसकी इज्ज़त और प्राण बचाने वाला आज़ाद उसका भय्या है। मन में एक बार आया कि वह कमला को ज़ोर से पुकार करकहे कि ठहरो मैं भी चलती हूँ तुम्हारे साथ, मुझे भी आज़ाद भय्या से मिलना है परन्तु वह फिर कुछ सहम गई। हो सकता है कि शायद वह और कोई व्यक्ति हो। कमला फिर आयेगी। कमला से पूरी तरह निश्चय कर लेने के पश्चात् ही मिलना उचित है, उससे पूर्व नहीं।

शान्ता को उस दिन रात भर चैन नहीं आई। आज़ाद भय्या के विचारों ने उसकी नींद हराम करदी। आज़ाद कब यहाँ आया, किस प्रकार आया, कमला से आख़िर उसकी किस प्रकार भेंट हुई, वह कॉम्यूनिस्ट क्यों बना और कब बना ? किन परिस्थितियों ने उन्हें कॉम्यूनिस्ट बनने पर मजबूर कर दिया ? वह सिपाही था उनका। सिपाही के लिये काम चाहिए, सच्चा सिपाही ख़ाली नहीं बैठ सकता। कमला का नेतृत्व पाकर ही वह कॉम्यूनिस्ट बना होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह बुरा हुआ परन्तु अब क्या हो सकता है ? शान्ता इसमें क्या कर सकती है ? उसे परिस्थितयों के पीछे पीछे जाना होगा, परिस्थितियाँ उसके हाथ की वस्तु नहीं।

आज़ाद देहली में है, इस विचार ने शान्ता के चित्त की ऐसी अवस्था बनादी कि आज वह और दिन की अपेक्षा कुछ अधिक प्रसन्न दिखलाई दे रही थी। आज अमरनाथ जी के पता नहीं क्या जी में आया कि सुबह के समय जब रशीदा के साथ घूमकर लौटे तो शांता के घर पर जा धमके और बोले, "शांता बहन! आज हमने कार्यालय की छुट्टी कर दी और सोचा कि बहुत दिन हो गये हैं बहन के यहां चाय पिये, आज वहीं पर जाकर चाय पी जायेगी।"

शांता ने मुस्कुरा कर दोनों का स्वागत किया और आदर भाव से दोनों को बिठलाते हुए कहा, "भय्या अमरनाथ जी! बहन के हाथ की बनाई हुई चाय जीवन के एक निश्चित् काल तक ही मीठी लगती है।" और इतना कहकर वह रशीदा की तरफ़ मुंह करके मुस्कुराकर बोली, "क्या राय है आपकी?"

रशीदा कुछ क्षण तो शांत रही परन्तु तुरन्त ही अपने को सम्हाल कर बोली, "ऐसा न कहो बहिन! बहिन की चाय का मिठास स्त्री की चाय में नहीं आ सकता। आप कहोगी क्यों? तो मैं उसका कारण बतलाये देती हूँ कि बहिन की चाय निस्वार्थ है और पत्नी की स्वार्थपूर्ण।" रशीदा बोली।

शान्ता चुप थी। इतना गम्भीर उत्तर पाने की उसे आशा नहीं थी परन्तु यह उत्तर पाकर उसने रशीदा के चातुर्य और स्पष्टवादिता की मन ही मन सराहना की। नारी का यह त्यागमय रूप शांता ने देखा, कितना स्पष्ट, कितना भोला, परन्तु देखने में समझने में नहीं? समझने में कितना तर्क पूर्ण और गूढ़ था।

रशीदा को पहिले भी एक बार अपने स्कूल के वार्षिकोत्सव पर शान्ता ने देखा था परन्तु इतने निकट से देखने का अवकाश उसे अभी तक नहीं मिल पाया था। रशीदा ने फिर कहना प्रारम्भ किया "शान्ता बहिन! मैं आज आपके पास एक गुत्थी सुलझाने के लिये इन्हें लेकर आई हूँ। यह इन्होंने झूठ बोला है कि हम लोग यहां पर केवल चाय पीने के लिये ही आये हैं।"

इतने स्पष्ट शब्दों में रशीदा क्या कहना चाहती है शांता न समझ सकी। रशीदा ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "मैं यह जानकर और यह विश्वास करके यहां पर आई हूँ कि इन्हें आपसे अधिक स्वस्थ राय इस संसार में मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता। मैंने जीवन को हमेशा तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया है और हमेशा वह पाने की इच्छा की है जिसके योग्य मैंने अपने को समझा है। यदि अपनी शक्ति से बहुत बड़ी वस्तु मैं कोई भाग्यवश अकस्मात पा भी जाऊं तो उसे सुरक्षित रखने में मैं सर्वदा असमर्थ रही हूँ। जीवन में यही नियम पालन करने के लिये मैं आपके अमरनाथ भय्या को कहती हूँ।

आप ही भला राय दीजिए कि क्या मेरी राय अनुचित है ?" कहकर रशीदा चुप हो गई और उसने अपनी बात के समर्थन के लिए शांता के मुख पर एक भेद पूर्ण दृष्टि से ताका।

शाँता को यह समझने में तो देर न लगी कि अवश्य कुछ दाल में काला है परन्तु वह कहां तक है, उसमें क्या रुकावट है और उसे इस समय क्या उत्तर देना चाहिये यह सोचने की बात थी इसीलिए उसने गम्भीरता पूर्वक कहा— "तुम्हारी बात का उत्तर दो शब्दों में नहीं दिया जा सकता रशीदा ! क्योंकि जहां तक मैं समझी हूँ इसका सम्बन्ध दो जीवनों से है और दो जीवनों का समन्वय कोई खिलवाड़ नहीं है और न ही उसे खिलवाड़ के रूप से लेना भी चाहिये। यह एक गम्भीर विषय है और इस पर गम्भीरता पूर्वक ही विचार होना चाहिये।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ शांता बहिन ! परन्तु इनका भेजा इतना ठोस है कि उसमें कुछ समाता ही नहीं। मैं इनसे कहती हूँ कि राजनीति पर लेख लिखना और बात है और जीवन की कठिन समस्याओं का हल निकालना और बात।" कहकर रशीदा मुस्कुरा दी और बोली, "अच्छा अब आप चाय की तो चिन्ता कीजिये जिसके लिए हम इतनी दूर से चलकर आये हैं, उसे तो आप गोल माल में ही डाले रही हैं।"

रशीदा की बात सुनकर शांता मुस्कुरा दी और बोली, "आप चिंता न करें। चाय तैयार हो रही है। उसका मुझे पूरी तरह से ध्यान है।"

बाबू अमरनाथ जी जो अभी तक चुपचाप सब कुछ सुन रहे थे अब और अधिक मौन न रह सके और एक अजीब भाव-तरंग में कहने लगे, "शांता ! तू जितनी भोली है यह रशीदा उससे भी अधिक भोली है। तुम लोग केवल अपने ही दृष्टिकोण के पहिये में संसार को घुमाना चाहती हो परन्तु तुम्हें मालूम ही नहीं कि संसार क्या है ? घनिष्ट से घनिष्टतम प्रेम किस प्रकार दुर्भाग्यवश द्वेश में बदल सकता है ? हृदय में स्वाभाविक रूप से उमड़ने वाला स्नेह और ममत्व किस प्रकार प्राणों का ग्राहक भी बन जाता है ? इन कमज़ोरियों से ऊपर रहने वाला व्यक्ति मानव नहीं हो सकता, वह देवता है।" अमरनाथ जी ने बहुत गम्भीरता के साथ कहा।

इस समय शांता तथा रशीदा दोनों अमरनाथजी का मुँह ताक रही थीं। यह कहकर वह क्षण भर के लिए मौन हो गये।

रशीदा अपने विचारों को न रोक सकी। वह अब अमरनाथ जी के भावों को समझ चुकी थी और समझ गई थी अमरनाथ जी के धर्मसंकट को भी।

कमला को अमरनाथ जी के दिल से निकाल फेंकना उसके बांयें हाथ का काम था परन्तु दूसरा राज़ जो उसे आज तक ज्ञात नहीं हो पाया था और जिसे मालूम करने का वह हृदय से प्रयत्न कर रही थी आज अचानक ज्ञात हो गया। वह गम्भीरता पूर्वक बोली, "तो सुनिये अमरनाथ जी! मेरे भय्या भी मानव नहीं वही देवता है जिन्हें आप आज इतने दिन पास रखकर भी नहीं पहिचान पाये। मैं समझती हूँ कि अब आपके मस्तिष्क का भ्रम दूर हो गया होगा।"

मानव नहीं देवता है—कौन—रमेश बाबू—'इन्सान' के संचालक—आख़िर यह है कौन व्यक्ति—शांता का मस्तिष्क चकराने लगा। वह विचार नहीं सकी कि इतने दिन पश्चात् सब कुछ क्या होने जा रहा है? आज़ाद का का भी कुछ पता चल रहा है और रमेश बाबू क्या यह वही रमेश बाबू हैं? यदि वही हैं तो सचमुच ही अमरनाथजी उनकी तारीफ़ सत्य किया करते थे, अपने अनुभवों का स्पष्टीकरण करते थे। शांता मन के भावों को मन में ही घोटे चुप-चाप अर्द्ध-निद्रित सी अवस्था में यह सब सुन रही थी।

अमरनाथजी भी कोई साधारण मस्तिष्क के आदमी नहीं। उनके साथ बात-चीत करने के लिए भी कुछ भेजा चाहिये, यह शांता जानती थी। शांता यह पूर्ण रूप से देख चुकी थी कि अमरनाथ जी पर रशीदा का पूर्ण अधिकार हो चुका है। उस अधिकार का वह जोवन में कुप्रयोग करेगी ऐसा भी लड़की के हावभावों से प्रतीत नहीं होता परन्तु इतना अवश्य है कि इतने भोले व्यक्ति की गृहस्थी को चलाने के लिए इतनी ही योग्य स्त्री की आवश्यकता भी है। शांता को यह जोड़ा बहुत पसन्द आया और उसने मन ही मन दोनों को आशीर्वाद दिया। दोनों की आपस की बातों में आज शांता को बड़ा मज़ा आ रहा था और वह स्नेह भरे शब्दों में पूछ उठी, "तो बहिन! तुम अपने भय्या का इतना आदर करती हो?"

"अवश्य! हर बहन को करना भी चाहिये शांता बहिन! मैं उनसे डरती भी बहुत हूँ। वह मसूरी में बैठे हैं और मेरा डर के मारे यहां पेशाब निकलता है। सच कहती हूँ कि मुझे हर समय उनका डर लगा रहता है परन्तु साथ ही साथ यह भी जानती हूँ कि मेरे किस कार्य से भय्या प्रसन्न होंगे और किस कार्य से अप्रसन्न?" रशीदा गम्भीर मुद्रा बनाकर बोली।

चाय आ गई और तीनों ने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। अमरनाथ जी की आदत मज़ाक की बिलकुल नहीं थी परन्तु शांता के बीच में फंसकर उन्हें भी कुछ न कुछ उत्तर अवश्य देना होता था। रशीदा ने मसखरेपन में कहा,

"शांता बहिन! इनकी एक वो हैं मिस कमला, जिन पर यह दिलोजान से लट्टू हैं, ऐसा यह कहते हैं।"

"मैंने तुम से कब कहा था रशीदा?" बीच में बात काटकर अमरनाथ जी बोल पड़े।

"मैं दूसरा सवाल करती हूँ कि आपको बात काटकर बीच में बोलने का अधिकार किसने दिया?" रशीदा बोली।

अमरनाथ जी बेचारे चुप हो गए और चुपचाप सुनने लगे। रशीदा कहती गई, "जी, तो मैं कह रही थी कि ये उन पर दिलोजान से लट्टू हैं और उधर उनका प्रेम चल रहा है किसी आज़ाद बाबू के साथ। देखिये तो सही यह कैसा झमेला है कि यह उधर चल रहे हैं और मैं यह सब जान-बूझकर भी इनकी ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रही हूँ—जीवन की देखिये कैसी विडम्बना है? मैं इसीलिये कहा करती हूँ कि यह जीवन एक तमाशा है।"

"यह सब ग़लत कह रही है शांता बहिन! शांता बहिन जानती हैं कि मेरा रुझान कमला की ओर कितना है?" अमरनाथ जी ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

शांता अमरनाथ जी की बात का समर्थन करते हुए बोली, "यह सत्य भी था एक दिन रशीदा बहिन! परन्तु समय ने दोनों की विचारधाराओं में आकाश पाताल का अन्तर कर दिया। एक दूसरे का एक दूसरे के प्रति जो आकर्षण था वह खिंचाव में परिवर्तित हो गया और मुझे भय है कि कहीं यह भविष्य में वैमनस्य में न बदल जाये।"

"यह आपने क्या कह दिया शांता बहिन? मैं तो किसी से भी संसार में वैर नहीं करना चाहता और फिर वह भी कमला से जिसने एक समय मेरे हृदय पर एकछत्र राज्य किया है। मैं इस सत्य को नहीं छुपा सकता, मैं भूत को नहीं भुला सकता और भविष्य के विषय में मैं जानता नहीं, उसने अपनारास्ता बदल दिया। वह रास्ता मुझे पसन्द नहीं है। मैं अपना रास्ता नहीं बदल सकता, प्राण दे सकता हूँ। मुझे साथी चाहिये, जो जीवन में मुझे सहयोग दे, मुझ पर राज्य करे क्योंकि शासित होने में जो स्वतन्त्रता होती है वह शासक बनकर कोई नहीं पा सकता, परन्तु मैं मार्ग बदलने को उद्यत नहीं।

"इसीलिए रशीदा! मैंने जीवन का साथी तुम्हें चुना है। रमेश बाबू के लिए जो भावना मेरे हृदय में थी वह तुम आज मेरी कमज़ोरी भी मान सकती हो, परन्तु उसमें कोई दुर्भावना नहीं थी, थी सभी शुभ भावनायें।" अमरनाथ जी स्पष्टता और गम्भीरता से बोले।

"यह मैं जानती हूँ, इसीलिए मुझे इस रहस्य का ज्ञान होने पर भी किसी प्रकार का खेद नहीं हुआ। मैंने समझ लिया कि यह मानव की साधारण कमज़ोरी है जो हर व्यक्ति में हो सकती है।" रशीदा बोली।

आज जैसी स्पष्ट बातें रशीदा और अमरनाथ जी की पहिले कभी नहीं हुई थीं। आज शांता के सम्मुख ये बातें इतने निखरे रूप में सामने आईं कि शांता को भी इस अनमोल जोड़ी के सम्पूर्ण होने में अपनी अनुमति देनी पड़ी। परन्तु साथ ही उसने रशीदा से इतना अवश्य कह दिया कि "सब कुछ करने से पूर्व आपको अपने भाई साहेब की अनुमति लेनी आवश्यक है।"

इसके लिए दोनों ने सिर झुका लिया और इस प्रकार चाय पीकर आज यह दोनों शांता के मकान से बिदा हुए। दोनों बहुत प्रफुल्लित थे और साथ ही शांता बहिन भी। उसका हृदय भी स्नेह से परिपूर्ण होकर पुलकायमान हो रहा था और उसके हृदय की आनन्दमय लहरियां मुखमण्डल पर आकर चमक उठी थीं। प्रसन्नता के डोरे उसकी आंखों की पुतलियों में खिंच गए थे।

आज संध्या का खाना शांता ने बहुत प्रसन्नता पूर्वक खाया? उसे ऐसा लगा मानो उसका जीवन प्रभात फिर से लौट रहा है। उसे आज रमेश बाबू का ध्यान रह-रह कर आ रहा था और जब से उसने रशीदा के मुख से उनका बखान सुना था उस समय से तो उसका मन यह कहने लगा था कि हो न हो यह वही मेरे देवता हैं। उनके अतिरिक्त कौन ऐसे स्वभाव का हो सकता है?"

(२३)

"यारो ज़िन्दगी का मज़ा तो बिलकुल ही जाता रहा।" करमसिंह ने सिर खुजलाते हुए उजागरमल से कहा।

"यही बात तो यार मैं भीकहना चाहता था। हम लोग बड़े चालाक और दुनियादार बनते थे। हम से तो वह अमरनाथ ही चलता पुर्ज़ा निकला, देखा कैसी नफ़ीरी सी दबाई है उसने। मेरा यार औरत के मामले में बड़ा ही भाग्यशाली है! पता नहीं भगवान ने उसके शरीर में कैसा शहद लगाकर भेजा है कि एक न एक नवेली हर समय मुहाल की मक्खी की तरह चिपटी ही रहती है उससे। कमला का हाथ छोड़ा तो उस बुद्धू पत्रकार की छोकरी पर जाकर कब्ज़ा जमा लिया।" उजागरमल जी बोले।

"मैं कहता हूँ यार वह है बड़ा घाग है इस मुआमले में। 'इन्सान' कार्यालय का तो वह मालिक बन बैठा है मालिक।" करमसिंह ने कहा

"यह कैसे भला ?" उजागरमल जी ने आश्चर्य से पूछा।

"यह कैसे क्या ? मैंने सुना है कि इस कार्यालय में जितना भी रुपया लगा हुआ है वह सब उसी छोकरी का है जिसपर अमरनाथ जी ने डोरे डाल दिये हैं। वह बुद्ध पत्रकार महाशय तो योंही हैं। योंही एक दिन टापते ही रह जायंगे, टापते तुम लिख लो आज की मेरी इस बात को।" दावे के साथ छाती में हाथ मारकर करमसिंह ने कहा।

"तब तो अमरनाथ बड़े मज़े में रहा और मैंने सुना है कि रमेश बाबू आज कल यहां हैं भी नहीं। वह तो अपना सब कार्य भार इन्हीं को सौंपकर मंसूरी हवा खाने चले गये हैं। अब अमरनाथ भी उन महाशय को ऐसी हवा खिलायेगा कि ज़िन्दगी भर हवा ही खायेगा बेचारा।" रमेश बाबू के प्रति कुछ सहानुभूति प्रकट करते हुए उजागरमल जी ने कहा।

"ऐसे ही तो होते हैं काठ के उल्लू। भाई औरत का क्या यकीन। साली ढुलमुल यकीन चीज़ है। जब तक पहलू में रहे अपनी है, जहां पहलू से निकली कि बस पराई हुई। फिर उसे कोई नहीं बचा सकता। साक्षात् ब्रह्मा भी नहीं रोक सकता।" करमसिंह बोला।

"लेकिन यार अमरनाथ को तो हम ऐसा नहीं समझते थे कि जिस थाली में खायेगा उसी में छेद करेगा। यदि इसने ऐसा किया है तो कोरा विश्वासघात किया है।" उजागरमल जी ने खेद प्रकट करते हुए कहा।

"तुम कहते हो—यदि उसने ऐसा किया—मैं कहता हूँ कि यार वह तो कर गुज़रा। वह तो बड़ा ही सच्चा दाव लगाने वाला खिलाड़ी है। तुम देखते ही रह जाओ और उसकी गोट पार बोले। उसकी शतरंज की चालों को समझना बड़ा कठिन है उजागर भय्या! तुमने तो कमला के मामले में सब कुछ देख ही लिया है। मैं कहता हूँ कि क्या हाथ पल्ले पड़ा यार लोगों के ? यानी के कभी प्यार की नज़रों से बातें भी नहीं करने दीं उस कम्बख़्त के बच्चे ने। बड़ा ही घुन्ना आदमी है और आजकल तो वह हम लोगों से मिलना भी अपना अपमान समझता है, अपमान क्या फ़ुर्सत ही नहीं होती उसे उस छोकरी के साथ इधर-उधर की बातें हांकने से।" करमसिंह बोला

"मज़ा ही मज़ा है यार उसका। एक पहलू में कमला है और दूसरे में वह नई छोकरी। यह सब भी क़िस्मत वालों को ही नसीब होता है। हम उस पर क्या नाराज़गी दिखलायें जब हमारी क़िस्मत में ही वह मज़ा नहीं है। करमसिंह जी हमारी तो शक्ल कुछ ऐसी बेडौल हो गई है कि कोई छोकरी हाथ ही नहीं रखने

देती और तुम्हारे वेषभूषा के जंजाल से डर जाती हैं। मैं कहता हूँ कि अगर तुम बाक़ायदा बनठन कर रहो तो तुम्हें तुम्हारे पत्र के लिए विज्ञापन भी अधिक मिल सकता है और यह छोकरियाँ,यह तो न जाने कितनी पट सकतीं हैं। मैं सच कहता हूँ और तुम्हीं से पूछता हूँ कि क्या अमरनाथ जी में कुछ सुरख़ाब के पर लगे हुए हैं या वह तुम से कुछ अधिक सुन्दर है ? यह आजकल की छोकरियाँ बस टीप टाप पर ध्यान देती हैं। यह नहीं देखतीं कि यह अन्दर से तो खोखला नहीं है, तुम देख ही रहे हो कि मुझ जैसे ठोस आदमी को एक मामूली सी छोकरी मिलनी असम्भव हो रही है। यदि मेरा शरीर भी इस बुरी तरह तन्दुरुस्त न हो गया होता तो क्या तुम समझते हो कि मैं इतने दिन तक यों ही खाली फिरता रहता। लेकिन भाई मुकद्दर ! क्या करें ? उसके सामने तो किसी की कुछ नहीं चलती।" एक आह भर कर उजागरमल जी फिर बोले—

"लाख करे इन्सान तो क्या होता है ?
होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है।"

दोनों की इस प्रकार गप्पें लड़ रही थीं कि सामने से दोनों को अमरनाथ जी आते दिखलाई दिये; साथ में रशीदा भी थी और रशीदा का हाथ अमरनाथ जी ने अपने हाथों में लिया हुआ था करमसिंह ने उजागरमल के कान में कहा "यार पटाख़ा तो यह भी ज़ोरदार है। लाजवाब छांट है यह भी!" इतने में अमरनाथजी और भी निकट आ गये और उन्हें देखकर उजागरमल जी तथा सरदार करमसिंह जी ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुए साथ से कुर्सियाँ खींच लीं।

"भाई अमरनाथ जी ! आप तो ईद के चाँद ही हो गये। इंसान कार्यालय के मैनेजर क्या बने कि पुराने मित्रों से मिलना जुलना ही छोड़ दिया।" करमसिंह ने बठते हुए ज़रा मुस्कुरा कर दाढ़ी पर हाथ फेर कर व्यंग्य के साथ कहा।

"हां भाई यह शिकायत तो मेरी भी है आप से।" उजागरमल जी ने अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए कहा।

"पहले मैं अच्छी तरह बैठ भी नहीं पाया था कि आप लोगों ने अपनी २ शिकायतों की झड़ी लगा दी। इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि मेरे आने से पूर्व भी आप लोग मेरे ही विषय में बात चीत कर रहे थे। कहिये सच कह रहा हूँ ना।" मुस्कुराकर अमरनाथ जी बोले।

"बिलकुल सच !"करमसिंह ने मुस्कुराकर कहा और बैरे को काफ़ी लाने का आर्डर दिया। "आपकी उम्र बहुत बड़ी है अमरनाथ जी ! हम सचमुच ही आप-को जब भी यहां आते हैं याद किया करते हैं। जब हम दोनों बैठ जाते हैं तो देखते

हैं कि सामने की दोनों कुर्सियाँ ख़ाली रह गईं !" तनिक आंखें चढ़ाकर उजागर मल जी बोले।

"लीजिये आज वह दोनों कुर्सियाँ भी भर गईं।" कहकर अमरनाथ जी फिर बोले, "और कहो भाई काम-काज कैसा चल रहा है ?"

"आपकी जाने बला।" फिर ताने के साथ करमसिंह जी बोले।

"आज कुछ सरदार जी का पारा अधिक ऊपर मालूम देता है, क्या पत्र बन्द हो गया आपका ? मैंने उड़ती सी खबर सुनी थी। मैं पहिले ही कहा करता था आपसे कि केवल विज्ञापन के बल पर पत्र चलाना मूर्खता है और उस समय तुम मेरे कहने को समझते थे मज़ाक। फिर अब क्या सिलसिला किया हुआ है ?" सहानुभूति के विचार से अमरनाथ जी ने पूछा।

"किया क्या हुआ है, बेकार हैं। पत्र बन्द हो गया। प्रेस वालों का बिल रुक गया, एक बार उसने उधार छापा, दो बार छापा, आखिर बेचारा वह कहां तक छापता ? उसने भी मना कर दिया। पास में काग़ज़ के लिए भी पैसा नहीं रहा। विज्ञापन दाताओं ने आंय बांय शांय बतलानी शुरु कर दी। पहिले तो विज्ञापन मिलना ही बन्द होगया और फिर यदि किसी ने कृपा करके दे भी दिया तो उसके पास पेमेन्ट करने के लिए पैसा नहीं निकला ! दो चार महीने तक तो वह यों ही टालता रहा और फिर अन्त में जब चार पांच महीने पीछे वहाँ गये तो डब्बा गोल निकला; पाटिया ही उलट दिया। वहां देखा कि पहिले डिस्ट्रीब्यूटर के बजाय दूसरे डिस्ट्रीब्यूटर का बोर्ड लटका हुआ है।" करमसिंह बोले।

"तो यह दशा ख़राब हुई सिनेमा के पत्रों की !" फिर उजागरमल जी की तरफ़ मुँह करके बोले, "आपका पत्र तो बन्द नहीं हो सकता, यह मैं जानता हूँ ! हिन्दुस्तान में जब तक एक भी पत्र चलेगा उस समय तक उजागरमल जी का पत्र अवश्य चलेगा।" यह बात अमरनाथ जी ने इतनी गम्भीरता पूर्वक कही कि उजागरमल जी का दिल बाग़ बाग़ हो गया, अपनी सफलता और बड़ाई उनसे संभाले नहीं संभली।

"यह सब आपका आशीर्वाद है अमरनाथ जी !" कृतज्ञता पूर्वक उजागरमल जी कह तो गये परंतु साथ ही साथ उन्हें दिल में बहुत खटका कि उन्होंने उस नई छोकरी के सामने अपने को कितना हलका कर लिया।

करमसिंह और उजागर मल जी बातें तो अमरनाथ जी से कर रहे थे परन्तु उनकी कनखियां टिकी हुई थीं रशीदा के मुख मण्डल पर—क्या लाजवाब

गुलाब सा मुखड़ा, कटीली आंखें, उँचा मस्तक, सादा परन्तु कितना सौंदर्य फूटा पड़ रहा था उस सादगी में से भी—दोनों अपना अपना दिल मसोस कर कह रहे थे। साथ साथ दिल में सोचते थे कि कितना बदमाश है यह अमरनाथ भी, कि व्यर्थ की इधर उधर की बकवास तो कर रहा है, मतलब की बात एक नहीं करता; अर्थात् यहां तक कि इतनी देर हो गई और अभी तक परिचय भी कराने की आवश्यकता इसने नहीं समझी।

रशीदा यह सब देख कर मन ही मन मुस्कुरा रही थी। करमसिंह और उजागरमल जी की झपटें दो तीतरों के समान हो रही थीं जिन्हें देखकर वह यह पूरी तरह से अनुमान लगा चुकी थी कि वह क्या हैं और उनसे किस प्रकार की बातें करनी उचित है। रशीदा ने उन्हें उपहास की सामग्री समझ लिया और निश्चय कर लिया कि यदि अमरनाथ जी ने उनसे उनका परिचय करा भी दिया तो उनसे कोई भी गम्भीर बात करने की आवश्यकता नहीं है।

"इतने में काफ़ी आ गई और चार कप रशीदा ने तैयार किये। लड़की के हाथ से बनाई हुई चाय अथवा कॉफ़ी में क्या मज़ा आता है यह पीने वाला ही जान सकता है। करमसिंह और उजागरमल जी को ऐसे अवसर जीवन में कब मिलते हैं जब कि किन्हीं सुन्दर नारी-करों से उनकी प्याली तैयार की जायें। कॉफ़ी पीने से पूर्व अमरनाथ जी बोले, "कॉफ़ी पीने से पूर्व परिचय होना मैं आवश्यक समझता हूँ। आप दोनों ही मेरे पुराने मित्रों में से हैं और साथ ही साथ साथी पत्रकार भी हैं। सिनेमा-क्षेत्र से ही आप लोगों का विशेष सम्बन्ध है। करमसिंह की अपेक्षा उजागरमल जी अपने कार्य में अधिक निपुण हैं इस लिए आपका पत्र खूब बढ़िया आर्ट पेपर पर छपता है, यह दूसरी बात है कि वह छपता २५० प्रति ही हैं। करमसिंह जी के विज्ञापन लाने के मार्ग में जहाँ तक मैं समझता हूँ इनकी वेषभूषा आ जाती है। मैंने एक बार इनसे कहा था......"

"आपने एक बार कहा था और मैं अभी अभी कह रहा था।" ज़रा जोर से पेट पर हाथ फेर कर उजागरमल जी कह उठे। "मैं कहता हूँ कि आपका फेस ही कैनवैसर का सा नहीं है। यह तो अकाली दल में भर्ती होने के क़ाबिल है। चले हैं पत्रकार बनने और लगते हैं पूरे खालसा सिपाही से। पत्रकार का क्या मज़हब, क्या धर्म ? भाई ! वह धर्म कर्म का युग चला गया। पत्रकार स्वतन्त्र है। फिर वह भला इस प्रकार व्यर्थ के बन्धन में क्यों फँसे ? क्यों देवी जी ! बिना परिचय के ही मैं आपकी राय लेना चाहता हूँ।" उजागरमल जी बोले।

"आपका कथन सोलह आने सत्य है।" रशीदा ने बहुत गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया। रशीदा का उत्तर पाकर तो उजागरमल जी में मानो जान पड़ गई। वह बैठे बैठे उछल पड़े।

"ज़रा धीरे से उछलिये, कहीं काफी हाउस वालों की कुर्सी न टूट जाये" अमरनाथ जी बोले।

"आपने मेरे मुंह की बात ले ली अमरनाथ जी ? मैं अभी अभी आपके आने से पहले इन्हें यही समझा रहा था। बात यह है कि इनका इस प्रकार का बेरोज़गार रहना मुझे अखरता है। मैं सहन नहीं कर सकता इनकी कठि-नाइयों को।" उजागरमल जी बोले।

"राय तो आपकी मैं नेक मानती हूँ।" रशीदा ने फिर कहा, "एक सच्चे मित्र को जैसी राय देनी चाहिये वही आपने दी है और एक मित्र ही इस प्रकार की राय देने का साहस भी कर सकता है। यदि कोई और सरदार जी से कह भी बैठता तो आप जानते हैं खून खच्चर हो जाता।" रशीदा ने कहा।

इसके पश्चात् अमरनाथ जी ने रशीदा का परिचय दिया। "आप 'इंसान' कार्यालय के संस्थापक श्री रमेश बाबू की बहिन हैं और इस प्रकार मेरी माल-किन हुईं। 'मालकिन' शब्द सुनकर रशीदा मुस्कुरा दी और इस मुस्कुराहट का आनन्द अमरनाथ जी की अपेक्षा सरदार करमसिंह और उजागरमल जी ने अधिक लिया।

कॉफ़ी पीकर चारों व्यक्ति विदा हुए। रशीदा तथा अमरनाथ जी अपने कार्यालय को चले गए। दूसरे दिन प्रातःकाल जब अमरनाथ जी और रशीदा चाय पर बैठे तो चपरासी ने आकर सूचना दी कि कोई करमसिंह सरदारजी आये हैं। करमसिंह अमरनाथ जी का क्लास का साथी था इसलिए उसके प्रति उनके दिल में सहानुभूति की कमी न थी। चपरासी से कहा कि उन्हें अन्दर ले आओ और एक ही क्षण बाद उन्होंने क्या देखा कि एक अपटुडेट नौजवान करमसिंह उनके सामने खड़ा है। पहिले तो उन्हें भ्रम हुआ परन्तु अमरनाथ जी की आंखें अधिक देर तक धोखा न खा सकीं क्योंकि उन्होंने करमसिंह को बचपन से देखा था।

"अरे! अब तो तुम पुराना लिबास छोड़कर अपटुडेट हो गये!" अमरनाथ जी कह उठे और रशीदा करमसिंह जी के मुख पर देखकर मुस्कुराई और एक ही क्षण बाद बोली, "बहुत ही ठीक किया आपने। अब आप की शक्ल प्रगति वादी लगती है। मैं कहती हूँ कि क्या आपने अमरनाथ जी

कभी यह भी सोचा है कि जानवर और इन्सान में अन्तर क्या होता है ? मैं समझती हूँ कि शायद आपको कभी यह विचार करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी । अन्तर केवल यही है कि जानवर को प्रकृति जैसा बनाती है वह वैसा ही रहता है । वह अपनी वेषभूषा में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं कर सकता और इन्सान कर सकता है । यदि कोई इन्सान भी ऐसा ही हो जाये कि अपनी वेषभूषा में परिवर्तन न कर सके या न करना चाहे तो उसे आप मेरी ऊपर दी हुई थ्यौरी के आधार पर क्या कहेंगे ?"

अमरनाथजी मुस्कुरा दिये और करमसिंह ने उन शब्दों को वेदवाक्य समझा । करमसिंह अभी तक उसी प्रकार खड़े थे । रशीदा फिर बोली, 'आप खड़े क्यों हैं करमसिंह जी ! बैठिये ना ! मैंने आपके लिए एक कार्य सोच निकाला है । मैं जानती हूँ कि आजकल आप आर्थिक संकट में हैं, सो उसकी चिन्ता आप न करें, यह युग जो इस समय आ रहा है वह सहयोग का युग है । 'अपनी २ ढपली अपना अपना राग' अब नहीं चलेगा । मैंने रात अमरनाथ जी से भी आपके विषय में बातचीत की थी । आपको मैं विज्ञापन का विभाग सौंप सकती हूँ यदि आप चाहें और वेतन आपको २००) रुपये मासिक मिलेगा ।

"२००) रुपया ?" आश्चर्य से करमसिंह ने कहा; क्योंकि २००) कभी उन्हें अपने पत्र में भी नहीं बच पाये थे । करमसिंह चिन्तामुक्त हो गये और उन्होंने मन में सोच लिया कि वह अब 'इन्सान' के लिए अपनी जी जान लड़ा देंगे ।

"कहिये स्वीकार है आपको ? यदि स्वीकार हो तो मैं अभी आपके लिए एपाइन्टमेन्ट लैटर (नियुक्ति पत्र) टाइप कराये देती हूँ ।" रशीदा बोली ।

"स्वीकार है ।" बहुत कृतज्ञता पूर्वक करमसिंह ने कहा और अमरनाथ जी की तरफ़ बहुत ही दीन दृष्टि से देखा । यह सब दया जो उनके ऊपर हो रही थी वह जानते थे कि सब अमरनाथ जी के ही कारण थी ।

"भाई करमसिंह जी मुझे बदनामी न आये, इतना ध्यान रखना और हर प्रकार की सुविधा यहां आपको रहेगी । कार तुम्हारे पास रहेगी विज्ञापन दाताओं के पास जाने के लिए । साथ ही मैं तुम्हें एक सूचना और दे दूं कि कार्यालय की बिल्डिंग अपनी तैयार हो रही है और वहीं हमने कार्यकर्त्ताओं के लिए मकान बनवाये हैं । वहां आप लोगों को मकान भी सस्ते किराये पर मिल सकेंगे । यह कार्यालय कार्यकर्त्ताओं का अपना कार्यालय है । किसी को यदि किसी समय कोई शिकायत हो तो उसे चाहिये कि वह उसे मन में न रखे और सीधा आकर हम से कह डाले कि जिससे उसका प्रबन्ध किया जा सके ।"

"आप विश्वास रखिये यही होगा।" दृढ़ता पूर्वक करमसिंह ने कहा।

सब को यहां छोड़ रशीदा ने टाइपिस्ट को एक नियुक्ति पत्र टाइप करने का आदेश दिया और फिर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गई। जितनी देर में चाय आई उतने ही समय में नियुक्ति-पत्र भी टाइप होकर मेज़ पर आ गया और करमसिंह के देखते देखते ही अमरनाथ जी ने उसे पढ़कर हस्ताक्षर भी उस पर करके करमसिंह जी के सुपुर्द कर दिया।

"दाढ़ी और केश कटवाने का यह इनाम है।" मज़ाक में अमरनाथ जी ने चलते समय कहा, "और हां याद रखना कि इस कर्यालय का राज़ उजागरमल जी के भी पास न जाने पाये। मैंने तुम्हें अपना परम मित्र और विश्वासपात्र आदमी समझकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर नियुक्त किया है।" अमरनाथ जी बोले।

"आप विश्वास रखिये यही होगा।" करमसिंह जी ने फिर पुराना वाक्य दुहराया और वह चाय पीकर दफ्तर में अपनी कुर्सी पर जा बैठे।

× × × × × ×

चीन कॉम्यूनिस्ट पार्टी के हाथों में क्या आया कि दुनियां भर के कॉम्यूनिस्ट नामधारियों के मन में अपने अपने देशों की राज्य सत्ताएं हड़पने के लड्डू फूटने लगे। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना न रह सका और बंगाल, हैदराबाद, मद्रास इत्यादि प्रदेशों में इसका प्रभाव बहुत अधिक हुआ।

दिल्ली भारत की राजधानी ठहरी। सिर यहां पर भी उठाया परन्तु यहाँ सरकार की पैनी दृष्टि ने चुन चुन कर कुछ ऐसे व्यक्तियों को नज़रबन्द करना प्रारम्भ कर दिया कि जिससे पार्टी खिलाफ कानून भी करार न देनी पड़े और यह उपद्रवकारी कार्यवाहियां भी बन्द हो जायें।

'इन्सान' के मुख-पृष्ठ पर एक लेख छपा **"देशद्रोही कॉम्यूनिस्ट भारत में सफल नहीं हो सकते।'** लेख बहुत कटु था और उसमें कॉम्यूनिस्टों को काफी ज़ोर से लताड़ा गया था। रमेशबाबू की लोह लेखनी द्वारा लिखा हुआ लेख एक बार तो कॉम्यूनिस्टों को तड़पा ही देता था। यों रमेश बाबू क्षमा कांग्रेस सरकार को भी नहीं करते थे परन्तु कॉम्यूनिस्टों के पीछे तो इस समय वह हाथ धोकर पड़े थे। लेख की हर पंक्ति चूम लेने के योग्य थी। अमरनाथ जी बड़े झूम झूम कर पढ़ रहे थे उस लेख को। "चन्द स्कूलों के नादान बच्चों को फुसला कर या ट्राम की सड़कों पर साधारण पटाखे रख कर

कांग्रेस-सरकार को समाप्त नहीं किया जा सकता। यह ओछापन है। खिसियाई बिल्ली की भाँति बालों को नौंचने से काम नहीं चलेगा। काम चलेगा कर्तव्य-क्षेत्र में उतरने से। कर्तव्य क्षेत्र में बलिदान देना होगा गान्धी की भाँति। यह राज्य खड़ा है शहीदों की वेदी पर, गांधी के बलिदान पर। इसकी नींव काफ़ी सुदृढ़ है। इस विशाल भवन को गिराने के लिए यह पटाखे काम नहीं देंगे, इसके लिए न मैशीनगनें चाहियें, न तोपें चाहिये, यह सब सफल नहीं हो सकेंगी। यह अस्त्र शस्त्र सफल हो सकते हैं उस राज्य को उखाड़ फैंकने में जो इनकी सहायता से स्थापित किया गया हो। यह वर्तमान राज्य तोपों से नहीं बना, यह बना है सत्य और अहिंसा से। इसे मिटाने के लिए सत्य और अहिंसा का ही आश्रय लेना होगा। झूठ और फ़रेब का नहीं, मक्कारी और लूटमार का नहीं; हिंसा और बर्बादी का नहीं। हमें बर्बाद होकर आबाद होने की आवश्यकता नहीं है। हम आबाद हैं और आबाद रहेंगे। हम संसार के संघर्ष में मरहम बनना चाहते हैं, आग बुझाने वाले बनना चाहते हैं, घाव बनना नहीं चाहते, आग लगाने वाले बनना नहीं चाहते।

"आज देश को जो पार्टी संघर्ष का सबक़ सिखलाती है वह खुदगर्ज है, धोखेबाज़ है, मक्कार है'। उन लोगों में विदेशी जासूस मिले हुए हैं जो अपनी मातृभूमि को आतंक और अशांति के पैरों में कुचलवाने के लिए कटिबद्ध हैं। हमें उन दुश्मनों का जी खोल कर मुकाबिला करना है और ऐसे विदेशी जासूसों को खोज खोज कर जनता के सम्मुख रखना है कि यह हैं वह नीच विदेशी जासूस जो मज़दूर के नाम पर ग़रबी के नाम पर जनता को धोखे में डालते हैं। उनसे पूछा जायेगा कि यदि तुम्हें भूख की चिन्ता है तो क्यों नहीं तुम अधिक अन्न उपजाने की योजनाओं में काम करते, यदि तुम्हें मज़दूरों का ध्यान है तो तुम उनसे हड़ताल करके भखों मर जाने के लिए और देश में अधिक व्यापक ग़रीबी फैलाने के लिए क्यों कहते हो ? हावड़ा हवाई जहाज के अड्डे पर बम डालने से मज़दूर का क्या भला होगा, गरीब का कैसे पेट भरेगा ?"

"खूब लिखा है रशीदा ! खूब लिखा है। कमाल कर दिया है। आज के इस लेख से कॉम्यूनिस्टों में काफ़ी चहल पहल रहेगी। आज कोई भी कॉमरेड ऐसा न होगा जो 'इन्सान' के इस लेख को न पढ़े।" अमरनाथ जी बोले।

"मेरा भी यही विचार है। भय्या की क़लम में वाक़ई जादू है।"

फिर कितनी ही देर तक रशीदा और अमरनाथ जी में इस लेख के विषय में बातचीत होती रही। संध्या समय छः बजे कार्यालय बन्द कर दिया गया और

दोनों घूमने के लिए निकल पड़े। अमरनाथ जी ने एक पत्र लिखकर रमेश बाबू से कार्यालय के लिए एक कार ख़रीदने की अनुमति ले ली थी। अब अमरनाथ जी और रशीदा दोनों ही कार में घूमने जाया करते थे। कार चलाना अमरनाथ जी को आता था और अब तो रशीदा ने भी सीख लिया था।

आज़ाद से शान्ता की भेंट

(२४)

"देखा आपने 'इन्सान' पत्र का नया अंक ?" कमला बोली।

"नहीं, अभी नहीं देखा।" आज़ाद ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"उसमें हमारी पार्टी के खिलाफ़ ज़हर उगला गया है। पाजी कहीं के। पहिले मुझे इसी पत्र को देखना है। मैंने आज एक व्यक्ति भी खोज निकाला है इस कार्य के लिए।" कमला बड़े विश्वास के साथ कह रही थी, "मैंने सुना है सरदार करमसिंह जी वहां के एडवरटाइज़मेंट इन्चार्ज हो गए हैं।"

"तब फिर क्या हुआ ?" आश्चर्य से आज़ाद ने कमला के मुख पर ताका और बड़ी ही गूढ़ दृष्टि से देखा कि मानो उन सरदार करमसिंह के अन्दर कोई गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है।

"आज मैं आपको एक पुरानी कहानी सुनाने लगी हूँ आज़ाद बाबू! उस का सम्बन्ध मेरे गत जीवन से है।" कमला मुस्कुरा कर बोली।

यह सुनकर आज़ाद भी दिलचस्पी के साथ सुनने के लिए बैठ गया। कमला फिर कहने लगी, "मैं मिस्टर अमरनाथ, सरदार करमसिंह और लाला उजागरमल जी एक क्लास में पढ़ते थे। चारों को ही पत्रकार बनने का शौक था परन्तु मेरी रुचि इस ओर से कुछ कम हो गई थी। पत्र को साधन रूप में अपने हाथ में तो मैं अवश्य रखना चाहती थी परन्तु अपनी राजनीतिक एक्टीविटीज़ (कार्यवाहियों) से मुझे इतना अवकाश न मिलता था कि मैं कुछ लिखने पढ़ने की तरफ़ भी ध्यान दे सकूं।

अब बात के उस पहलू को जाने दीजिये और दूसरे पहलू पर आईये। मैं अमरनाथ जी को प्रेम करती थी और उनका रुझान भी मेरी ओर कम नहीं था। वह मिलने वालों से आंखें चुराकर मुझसे मिलने आया करते थे और मैं उनसे मिलने जाया करती थी। अपनी धुन वह भी पक्के थे और मैं भी। इसी समय एक उपहास का क्रीड़ा कलाप भी हमारे साथ साथ चल रहा था और वह

यह था कि सरदार करमसिंह जी तथा उजागरमल जी भी मुझ पर दिलजान से फ़िदा थे और वह अमरनाथ जी से चिढ़ा करते थे।

यह हो गई अब पुरानी बात। जीवन ने करवट बदली, विचार-धाराओं में आकाश पाताल का अन्तर हो गया और मिले हुए दिल बिछुड़ गए तथा अनजाने में दिल न जानें कितनी दूर से आकर मिल गए!" कहकर कमला मुस्कुरा दी और साथ साथ कमला के हाथ को अपने हाथ में प्यार से लेकर सहलाते हुए आज़ाद भी।

"करमसिंह को यह पता है कि मैं आजकल अमरनाथ जी से नहीं मिलती और उसे यह भी मालूम है कि आजकल अमरनाथ जी का किसी रशीदा नाम की लड़की के साथ प्रेम चल रहा है। इसलिए इस समय यदि मैंने थोड़ी भी प्रेम की कृपा-कोर से करमसिंह को देख लिया तो बस जानलो कि कार्यालय का पूरा राज़ मेरे पास आ जायेगा।" आंखें मटकाकर कमला बोली।

"चाल तो अच्छी है यदि यह सफल हो जाये।" आज़ाद ने कहा।

"सफल सोलह आने होगी, सोलह आने। मुझे पूर्ण विश्वास है और मैं जानती हूँ कि करमसिंह कितना मूर्ख है। उस पर संसार का चाहे और कोई जादू असर न करे परन्तु मेरा जादू अवश्य असर करेगा। मैं उसे पालतू कुत्ते की तरह नचाकर दिखाऊंगी।" कमला फुदककर बोली।

"मेरी इच्छा शक्ति तुम्हारी सहायक हो।" आज़ाद ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

कमला के दिल में आग लगी हुई थी जब से 'इन्सान' का अङ्क पढ़ा था। दिल चाहता था कि उसी समय जाकर अमरनाथ जी को गोली से उड़वा दे और उस कार्यालय में मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगादे परन्तु पिंजरे में फंसा हुआ पंछी जिस प्रकार पर खूब फड़फड़ाने पर भी बाहर नहीं निकल पाता वही दशा इस समय कमला की थी। आज इस मकान से निकले कई दिन हो गए थे।

बैठे बैठे अचानक उस दिन पुलिस के चक्कर से बचने का प्रसंग छिड़गया। किस प्रकार वह बचसकी, बोली। "बस मैं घर के अन्दर दाख़िल हुई कि पुलिस आ गई। परन्तु क्या कहूँ आप से कि शांता बहिन ने भी इतनी खूबी के साथ पुलिस से बातें कीं कि कोई भड़ुवा ताड़ ही नहीं सका उनके नारकीय वाक्चातुर्य को।"

"तो क्या बातें करने में तुम्हारी शांता बहिन तुमसे भी अधिक चतुर हैं?" आज़ाद ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"हां" कमला बोली, "उनकी बातों में एक ज़बरदस्त गाम्भीर्य होता है। उस दिन उन्होंने मुझे केवल इसलिए बचा लिया कि वह मुझसे स्नेह करती हैं; परन्तु

वास्तव में उनके हृदय को बड़ा भारी खेद हुआ होगा।" कमला ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"यह क्यों ?" आश्चर्य से आजाद ने पूछा !

"यह इसलिए कि वह सैद्धांतिक रूप से मेरे विरुद्ध हैं।"

"अर्थात् कॉम्यूनिस्ट नहीं हैं ?" आज़ाद ने पूछा।

"हां यही कहना चाहिये। परन्तु मुझे कॉम्यूनिस्ट न बनने के लिए भी तो उन्होंने कभी नहीं कहा। विचारों की स्वतन्त्रता के सिद्धांत पर वे विश्वास रखती हैं। गहन गम्भीर एक ठोस पत्थर की भांति उस मकान में इस प्रकार पड़ी रहती हैं कि मानो उनकी कोई अमूल्य वस्तु खो गई है और अब उसे पाने की आशा उन्हें इस जीवन में नहीं है।" कमला गम्भीर होकर बोली।

"तब तो तुम्हारी शांता बहुत ऊंचे विचारों की मालूम देती हैं। हमारी भी एक शान्ता बहिन थी कमला !" आंखों में आँसू भरकर आज़ाद ने कहा।

"सच !" उत्सुकता पूर्वक कमला बोली।

"हां" वह शान्ता भी एक अमूल्य रत्न था। मैंने उसे गुंडों के बीच से अपनी जान हथेली पर रखकर रिवालवर की गोलियों के सहारे पर निकाला था और इस प्रकार उसे बचाकर हिन्दुस्तान भेजा था। उसी को बचाने के लिए मुझे दो मुसलमानों को मौत के घाट उतारना पड़ा और इसी अपराध ने मुझे अन्त में जेलखाने की हवा खिलाई। वह शांता भी हो न हो यहीं कहीं देहली में ही होगी। मैं उससे मिलना चाहता हूँ कमला !" आज़ाद बोला।

कमला कुछ देर शान्त रही, मुख से एक शब्द भी न बोली परन्तु उसे अचानक उस दिन का शाँता का आज़ाद के नाम पर चौंकना याद आ गया। और एकदम उसका मन कह उठा कि हो न हो अवश्य दाल में कुछ काला है।

"मैं तुम्हारी शाँता बहिन से मिलना चाहता हूँ कमला ! यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो ?" बहुत उत्सुकता पूर्वक आज़ाद ने कहा और ऐसा लगा कि मानो वह बिना कमला की अनुमति लिए ही चलने के लिए खड़ा हो गया।

कमला मुस्कुराकर बोली, "तो इसका अनुमान यह है कि जिस शांता को आप खोज रहे हैं वह वही है जो मेरी बहिन है ?"

"खुदा करे यह सम्भव हो" आज़ाद ने सरल भाव से कहा।

"नौनसैंस खुदा ! खुदा क्या ? आज़ाद साहेब आपके अन्दर से भी यह दकियानूसीपन न जाने कब जायेगा ? जहाँ कोई तनिक भावुकता की बात आई

कि बस खुदा और अल्लाह का आश्रय खोजने लगते हो। मैं कहती हूँ कि यह सब गधापन है, जहालत है। कैसा खुदा, किसका खुदा, खुदा आखिर है क्या बला? सब व्यर्थ की बकवास है इन मुल्लों की। खाने कमाने का धन्धा है। दुनिया को लूटने खसोटने और उसकी आँखों में मिर्चें झोंकने का जाल है। हम लोगों का कर्त्तव्य है कि इन चोर बदमाशों का जितना भी भण्डा फोड़ किया जाये उतना ही करें।" कमला गर्म होकर बोली।

आज़ाद अब इस प्रकार के व्याख्यान सुनने का आदि हो गया था इसलिए वह इस बात पर ध्यान न देकर कि कमला क्या कह रही है इस बात पर अधिक ध्यान दिया करता था कि कमला के इस सुन्दर छोटे से मुख से इतनी बड़ी बड़ी बातें निकलकर कितनी सुन्दर प्रतीत होती हैं? जिस प्रकार पिचकारी के छोटे से मुँह में से पानी निकलकर चारों ओर को फैल जाता है वही दशा कमला के मुख की भी थी। वह प्यारा मुखड़ा आज़ाद पर बस देखते ही बनता था।

"तुम अभी तक खड़ी नहीं हुई कमला!" आज़ाद ने तय्यार होकर कहा।

"तो चलना अवश्य है?" कमला ने उसी तरह मुंह बनाकर पूछा। "पुलिस बुरी तरह से हम लोगों की खोज में है, फिर उस दिन उन्होंने मुझे बचा लिया था और यदि आज उन्होंने हम लोगों को पुलिस के हवाले कर दिया तब?"

"ऐसा नहीं होगा।" आज़ाद ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"इतना विश्वास है?" कमला मुस्कुरा कर बोली।

"हां" कहने में कुछ सोचकर आज़ाद बोला "तुमने एक दिन मुझ से कहा भी तो था कि वह लाहौर से आई हैं।"

"यह तो मैं अब भी कहती हूँ परन्तु लाहौर से तो कई शांता आ सकती हैं। उदाहरण के लिये दूर न जाइये। उन्हीं के पास उनकी एक छोटी बहिन है और उसका नाम भी शांता ही है और उसे वह छोटी शांता कहकर पुकारती हैं।"

"छोटी शांता!" कहकर आज़ाद उछल पड़ा। "मिल गई, शांता मिल गई, बिना खोज किये ही मिल गई। कमला जल्दी करो, कहीं ऐसा न हो कि हमारे वहां पहुचने से पहिले ही वह वहां से कहीं चली जाये।" आज़ाद बोला।

"क्या बचपन की बातें करने लगे आज़ाद बाबू! वह कोई मेहमान नहीं, वह किसी होटल में नहीं ठहरी हुई हैं, उनका अपना घर है। वह कन्या विद्यालय बंगाली मार्केट में हैडमिस्ट्रेस हैं।" कमला बोली।

"कुछ भी सही" उत्सुकता पूर्वक आज़ाद ने कहा! "मेरा मन न जाने क्यों

उतावला हो रहा है ? तुम शीघ्रता करो कमला !" कुछ शीघ्रता की ध्वनि में आज़ाद ने कहा।

कमला ने भी समझा कि हो सकता है बात सत्य हो जाए। यदि सत्य हो गई तो क्या ही कहने हैं ? 'इन्सान' कार्यालय की ईंट से ईंट भिड़ाकर ही छोड़ूंगी। बच्चा अमरनाथ बाबू का शांता के द्वारा वह उल्लू बनवाऊं कि दिमाग़ ठिकाने पर आ जाये। कमला के मन में भी प्रसन्नता के लड्डू फूट रहे थे और उसे अपने मनोरथ की पूर्णता में अब कोई भी किसी प्रकार का संदेह बाकी नहीं रह गया था।

दोनों एक दूसरे से पृथक पृथक होकर घर से निकले और बसस्टैंड पर, जहाँ पांच नम्बर बस खड़ी होती है, मिलने का निश्चय किया। यह तै हो गया कि दोनों अपने अपने पृथक टिकट लेकर बैठ जायेंगे और माता सुन्दरी रोड़ पर उतर कर सीधे लाइन पार करेंगे और फिर बस बंगाली मार्केट आ जायेगा। कमला पहिले आगे जाकर यह पता लायेगी कि शांता अपने मकान पर अकेली ही है अथवा नहीं। तब वह फिर लौटकर आयेगी और रेल के खम्बे के पास से आकर आज़ाद को आने या जाने का संकेत करेगी।

बस में दोनों सवार हो गये लालकिले के सामने से। जब बस चलने लगी तो हथकड़ी लिए हुए दो सिपाही दौड़कर बस का डंडा पकड़ते हुए ऊपर चढ़ गये और बस कंडक्टर ने भी उनके आने में कोई बाधा नहीं डाली। गाड़ी को दस क़दम आगे चलकर फिर रोका गया और तमाम बस की तालाशी ली जाने लगी। यहां पर पुलिस की एक टुकड़ी खड़ी यह तलाशी ले रही थी।

कमला और आज़ाद सन्न रह गये। दिल एक दो बार धड़का परन्तु फिर दोनों ने मज़बूत कर लिया कि क्या भय है ? अधिक से अधिक पकड़े ही तो जायेंगे। उन्हें उसकी कोई चिंता नहीं। तलाशी लेकर दोनों सिपाही नीचे उतर गये और गाड़ी को आगे बढ़ने का संकेत किया। गाड़ी चलने पर पता चला कि कचहरी में से एक कॉम्यूनिस्ट क़ैदी पुलिस वालों को झांसा देकर भाग निकला है सो उसीकी तालाश में यह पुलिस परेशान है और उसी के लिए यह तलाशी भी ली जा रही थी।

माता सुन्दरी रोड़ पर दोनों बस से उतर गये और सड़क के दोनों किनारे दोनों ने चलना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी ही देर में रेलवे लाइन पार करके वह अपने इच्छित लक्ष्य पर पहुँच गये। कमला ने दूर से देखा कि शांता बहिन के मकान से अमरनाथ जी किसी नवेली का हाथ अपने हाथ में लिए झूमते हुए

निकल रहे हैं। तीनों के मुख मंडल प्रसन्न हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तीनों बहुत आनंद पूर्ण कुछ समय बिताकर घर से बाहर निकले हैं। कमला इस स्त्री को देखकर समझ गई कि यह हो न हो वही रशीदा है कि जिस पर अमरनाथ जी डोरे डाल रहे हैं। कमला को रशीदा का रूप सौंदर्य देखकर एक बार मन में बड़ी डाह हुई और जी चाहा कि जाकर उसकी छाती में अपना सिर दे मारे और कहे कि "डायन! तूने यह क्या किया? जिस घर को मैंने बचपन से बनाया तूने उस पर अधिकार कर लिया। तुझे क्या अधिकार था कि तू ऐसा करती?" कमला की आंखें लाल हो गईं परन्तु तुरन्त ही उसका उफान उतर भी गया और उसने आज़ाद और अमरनाथ दोनों को अपनी नज़र के तराज़ू पर रखकर तोला तो आज़ाद उसे किसी प्रकार भी अमरनाथ जी से हल्का नहीं प्रतीत हुआ। आज़ाद हर प्रकार भारी था—इस विचार से कमला का सीना कई अँगुल चौड़ा हो गया और उसने गर्व की एक आशापूर्ण श्वांस ली। अमरनाथ उसे एक खुदगर्ज़, धोखेबाज़, डरपोक, फिसड्डी किस्म का आदमी प्रतीत हुआ और उसके प्रति कमला के हृदय में न श्रद्धा थी न दया, बल्कि था एक द्वेष और घृणा—नहीं, घृणा उसे अभी नहीं कहा जा सकता क्यों कि यदि घृणा हो जाती तो डाह न होती।

कमला को याद आया कि आज शांता के स्कूल की छुट्टी थी इस लिए बातें करने का भी खूब अवकाश मिलेगा और अपनी बातों के बीच में जिसका आना वह नहीं चाहती थी वह इस समय उसकी दृष्टि सामने ही आकर जा रहा था। कमला आशा की श्वांस लेकर मकानों के सहारे सहारे नीची गर्दन किये आगे बढ़ी और कुछ ही देर पश्चात् शांता के दरवाज़े पर पहुँच गई। आज कमला ने शांता में आश्चर्य जनक परिवर्तन पाया और वह यह कि वह बहुत ही मधुर कंठ से गुनगुना रही थी। यह गुनगुनाना कमला ने शांता के मुख से प्रथम बार ही सुना था। शांता इस प्रकार घूमती कमला को लगी कि मानो उसमें यौवन नये सिरे से फूटा हो और उसके आनन्द की सूखी हुई कलियां जादू का सहारा पाकर फिर से विकसित हो उठी हों। कमला ने अनुभव किया कि शांता के चरणों की प्रत्येक थिरकन में एक मादकता और मस्ती का संदेश था।

"शांता जीजी!" पीछे से जाकर कमला ने कहा और शांता के कंधों पर अपने दोनों हाथ बड़े स्नेह से टिका दिया।

"अरे कमला! पगली! तू उस दिन इतनी जल्दी रफूचक्कर हो गई कि मैं तुझे देखती ही रह गई। तेरा पता ठिकाना कुछ मालूम नहीं था। तेरे 'होम' पर

गई तो वहां पर पुलिस का पहरा लगा हुआ था सो कान दबाकर चला आना पड़ा।" शांता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"ख़ैर तो है ?" कमला मुस्कुराकर बोली "मैं तो बहन की ताबेदार हूँ जब जिस काम के लिए आज्ञा करो आधी रात तैयार हूँ।"

"यह तुमसे मुझे आशा है कमला ! परन्तु तुम्हारा मार्ग......ख़ैर जाने दो इस बात को इस समय।" शांता कहते कहते रुक कर फिर बोली। "तुमने उस दिन आज़ाद का नाम लिया था। क्या तुम मुझे आज़ाद से मिला सकती हो ? मैं जानती हूँ कि उनसे मिलने के लिए कहना यह तुम्हारे मार्ग में परेशानी पैदा करेगा परन्तु सच बात तो यह है कमला ! कि लाहौर में मेरा एक आज़ाद भय्या था" और फिर शांता ने पूरी कहानी दो शब्दों में सुना दी।

कहानी सुनकर कमला को निश्चय हो गया कि यह वही शांता और वह वही आज़ाद हैं जिनको एक दूसरे को तलाश है। कुछ देर तक तो कमला चुपचाप सुनती रही और फिर एकदम कह उठी, "अच्छा बहिन ! यदि मैं तुम दोनों भाई बहिनों को मिला दूँ तो कहो तुम मुझे क्या दोगी ?" मुस्कुरा कर कमला तनिक एड़ी उचका कर बोली।

"देने को तो केवल आशीर्वाद ही है मेरे पास कमला ! परन्तु जब तुम लेना ही चाहती हो तो मैं तुम्हें अपना भय्या ही दे दूंगी। आज़ाद जैसा साथी तुम्हें इस जीवन में प्राप्त नहीं हो सकता। वह एक अमूल्य रत्न है जो न जाने तुमने कहां से पा लिया ?" शान्ता ने गम्भीरता कहा।

"मुझे तुम पारखी नहीं समझतीं क्या बहिन ? रत्न परखना मैं जानती हूँ।"

"अवश्य जानती हो कमला ! मैं तुम्हारी इस बात पर अविश्वास नहीं कर सकती। तुम्हारी योग्यता के विषय में मैं जब कभी विचारने लगती हूँ तो घंटों बैठी सोचा करती हूँ कि क्या ही विलक्षण बुद्धि दी है भगवान ने इस सुकन्या को परन्तु तुम्हारी ज़िद और ह्विम (सनक) भी कुछ कम भयानक नहीं हैं। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जीवन में कहीं तुम्हारी इन दो आदतों की टक्कर न हो जाये नहीं तो बड़ा भारी अनर्थ हो जाने की सम्भावना है।" शांता गम्भीरता पूर्वक कह रही थी। शांता को बातों का कमला पर बड़ा भारी असर होता था और उसके सामने वह बोल भी नहीं सकती थी। यदि ऊपर वाली बात उसे किसी भी अन्य व्यक्ति ने कही होती तो कोई कारण नहीं था कि उस पर अब तक अनेकों प्रकार के अपशब्दों की बौछार न होने लगती। यहां तक कि इस बौछार से बचने की शक्ति स्वयँ आज़ाद बाबू में भी नहीं थी। भगवान का नाम कमला

अपने बीच में आने दे यह सम्भव नहीं था। 'क्या भगवान ? कैसा भगवान ? किसने देखा भगवान ? सब बकवास है।' कमला ने कहा होता।

कमला ने इसके पश्चात् मकान के बाहर निकल कर हाथ का संकेत किया और आज़ाद ने समझ लिया कि संकेत उसे बुलाने के लिए हो रहा है। आज़ाद धीरे-धीरे आगे बढ़ा और मकान के पास आकर देखा शांता सामने खड़ी थी। आज़ाद ने शांता के सिर पर हाथ रख दिया। शांता की आँखों से अश्रु धारा बह रही थी। तीनों व्यक्ति शांत थे। एक शब्द भी तीनों में से किसी के मुख से नहीं निकला। शांता आज़ाद को घर के अन्दर ले गई। कमला साथ थी।

"छोटी शांता कहां है ?" आज़ाद ने इधर उधर झांकते हुए पूछा।

"वह आज स्कूल गई है। उसका स्कूल खुला है।" शांता ने उत्तर दिया।

"इतना निकट होते हुए भी, एक वर्ष मुझे यहाँ आये हुए हो गया, आज भेंट हो सकी है कमला देवी की कृपा से।" कृतज्ञता पूर्वक आज़ाद बोला।

"मैं कमला की इस कृपा के लिए आजीवन आभारी रहूँगी" शान्ता बोली।

फिर इसके पश्चात् आगे पीछे की अनेकों बातें हुईं। किस प्रकार वह लाहौर से दारोग़ाजी की सहायता से अपने प्राण बचाकर आया—वह सब गाथा आज़ाद को सुनानी पड़ी। अन्त में शाँता कहे बिना न रही, "वहां की जेल से पिंड छुड़ाकर आये तो यहां आकर भी तुमनें क्या किया ? जेल की फाँसी यहाँ भी गले में डाल ली। कमला देवी के मेहमान बनने से इनके साथ उलटा ही लटकना पड़ा। चिमगादड़ के मेहमान जो टहरे।" कहकर शांता मुस्कुरा दी और कमला भी मुस्कुराये बिना न रह सकी। ऐसा अपने को चिमगादड़ कहलाने वाला मज़ाक भला वह और किसका बर्दाश्त कर सकती थी। परन्तु वह जानती थी कि शांता उसे कितना दिल से चाहती थी, इसलिए उसका यह उपहास नहीं था स्नेह की पुकार थी जो अपने प्रियजनों को किसी भी आपत्ति में फंसते देखकर पुकारे बिना नहीं रह सकती। शांता जानती थी कि स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है। विचारों की अभिन्नता के कारण कोई व्यक्ति किसी का स्नेह-पात्र न बन सके, यह कोई बात नहीं। यह ठीक है कि एक ही विचार के व्यक्ति एक जगह एकत्रित होते हैं परन्तु उसका क्षेत्र पृथक है। एक का क्षेत्र केवल गृहस्थ है दूसरे का क्षेत्र बाहर की दुनियां।

शांता के विचार कमला के विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थे परन्तु इससे कभी उनके स्नेह में बाधा नहीं पड़ी। शांता कमला को उतना ही स्नेह करती थी जितना वह अमरनाथ जी को। आज़ाद और रमेश बाबू के स्थान पृथक्-पृथक् थे।

आज किसी भी राजनीतिक विषय पर बातचीत नहीं हुई, व्यक्तिगत बातें ही इतनी जमा हो चुकी थीं कि उनका ही निपटारा होना कठिन था। बातों ही बातों में दो बज गये यानी पांच घंटे वहाँ पर आये हुए हो गये। दो बिछुड़े भाई बहिन जब इतने दिन पाश्चात् मिलते हैं तो दोनों का ही मन यह चाहता है कि मैं पहिले इस बीच की आप बीती सब बातें सुना डालूं। दोनों ने खूब जी भर कर दुःख दर्द की कहानियां कहीं। कमला जानती थी कि आज इस प्रकार की बातें होंगी, तो वह पहले ही पलंग पर जा लेटी थी। कभी कभी इन लोगों की बातों के बीच में हां हूँ कर देती थी कि जिससे यह लोग यह न समझें कि कमला सो रही है। कभी कभी बीच बीच में कह बैठती "कमला सो नहीं रही है। सब कुछ सुन रही है जो तुम भाई बहिन मिलकर कमला की बुराई करने पर तुले हो।" इस पर शान्ता मुस्कुराकर कहती, "कमला तुम सो जाओ, तुम्हें बहुत नींद लगी है। मुझे पता है कि तुम कई दिन से नहीं सो सकी हो।" कमला यह सुनकर दङ्ग रह गई।

"जीजी यह बात तुमने कैसे जानी ?" कमाल ने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों कमला रानी ! क्या तुम यह समझती हो कि हमें तुम्हारा ध्यान केवल उसी समय तक रहता है जब तक तुम इस कमरे में रहती हो ?" शान्ता बोली।

"यह तो मैं नहीं कहती जीजी ?" कुछ दबे स्वर में कमला बोली।

"कल रात तुम बारह बजकर २५ मिनट पर एडवर्ड पार्क में स्टैचू के सामने जब पैंसिल लेकर हाथ में हिला रही थीं और एक लम्बे से व्यक्ति का इन्तजार कर रही थीं तो मैं तुम्हारी खोज के लिए विशेष रूप से गई हुई थी। एक इन्सपैक्टर को मैं अपने साथ बातें करते करते बाग़ के बाहर ले आई थी। वह इन्सपैक्टर यहीं मेरे मकान के पास रहता है। फिर परसों सुबह दस बजे तुम कुट्सिया घाट पर बैठी किसी की राह देख रही थीं तो मैंने मेडेन्स होटल से उधर की ओर जाती हुई पुलिस की टुकड़ी को रोका था।" शान्ता ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"कमला सुनकर अवाक् रह गई। उसे कहां ज्ञान था कि सम्पूर्ण-स्नेह की देवी संसार में और कोई नहीं, बस शान्ता ही है। किस तरह छाया के समान साथ लगी रह कर उसने कितने अवसरों पर कमला की रक्षा की है ? उन्हें यह भी पता अवश्य है कि कमला दो तीन दिन से रात को सो नहीं सकी है। कमला संकोच छोड़ कर एक तरफ़ सो गई और इधर रमेश बाबू के विषय में शान्ता तथा आज़ाद के बीच बातें छिड़ गईं।

'इन्सान' कार्यालय में हड़ताल

(२५)

रमेश बाबू के शुष्क जीवन में फिर से कुछ हरियाली सी आती प्रतीत होने लगी। उनका एकान्तपन तो एकदम समाप्त हो ही गया परन्तु जमघट उन्हें जीवन में पसन्द नहीं था और ना ही वह इस प्रकार आंय, बांय, शांय बातें करने के स्वयं आदी ही थे। कोई और भी इस प्रकार की बकवास करने वाला व्यक्ति उन्हें अरुचिकर दिखता था। क्रोध में धैर्य खो देना रमेश बाबू ने नहीं सीखा था। कभी किसी पर झुंझलाते नहीं थे, कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे। प्राण देने को सर्वदा उद्धत रहे सिद्धान्तों पर। जीवन का पहिला लक्ष्य था सिद्धान्त और उनकी मर्यादा के लिए सर्वस्व अर्पण कर देना।

रमेश बाबू की अटल चट्टान में से स्रोत फूट निकले प्रेम के, स्नेह के, स्पंदन के। जीवन और अधिक नीरस न रह सका परन्तु एक ज्वाला थी रमेश बाबू के दिल में, वह इतनी भयंकर थी कि जहां कभी क्षण भर के लिये भी जीवन में हरियालापन आया कि किसी की स्मृति ने सब आशा-चित्रों पर पानी फेर दिया। प्रेम का जो स्वरूप खड़ा होने जा रहा था उसमें अनेकों प्रकार के आकर्षण आ आकर भी फिर एक गहरा खिंचाव पैदा कर देते थे। रमेश बाबू तिलामला उठे और व्यग्र हो बाहर बरामदे में घूमने लगे। बरसात का मौसम था, ठण्डी ठण्डी फुआरें आरही थीं, खिड़कियों से रमेश बाबू बार-बार अपने माथे और सिर पर पड़ने वाली पानी की बूंदों को पोंछ डालते थे, परन्तु वहां की फुहारों से बच कर अन्दर आने को मन नहीं होता था।

"अरे! राम! रे! राम! मैं तो सब भीग ही गई।" कहते हुए इसी समय रमा ने कमरे में प्रवेश किया परन्तु रमेश बाबू न जाने किस चिन्ता में फंसे थे कि उन्हें रमा के आने का पता ही न चला।

रमा सीधी जाकर बरामदे में पहुंच गई और बोली, "मैं पूछती हूँ कि आप हैं किस दुनियां में? इस दुनियाँ में तो हैं नहीं आप?"

"तुम आ गईं रमा! चलो अच्छा हुआ। अच्छा बैठो तुम अन्दर और हां चाय भी बनवाओ मैं अभी आता हूँ। मैं कुछ विचार रहा था कि इतने में तुम आ गईं। प्रश्न मेरे सामने था और मैं हल निकालने में लगा था।"

रमा अधिक कुछ न कह सकी। कभी कभी मसखरापन रमा कर भी डालती थी परन्तु हर समय नहीं। वह रमेश बाबू के स्वभाव से अब खूब परिचित हो गई

थी। रमेश बाबू को यों ही घूमता छोड़कर रमा चाय बनवाने के लिये चली गई।

"चाय बन चुकी, आप की मेज़ पर लग गई—मैंने कहा चलकर चाय पी लीजिए।" कुछ देर बाद भी जब रमा ने देखा कि रमेश बाबू उसी प्रकार बरांडे में में घूम रहे हैं तो पीछे से जाकर कहा।

रमेश बाबू ने रमा का हाथ धीरे से दबा दिया और मुस्कुराते हुए उसके साथ आकर चाय की टेबिल पर बैठ गये। टेबिल पर दो व्यक्ति साथ साथ बैठे चाय पी रहे थे, ऐसा वह नित्य ही करते थे, करते करते कई महीने हो गये। रमेश बाबू पीछे को खिसकते थे और रमा आगे बढ़ाने का प्रयत्न करती थी। इस प्रकार यह खिंचाव और तनाव होते हुए भी कई मास व्यतीत हो गए थे। अन्त में जब खींचने के लिये डोरा न रहा तो दोनों का मिल जाना अनिवार्य हो गया और खिंचाव एक दूसरे का एक दूसरे के प्रति इतना प्रबल हो गया कि प्रत्यक्ष का मुकाबिला स्वप्निल विचार न कर सके।

रमेश बाबू पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। वह जितना भी रमा से बचने का प्रयत्न करते थे रमा उतनी ही उनकी ओर आकर्षित होती जाती थी। रमेश बाबू में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह किसी का अपमान कर सकें या उससे मिलने में कोई किसी प्रकार की अरुचि दिखला सकें। कभी कभी रमेश बाबू का स्वभाव नारी के हृदय में भ्रम पैदा कर देता था परन्तु रमा इस स्वभाव के क्षेत्र से भी बाहर निकल चुकी थी। रमा का रमेशबाबू के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ने लगा था। कहां रमेश बाबू एक पूर्णरूप से अव्यवस्थित व्यक्ति और कहां उन्हें अब अङ्गरेज़ बना दिया है रमा ने? उनका हर सामान अपने स्थान पर रहता है। उसका हर कार्य उसके समय पर होता है।

"रमा तुम तो सोच रही होगी कि मैं बरांडे में घूमकर शायद हिसाब का सवाल हल कर रहा था। यह बात नहीं थी रमा! मुझे आज मन्सूरी को छोड़ना है और दिल्ली जाकर कार्यालय की दशा संभलनी है। तार आया है कि कल से कार्यालय में हड़ताल हो रही है और मेरा वहां पहुंचना बहुत आवश्यक है। मेरी बहन परेशान हो रही होगी।

"तुम बड़े छलिया हो जो!" इधर उधर की बातें छोड़ कर रमा ने रमेश बाबू के नेत्रों में नेत्र गड़ा दिये। "आपने आज तक यह भी नहीं बताया कि आपके कोई बहन भी है।"

"इसमें छल की क्या बात है भला रमा? आज तक कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया जब इस गम्भीर सूचना को देना मेरे लिये आवश्यक हुआ हो। तुम जानती

ही हो कि मैं व्यर्थ एक शब्द भी बोलना मूर्खता समझता हूँ । बोलने से भी मनुष्य की शक्ति का ह्रास होता है ।' 'रमेश बाबू ने कहा ।

"खैर ! आप जायेंगे तो जायेंगे ही । मेरे रोकने से तो नहीं रुक सकते । मुझे आपको मना करने का भी कोई अधिकार नहीं, अधिकार सब आपके हैं, आप दें, या दें । हमें तो यहीं रहना है । भाग्यवश यदि हमारा भी कोई पत्र निकलता होता तो शायद हमें भी आपके साथ चलना नसीब हो जाता ।" एक गहरी सांस भर कर रमा ने कहा ।

"रमा ! तुम रमेश को बिलकुल नहीं समझ पाई । तुम्हें समझने में शायद धोखा हुआ है । मैं तुम्हें प्यार करताहूँ विवाह करनेके लिये नहीं बल्कि तुम एक योग्य लड़की हो इसलिये । तुमने मुझे व्यवस्थापक का पाठ पढ़ाया है उसके लिए मैं तुम्हारा जीवन भर आभारी रहूँगा । प्यार मैं तुम्हें करता हूँ, करता रहूँगा, परंतु यह नहीं कह सकता कि हम लोग जीवन साथी भी बन सकेंगे अथवा नहीं ।

"मेरा जीवन बड़ा अनिश्चित है, अपूर्ण है । मैं अपूर्ण को पूरा करने का प्रयत्न जब करूंगा तो तुम्हारे लिये कुछ न कर सकूंगा । उस समय तुम्हें ही सब कुछ करना होगा । आदान प्रदान दुनियां में निभता देखा है परन्तु केवल आदान ही आदन या प्रदान ही प्रदान भला कहां निभा है ? मैं यह नहीं कहता कि कोई नहीं निभाता परन्तु हां !, कठिन अवश्य है निभाना ।

"मैं तुमसे यह नहीं पूछूंगा कि तुम मेरे साथ जीवन में चल भी सकोगी या नहीं, मैं तुम्हें साथ रखने को उद्यत हूँ । भली प्रकार विचार करलो । कुछ करने से पूर्व विचार कर लेना अधिक उत्तम होता है । यदि इस समय चूक गईं तो फिर जीवन में शायद कभी यह ग़लती ठीक न हो सकेगी । मैं अपने स्थान पर स्थिर हूँ विचार तुम्हें करना है ।" गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू ने कहा ।

रमा मौन पत्थर के पुतले की तरह खड़ी रह गई । उसके नेत्र अभी तक उसी प्रकार रमेश बाबू के नेत्रों में गड़े हुए थे । रमेश बाबू का बिलकुल नया रूप रमा ने आज देख पाया । रमा स्तम्भित सी रह गई, जड़ पदार्थ समान और जीवन के जिन स्वप्नों का क़िला उसने बनाया था वह एक बार उसे ऐसा लगा कि मानो समाप्त होगया, चित्त खिन्न होगया ।

" आज आपकी बातों को समझ नहीं पा रही हूँ रमेश बाबू !" रमा ने प्रश्न किया ।

"कोई गूढ़ बात मैंने नहीं कही रमा ! तुम चाय पीओ । तुमने चाय पीनी क्यों छोड़ दी ? मैंने विवाह के लिये जो मना कर दिया, यह नाराज़ होने की

क्या बात है रमा ? मैं शादी के योग्य अपने को नहीं समझता और तुम इस योग्य हो……अच्छा पहले चाय पीओ फिर बातें होंगी।" रमेश बाबू बोले।

"नहीं, मैं चाय नहीं पिऊंगी रमेश बाबू! मेरी इच्छा नहीं हो रही।" रमा ने कहा।

"तुम चाय नहीं पीओगी रमा मैं जीवन भर के लिए चाय पीना छोड़ दूँगा। कभी नहीं पिऊंगा।" सरलता पूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

रमा ने झट प्याली उठा ली और बिना एक शब्द भी मुंह से निकाले चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। दोनों साथ साथ पलंग पर बैठे हुए थे। रमा का मन उदास था और आँखों में अश्रु झलक रहे थे। रमेश बाबू ने रमा को अपने पास सिमटाकर बाहुपाश में भर लिया। फिर तो मानो रमा के नेत्रों का बाँध ही टूट गया। कुछ देर बिलकुल मौन दोनों व्यक्ति इसी प्रकार बैठे रहे और फिर रमेश बाबू ने अपनी जेब से रूमाल निकाल कर रमा का मुँह पोंछ दिया।

"विवाह को तुम क्या समझती हो रमा ? क्या प्रेम का अन्त विवाह है ? क्या विवाह करने के लिए ही प्रेम किया जाता है ?" गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू ने प्रश्न किया।

"मैं आपके इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ रमेश बाबू!" उसी प्रकार गम्भीरता के साथ रमा ने उत्तर दिया।

"तुम मेरे साथ दिल्ली चलना चाहती हो ?" फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने पूछा "यदि हां; तो सुनो मैं तुम्हें अपने जीवन के कुछ रहस्य संक्षेप में बतला दूँ जिससे कि तुम फिर जीवन में यह कहने और समझने का साहस न करो कि रमेश ने रमा को धोखा दिया।" रमेश बाबू बोले।

रमा रमेश बाबू के मुख पर इस प्रकार देख रही थी कि मानो वह सामने फैले हुए आकाश पर देख रही हो। कितना विस्तृत, कितना महान् जिसके अन्दर रमा जैसी अनेक तारिकायें समा सकती हैं।

"मेरे पास न धन है न जायदाद। मैं जो कुछ भी हूँ तुम्हारे सामने बैठा हूँ। पत्र मेरा अवश्य है परन्तु इसमें जो पैसा लगा हुआ है वह मेरा नहीं है। यदि कभी जीवन में ऐसा अवसर आने लगा कि मुझे पत्र से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा तो मैं बिना एक पैसा लिये जिस प्रकार यहां बैठा हूँ इसी प्रकार विच्छेद कर देना होगा।" रमेश बाबू कह रहे थे।

"परन्तु आपने मुझे यह बात क्यों सुनाई ? मेरा तो आपकी इस व्यक्तिगत बात से कोई भी सम्बन्ध नहीं।" रमा ने निस्संकोच भाव से कहा।

"यह मैं जानता हूँ कि तुम इतने संकुचित विचारों की लड़की नहीं हो, किंतु फिर भी इस बात को स्पष्ट कर देना, एक दुनियादार के नाते मेरा कर्त्तव्य है। मेरा जीवन तुमने एक व्यवस्था के ढांचे में ढालने का प्रयत्न अवश्य किया है, परन्तु फिर भी उसमें स्वयं व्यवस्थित रहने की शक्ति नहीं है। वहाँ मुझे भाग्य से ऐसी बहिन मिल गई है जिसने मुझे संभाला हुआ है, और यहां पर आया तो भगवान् ने तुम्हें भेज दिया मेरा जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए। मैं आपका आभारी हूँ, आप को जीवन भर साथ रखने के लिये मैं तैयार हूँ। मेरे जीवन में तुम्हारा स्थान बन चुका, क्योंकि मेरा जीवन अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने के लिए किसी की आवश्यकता है। यदि तुम मना कर दोगी तो मैं तुमसे ज़िद नहीं कर सकूंगा क्योंकि यह मेरे स्वभाव के प्रतिकूल होगा परन्तु हां यह तुम अवश्य समझ रखना कि मेरी आत्मा को दुःख होगा और मैं अपने मन से कहूँगा कि यदि यह सम्पर्क मेरे जीवन में न हुआ होता तो कहीं अच्छा था।"

रमा नहीं समझ पाई कि आखिर रमेश बाबू का इन सब बातों के कहने का क्या अर्थ है? वह रमा को जीवन साथी बना भी नहीं सकते और बनाना भी चाहते हैं, विवाह नहीं करना चाहते परन्तु जीवन भर साथ रखने के लिए उद्यत हैं। वह उसे प्रेम करते हैं यह रहस्य की बात नहीं, स्पष्ट है क्योंकि रमेश बाबू राजनीति में कदम रखते हुए भी बहुत सरल और स्पष्ट हैं। झूठ बोलना वह बिलकुल पसन्द नहीं करते। उनका अक्षर अक्षर सत्य होता है। रमा यदि उनके साथ न गई तो उन्हें क्लेश होगा और रमा यदि उनके साथ जाये भी तो किस रूप में? एक मित्र के रूप में।

"रमा और स्पष्ट सुनो" कहकर रमेशबाबू ने अपनी सम्पूर्ण कहानी रमा को सुना डाली और स्पष्ट रूप से बतला दिया कि वह शाँता को प्रेम करते हैं और शांता तथा उनके बीच में शुभ विवाह के वचन हुए थे और वह उन वचनों को प्राण रहते निभायेंगे, जीवन भर कुंवारे रहकर।

अब प्रश्न आ गया एक कुंवारे व्यक्ति के साथ जीवन भर कुंवारा रहने का। रमा इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ थी और रमेश बाबू की दिल्ली जाने की तिथि आगई। वह दिल्ली के लिए रवाना हो गये। रमा रमेश बाबू को स्टेशन पर छोड़ने आई। दोनों की आँखें डबडबा रही थीं। रमा ने वचन दिया कि रमेश बाबू जीवन में जब कभी भी, जहां भी रमा को याद करेंगे रमा उन्हें उसी समय वहीं पर मिलेगी।

यह विश्वास लेकर रमेश बाबू शांति के साथ अपनी सीट पर बैठ गये। कुछ देर रमा भी साथ में बैठी रही। गाड़ी छूटने का समय हो गया और गार्ड ने सीटी दी। रमा उठ खड़ी हुई और चलते समय उसने केवल इतना कहा कि "कोई त्रुटि रही हो व्यवहार में तो क्षमा करना रमेश बाबू!"

रमेश बाबू ने अपनी अंगुली से एक अंगूठी निकालकर रमा की अंगुली में पहनाते हुए कहा, "यह मेरी अमानत है, मेरी नहीं तुम्हारी बहन की, सुरक्षित रखने के लिए तुम्हें दे रहा हूँ, क्योंकि तुम यह कर सकोगी।" अंगूठी पर लिखा था 'शांता'।

रमा ने आंख मींचकर अंगूठी को सीने से लगा लिया और मानो उसके हृदय में एक प्रकाश हुआ कि वास्तव में वह अंगूठी उसकी बहन की है; वह उसे अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान समझेगी।

"आप जिस कार्य के लिए जा रहे हैं उसमें सफल हों।" अन्त में रमा ने कहा और गाड़ी चल दी। दो प्रेमियों का जोड़ा बिछुड़ गया। जहां तक दिखलाई देते रहे एक दूसरे को देखने का प्रयत्न किया और फिर थक कर अपनी अपनी राह पर हो लिये।

(२६)

कमला ने शहर में तूफान मचाया हुआ है। शहर के हर व्यक्ति की ज़बान पर कमला और आज़ाद के नाम शैतानों की तरह चढ़े हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन से भय मानता है। मूर्ख लोग तो यहां तक भी समझने में नहीं हिचकते कि पता नहीं उन दोनों की जेबों में रूस का भेजा हुआ कोई छोटा मोटा टैंक ही न पड़ा हो जो समय पाकर जादू के ज़ोर से दिल्ली को उलट डाले। लाला लोग तो दुकानों पर बैठकर उन्हें खूब खरी खोटी सुनाते हैं परन्तु साथ साथ डरते भी हैं कि कहीं रात को उन्हीं की दूकानों को डाईनेमाइट लगाकर न उड़वा दिया जाये।

कालेज के छोकरों को तो कोई जोशीला काम चाहिये। एक बार को तो वह जोश में आकर अपने घर को भी आग लगा सकते हैं। कर्त्तव्य-ज्ञान से उनका सम्बन्ध कम होता है क्योंकि उनकी बुद्धि अभी परिपक्व अवस्था को प्राप्त की हुई नहीं होती। मजदूरों में उछृंखलता बढ़ाने के लिए केवल यह भर कह देना काफ़ी होता है कि "मोटे मोटे सरमायेदार किसके पैसे पर पलते हैं? किसकी खून पसीने की कमाई से ऐश करते हैं, जिसका खून चूसकर यह मोटे होते हैं?—मजदूरों का। अब समय आ गया है सब मजदूरों के एकत्रित होकर इनसे शक्ति छीन लेने का। यह सब मिलें किसकी हैं—मजदूरों की। यह कार-

"जानने की इसमें क्या बात है ? इस समय कार्यालय में केवल तीन ही व्यक्ति हैं। मैं, आप और करमसिंह। फिर यहां की बातें हम तीनों के अतिरिक्त बाहर और कौन ले जा सकता है ? मैंने पहिले भी एक बार इस व्यक्ति पर अविश्वास प्रकट किया था परन्तु क्योंकि यह आपका साथी रहा है इसलिये मैंने इसे क्षमा करदिया था। मैं स्पष्ट रूप से कहे देती हूँ कि कमला से इसकी सांट गाँठ है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं खुफिया तौर पर कमला को पकड़वा सकती हूँ।"

अमरनाथ जी मुस्कुरा दिये। "कमला को पकड़वाना कोई बहादुरी नहीं है। किसी को बन्धन में डालकर परास्त करना नहीं होता। वह सामने रहे और देखे कि मैं परास्त हो गया और कुछ न कर सके—यह है परास्त करना। यही सिद्धांत है जो मैंने तुम्हारे सामने रखा है। मेरा नहीं यह रमेश बाबू का सिद्धांत है। मैं इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता। साथ ही इस सिद्धांत को कार्य रूप में परिणत करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। इसीलिये कल रमेश बाबू को तार करना पड़ा। इन सभी काम करने वालों का हिसाब चुकता करके मैं नये स्टाफ़ से काम चालू कर सकता था परन्तु यह मेरी कमज़ोरी होती, कार्यालय की कमज़ोरी होती। अपने नाम पर मैं कमज़ोर होने का धब्बा लगा भी सकता था परन्तु उस महान व्यक्ति के नाम पर मैं यह सहन नहीं कर सकता।" गम्भीरता पूर्वक अमरनाथ जी ने कहा, "हां तुम्हारी करमसिंह वाली बात अवश्य ठीक हो सकती है क्योंकि करमसिंह पहिले दर्जे का मूर्ख है और यह कमला पर लट्टू है। कमला इसका प्रयोग कर रही होगी अपने मतलब के लिये और यह मूर्ख समझ रहा होगा कि वह इसे प्यार करती है, इश्क करती है, इत्यादि-इत्यादि।" अमरनाथ जी ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

रशीदा यह सुन कर मुस्कुरा दी परन्तु साथ ही बोली, "तो फिर हमें इसके विषय में क्या करना चाहिये ?"

"करना क्या चाहिये ? करमसिंह को जवाब दे देना चाहिये। तुम करमसिंह से कहना कि कमला देवी यहां आई थीं। आप जानते ही हैं कि वह अमरनाथ जी को प्रेम करती हैं। इसलिये वह उनसे कह गईं कि उन्हें कमला के सिर की क़सम जो करमसिंह को वह तुरन्त नौकरी से न हटा दें, क्योंकि वही हड़ताल को ख़राब कर रहा है। इस मुहब्बत के जाल में फंसकर आपको इस नौकरी से स्तीफ़ा मिल रहा है। अमरनाथ जी को भय्या इंचार्ज बना गये हैं सो इनकी आज्ञा का उल्लंघन करना मेरी शक्ति से भी बाहर है।" अमरनाथ जी मुस्कुरा कर बोले।

"फिर क्या होगा ?" रशीदा ने कहा।

"फिर क्या होगा ? करमसिंह जाकर कमला से टकरायेगा और जब कमला को यह पता चलेगा कि इसे वहां से स्तीफ़ा हो गया है तो वह भी इससे बातें करना बन्द कर देगी। इसके पश्चात् यह फिर यहीं पर आयेगा और अपनी ग़लती की क्षमा मांगेगा। उस समय यह तुमको अधिकार होगा कि तुम इसे चाहे दुबारा रखो या न रखो।" अमरनाथ जी ने कहा।

इसी प्रकार बातें हो रही थीं कि इतने में सरदार करमसिंह बाहर से 'करमसिंह मुर्दाबाद' के नारे सुनता हुआ अन्दर आया। वह यह सोचता हुआ आ रहा था कि आते ही चाय मिलेगी और फिर···परन्तु वहां पहुंचते ही रशीदा उसे दूसरे कमरे में ले गई और मासिक वेतन का रजिस्टर निकाल कर उसका चुकता हिसाब देकर हस्ताक्षर ले लिये। यह सब कार्य बिना एक शब्द भी बोले हो गया और फिर रशीदा ने ऊपर वाले वाक्य जो अमरनाथ जी ने कहे थे दुहरा दिये।

"आप मुझे बिना अपराध ज़वाब दे रही हैं रशीदा बहिन !" करमसिंह ने गिड़-गिड़ा कर कहा।

"मेरे तो अधिकार में ही कुछ छोड़ कर नहीं गये रमेश भय्या ! सब अधिकार अमरनाथ जी को ही हैं। मैं नहीं समझती कि कमला तुमसे न जाने कब के यह कांटे निकाल रही है।" गम्भीरता पूर्वक रशीदा ने कहा।

सरदार करमसिंह का साहस अब अमरनाथ जी से बातें करने का न हुआ क्योंकि मन में तो चोर छुपा हुआ था। सरदार जी के कमज़ोर मस्तिष्क में यह बात न आ सकी कि कमला ऐसी परिस्थिति में भला अमरनाथ जी के पास कैसे आ सकती थी ? कमला और अमरनाथ जी का अकेले-अकेले बागों में घूमना, सैर के लिये जाना, सिनेमा देखना, होटलों में चाय पीना, काफ़ी हाउस में गप्पें लगाना, सरदार करमसिंह और उजागरमल का उल्लू बनाना, यह सब ऐसी बातें थीं कि जिन्हें कमरसिंह भुला नहीं सकता था। उसे बिश्वास हो गया और कमला के प्रति इतना क्रोध आया कि जाकर उस गिरगिट जैसी नन्हीं सी छोकरी को नोंच-नोंच कर खसोट डाले। उसे क्रोध आ रहा था कि क्यों उसने करमसिंह की लगी लगाई अच्छी ख़ासी नौकरी छुड़वा दी ? सरदार जी अपने वेतन के रुपये लेकर सिर झुकाये हुए जब कार्यालय से बाहर निकले तो फिर उन पर 'करमसिंह मुर्दाबाद' की फटकारें पड़ीं परन्तु हिसाब लेने के पश्चात् उनसे यह बौछारें सहन नहीं हुईं। आखिर कह ही उठे "भाई तुम लोग मेरे क्यों पीछे पड़े हो ! यह देखो मैं तो अपना हिसाब ही ले आया।"

"हिसाब ले आया या निकाल दिया।" एक मन चले कम्पोज़ीटर ने कहा। "साथियों के साथ दग़ा करने वाले व्यक्ति की यही सज़ा होनी चाहिये।"

सरदार करमसिंह ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और लम्बे-लम्बे क़दम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया। सब मज़दूरों ने मिलकर उसके पीछे हथेलियाँ पीट दीं, और एक बार फिर 'करमसिंह मुर्दाबाद' का नारा लगाया।

रशीदा यह दृश्य खिड़की के अन्दर से देख रही थी और देख कर प्रसन्न हो रही थी। पत्र छपने का प्रबन्ध रशीदा ने नई दिल्ली के एक बड़े प्रेस में कर लिया था इसलिये पत्र ठीक समय पर ही निकला। उसकी व्यवस्था में कोई बाधा नहीं आई। कई-कई क्लर्कों का कार्य रशीदा और अमरनाथ जी दोनों मिलकर कर रहे थे इसलिये दो रोज़ दोनों को बिना सोये हो गये थे। मेज़ पर बैठे-बैठे कई बार आंखें मिच जाती थीं। चाय के सहारे दिन कट रहा था। रमेश बाबू का सम्पादकीय नहीं आया, इसी चिंता में अमरनाथ जी बैठे थे।

उधर कमला के पास भी हर समय हड़ताल की सूचना जाती थी। आज़ाद का विचार था कि कमला एक छोटे से प्रेस पर अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही है परन्तु फिर भी कमला के प्रत्येक कार्य को बल देना उसका धर्म था। आज़ाद करना जानता था, विचारने की आवश्यकता न समझते हुए।

शांता ने कमला को कितना समझाया कि वह व्यर्थ के लिये आपस के आदमियों से टक्कर न ले परन्तु कमला के सामने तो पार्टी के प्रोग्राम का प्रश्न था। वह अपने और पराए आदमियों को क्या जाने? 'इन्सान' कॉम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज़ उठाता है इसलिये इस पत्र को नहीं चलने दिया जायेगा, नहीं चलने दिया जायेगा; यह कमला ने दृढ़ता पूर्वक कह दिया। कमला अपने विचार पर अटल थी, वह हिलना नहीं जानती।

"आज मैं अंतिम बार तुम्हें समझाने के लिए आई हूँ कमला!" शाँता ने प्यार से कमला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मुझे क्षमा कर दो जीजी! मैं अपने निश्चय से पीछे नहीं हट सकती। यह पत्र जीवित नहीं रह सकता। दिल्ली में कोई भी पत्र कॉम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज़ उठा कर जीवित नहीं रह सकता। हम इन्हें समाप्त कर देंगे, यह हमारा अंतिम निश्चय है।" कमला ने बहुत गम्भीरता पूर्वक कहा।

"और तुम्हारा क्या निश्चय है आज़ाद भय्या?" शांता ने कहा।

"मेरा कोई निश्चय नहीं बहन! मैं एक पार्टी को अपना चुका। जो वह पार्टी मुझे आज्ञा देगी मैं वही करूंगा सही या ग़लत निश्चय करना मेरा काम

नहीं। मेरा काम है काम करना और मैं उसे करूंगा। तुम मेरी आदत से अपरिचित नहीं हो इसलिये अधिक कहना व्यर्थ ही है बहन! मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारा कहना मानने में असमर्थ हूँ।" दृढ़ता पूर्वक आज़ाद ने कहा।

शांता निराश होकर चली गई परन्तु वह अब क्षण-क्षण की सूचना रखती थी। कैसा कुसमय आ गया कि अपने ही आपस में लड़ने लगे?

"शांता बहन को आज बहुत दुःख हुआ हमारे व्यवहार से।" आज़ाद ने शांता के चले जाने पर कमला से कहा।

"हां! परन्तु किया भी क्या जा सकता है? हमारे सामने व्यक्तिगत कोई प्रश्न नहीं है। यह हमारा संघर्ष व्यक्ति के लिये नहीं, किसी विशेष समाज के लिये नहीं, यह तो देश के उन सभी व्यक्तियों के लिये है जिनके पास खाने के लिये अन्न नहीं और पहिनने के लिये कपड़ा नहीं। कांग्रेस सरकार ने सिवाय झूठे झूठे वायदे करने के और आज तक क्या किया है? केवल अधिकारी वर्ग की चांदी है और बेचारे कांग्रेस के सत्याग्रही जिनके घर बर्बाद हो गये पिछले आंदोलनों में, आज भी उसी दीन दशा में पड़े हैं, क्योंकि न तो वह कोई अधिकार ही पा सके और न पास पैसा ही। उन्हें अभी एक और सत्याग्रह करना होगा और वह सत्याग्रह कांग्रेस के झंडे के नीचे नहीं होगा, वह होगा हमारे झंडे के नीचे। हमारा सत्याग्रह केवल दांत गिड़गिड़ा कर मांगने के लिये नहीं होगा, बल्कि वह होगा दांत पैना कर अपना खून चूसने वाले की छाती पर चढ़कर उसका रक्त पी जाने के लिये। हम मानव का और आर्थिक शोषण बर्दाश्त नहीं कर सकते। इसे रुकना होगा हमारी अथाह शक्ति के सामने।" कमला ने गम्भीरता पूर्वक त्योरी चढ़ाकर कहा।

आज़ाद का कमला के मत से किसी भी रूप से मत भेद नहीं था और वह पार्टी के कार्य के लिये हर प्रकार का बलिदान देने को उद्यत था। कमला उसका मस्तिष्क थी और वह था कार्य करने की मैशीन। एक मैशीन से ग़लती हो सकती है परन्तु आजाद से नहीं। बन्दूक चाहे समय पर गोली न छोड़ सके परन्तु आज़ाद समय पर चूकने वाला नहीं। एक महान शक्ति थी यह जिसे सन् ४२ के आन्दोलन में रमेश बाबू ने तय्यार किया था परन्तु अब वह थी कमला के हाथ में।

कमला का मार्ग अपना पृथक मार्ग था। उसमें कोई स्वार्थ नहीं था, आपसी वैर-भाव नहीं था, वहां था सिद्धांत और उस सिद्धांत के लिये कमला कटिबद्ध थी हर प्रकार का बलिदान देने के लिये। आज़ाद और कमला फिर हड़ताल के

विषय में बातें करने लगे। हड़ताल सफल थी, आज तीन दिन हो गये। इसी बीच में कुछ बलबलाते हुए सरदार करमसिंह जी आ टपके। करमसिंह कमला पर बहुत भल्लाये परन्तु कमला अभी तक उस झल्लाने का राज़ कुछ न समझ पाई। अन्त में करमसिंह ने वह सब कुछ कह सुनाया जो रशीदा ने उससे कहा था। वह सुनकर आज़ाद और कमला दोनों ही खिलखिला कर हंस पड़े और करमसिंह उल्लू की तरह उनका मुंह देखता रह गया।

"वाह सरदार करमसिंह जी! तुम्हारी अक्ल को भी कीड़े चुग गये; रहे आप भी कोरे के कोरे ही। मैंने कई बार आपसे कहा है कि कभी-कभी ज़रा दिमाग़ पर भी ज़ोर दे लिया करो परंतु आप हैं कि अपने दिमाग़ से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते।" मुस्कुरा कर कमला बोली।

"क्यों? किस तरह?" उसी प्रकार क्रोध में लाल होकर करमसिंह ने कहा। सच बात तो यह है कि करमसिंह को इस समय कमला पर इतना क्रोध आ रहा था कि वह न जाने क्या कर देता परन्तु आज़ाद के डील डौल को देखकर उनका साहस नहीं हो रहा था कुछ करने के लिये।

"वह इस तरह कि एक तो आपके दिमाग़ में यह किस तरह आया कि मैं वहां जा सकती हूँ और दूसरे यह कि जिनका सर्वस्व नाश करने पर मैं तुली हूँ वह मेरा कहना मान कर तुम्हें निकाल भी सकते हैं। वह लोग मूर्ख नहीं हैं। उन्होंने ताड़ लिया होगा कि जब कार्यालय के सब आदमी बाहर हैं और फिर भी हमारे राज़ खुल जाते हैं तो राज़ खोलने वाला सरदार करमसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। समझे आप!" कमला एक ऐसी मुस्कुराहट के साथ यह सब कह रही थी कि मानो कुछ हुआ ही नहीं।

"समझा क्या? नौकरी से हाथ धो बैठा और जीवन भर अमरनाथ जी को मुंह दिखलाने योग्य न रहा।" मन को मार कर करमसिंह ने कहा।

"तो यार क्या हुआ? क्या ज़िंदगी भर नौकरी ही करते रहते? हमारे साथ जेल चलो ना! वहां पर बहुत ऐश की छनती है।" आज़ाद ने हसकर कहा।

"जेल!" करमसिंह को सुनकर चक्कर आ गया और वह कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा। "ना बाबा! ना! अपने बस का यह रोग नहीं। हम तो कमला देवी आपकी खातिर यहां आते जाते थे कि जो कुछ सेवा हमसे बन पड़े कर दें परन्तु आपने तो हमारा बेड़ा ही गर्क कर दिया।" दुःखी भाव से करमसिंह ने कहा और फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

"करमसिंह तुम दुखी न हो। मेरे काम के लिये तुम्हारी नौकरी गई है, इसलिये मैं तुम्हें दूसरी नौकरी इससे भी अच्छी दिला दूँगी। जो कार्य तुम वहां कर रहे थे वही कार्य तुम से लिया जायेगा।" कमला ने बहुत ही गम्भीरता पूर्वक करमसिंह को आश्वासन देते हुए कहा।

"सच !" कह कर आशा भरे नेत्रों से करमसिंह ने कमला के मुख पर विश्वास के साथ देखा।

"सच ! कल से काम पर आजाना। प्लाज़ा सिनेमा के ऊपर जो न्यूज़ ऐजेंसी है उसी में तुम्हें काम करना होगा।" कमला ने कहा।

"जो आज्ञा परन्तु वेतन क्या होगा ?" करमसिंह ने पूछा।

"वही होगा जो तुम्हें वहां मिलता था।" कहकर कमला ने आज़ाद की तरफ़ यह विचार कर मुँह कर लिया कि अब तो यह चला ही जायेगा।

उसके हृदय में जो जलन थी, जो क्रोध था कमला के प्रति वह सब काफ़ूर हो गया; परन्तु वह जेल वाली जो बेतुकी बात आज़ाद ने कही थी वह कानों में से न निकल सकी। वह बराबर अभी तक कानों में गूंज रही थी। करमसिंह ने सोचा कि इनका क्या है ? यह तो मस्ताने जीव ठहरे, यहाँ बैठकर रोटियां न खाईं जेलखाने में बैठकर खालीं परन्तु मैं यदि जेल चला गया तो बाल बच्चों को किसके हवाले करूंगा ? सरदारनी जी का क्या होगा ? इसी उलझन में फंसा हुआ न जाने क्या सोचता करमसिंह वहां से चल दिया।

करमसिंह के वहां से चले जाने के पश्चात् कमला ने आज़ाद से कहा "अब यह स्थान सुरक्षित नहीं रहा आज़ाद बाबू ! क्योंकि यह मूर्ख व्यक्ति पता नहीं अब जाकर क्या करे ? इस लिये यह स्थान छोड़ कर अब हमें किसी अन्य स्थान पर डेरा लगाना चाहिये और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि इसे इस प्रकार निकाल कर शायद इसका पीछा करनेके लिये पुलिस में सूचना भी देदी गई हो।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" आज़ाद ने अनुमति दे दी और दोनों अपने अपने थैले लेकर चल पड़े। दोनों ने अपना वेश बदला हुआ था। कमला को कोई कमला और आज़ाद कोई आज़ाद नहीं कह सकता था। कमला ने अपने बाल पीछे से कटवा लिये थे और साढ़ी के स्थान पर पेंट पहननी प्रारम्भ कर दी थी। देखने में अब वह बिलकुल एक ऐंग्लोइण्डियन लड़की मालूम पड़ती थी। एक छोटा सा हैट वह लगाती थी। उसे देखकर बहुत से क्रिश्चियन तथा ऐंग्लो-इण्डियन यह खोज करने का प्रयत्न करने लगे थे कि यह चूज़ा कहां से आता है, परन्तु किसी को कुछ पता नहीं चलता था उसके विषय में।

आज़ाद ने भी खद्दर के कुर्ते-धोती को तिलांजली दे दी थी और अब वह सूटेड-बूटेड रहते थे। बाज़ार में चलते समय सिगार मुँह से लगा रहता था और आंखों पर उन्होंने चश्मा लगाना प्रारम्भ कर दिया था, चश्मा लग जाने से शक्ल इतनी बदल जाती थी कि एक दिन तो कमला को भी पहिचानने में धोखा हो गया और उस दिन उसने फ़तवा दे दिया कि 'दिल्ली का खुफिया पुलिस-विभाग तुम्हें नहीं पकड़ सकता, नहीं पकड़ सकता।'

दोनों ने अपनी अपनी साईकिलें लीं और एक तरफ़ को चल दिये। साईकिलों पर तेजी से आगे पीछे चले जा रहे थे कि अचानक सामने से एक पुलिस का दस्ता आ गया। पुलिस को देखकर दोनों में एक भी सकपकाया नहीं और सीधे चलते चले गये। इसके पश्चात् पुलिस की चौकी के सामने से दोनों व्यक्ति बड़े ठाठ से निकले।

(२७)

आज तीसरा दिन हड़ताल का था और प्रेस कर्मचारी किसी प्रकार कोई बात सुनने के लिये तय्यार न थे। इन कर्मचारियों में दो आदमियों को कमला ने तोड़ कर अपने हाथ में ले लिया था और यह बन चुके थे कॉम्यूनिस्ट पार्टी के मैम्बर इस लिये इनपर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना असम्भव था।

रशीदा ने कई बार कर्मचारियों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वही दोनों व्यक्ति नेता बनकर सामने आये और कोई समझाने की बातचीत न हो सकी। रशीदा ने हरचन्द चाहा कि कर्मचारियों से मिलकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दे परन्तु इन दो व्यक्तियों ने रशीदा को उनके निकट तक न पहुँचने दिया। अमरनाथ जी यों अपने काम के धनी थे परन्तु वह मज़दूरों की हुल्लड़बाज़ी से बहुत घबराते थे। उनकी किसी भी बात का जवाब देना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। राजनीति के लेख लिखना और बात है और युद्ध के मैदान में जाकर गोली चलाना और बात, पत्र और कार्यालय-संचालन करना और बात है और हड़ताल के सताये हुए व्यक्तियों को ना समझ बातों का जवाब देना और बात फिर उनके पास वह प्रभाव शाली व्यक्तित्व भी नहीं था जो इस विध्वन्सकारी शक्ति का सामना कर सके। अमरनाथ जी को अपने कर्मचारियों पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था कि यह कैसे मूर्ख हैं जो अपनी कठिनाई को मुझसे आकर नहीं कहते और व्यर्थ के लिए सड़क पर खड़े-खड़े हुल्लड़ मचा रहे हैं।

"भय्या आज अवश्य आजायेंगे, जहां तक मेरा विचार है।" रशीदा ने कहा।

"आशा तो यही है।" अमरनाथ जी सिर हिला कर बोले।

"अभी आपको नई दिल्ली भी तो जाना है।" रशीदा ने कहा।

"हां जाना तो अवश्य है परन्तु मैं सोच रहा था कि तुम्हें भी साथ लेता चलता। ऐसा न हो कि यहां पर यह लोग कोई नया उपद्रव खड़ा करदें।" कुछ भयभीत सी ध्वनि में अमरनाथ जी ने कहा।

"आप मेरी चिन्ता न करें। आपत्ति में अपना बचाव किस प्रकार किया जाता है यह भय्या ने मुझे सिखला दिया है।" एक विश्वास के साथ रशीदा मुस्कुराकर बोली।

अमरनाथ जी की आदत से सब परिचित थे। इस लिये जब वह कार्यालय से निकलते या उसमें घुसते थे तो कोई चूँ नहीं करता था। कॉम्यनिस्ट नेता बराबर कर्मचारियों को उनके प्रति अपमान सूचक शब्द प्रयोग करने को उकसाते थे परंतु किसी में साहस नहीं होता था। अमरनाथ जी बहुत भले आदमी हैं यह सब जानते थे। इस लिये उनके साथ किसी भी प्रकार की शररात वह नहीं करना चाहते थे और न करने का साहस ही उनमें था।

कुछ मसखरे लोग रशीदा पर ताने कसकर आनन्द अवश्य लेना चाहते थे परन्तु वह भी जानते थे कि रशीदा कुछ कच्ची गोलियों की खेली हुई नहीं है। रशीदा उनकी मूर्खता के उपरान्त भी उन्हें अपना समझती थी और कभी कभी उसे झुँझलाहट भी आती थी उनकी मूर्खता पर कि वह क्यों अपनी ही हानि कर रहे हैं? इस प्रेस तथा पत्र को आज तक कभी रशीदा ने अपना नहीं समझा-वहां जो कुछ भी है उसके कार्यालय के कर्मचारियों का है। पूंजीपति बनने की इच्छा से उसकी स्थापना नहीं की गई। फिर क्यों यह लोग उसे पूँजीपति कहकर चिड़ाते हैं? यदि वह भी उन लोगों को पूँजी के लोभी कहकर चिढ़ाने लगे तो भलाक्या हो? इस प्रकार की न जाने कितनी बातें उसके मस्तिष्क में आतीं और आ आ कर चली जाती थीं।

अमरनाथ जी नई दिल्ली चले गये क्यों कि नई दिल्ली के किसी प्रेस में पत्र छप रहा था। यह कार्य गुप्त रूप से हो रहा था। आज पत्र वितरण का दिन था और सब कर्मचारी देख रहे थे कि आज पत्र का क्या बनता है? पत्र ठीक समय पर बँटने के लिये कार्यालय के सामने आगया। कर्मचारियों ने कुछ हुल्लड़ बाज़ी करने का प्रयत्न किया तो अखबार के हाकरों ने उन्हें लगते हाथों लिया, "तुम लोग स्वयं बे रोज़गार हुए बैठे हो और हम लोगों को भी बेरोज़गार बनाना चाहते हो। इस समय यदि कोई भी व्यक्ति देश के किसी भी उत्पादन के कार्य

रुकावट पैदा करता है तो हम उसे पं० जवाहरलाल के शब्दों में देश का शत्रु मानते हैं। आप लोग अपना कार्य करें हमारे बीच में न आयें।" दृढ़ता पूर्वक हॉकरों ने कहा।

कर्मचारी तो कई दिन के बिगड़े हुए बैठे थे, फिर भला यह बात किस प्रकार बर्दाश्त कर सकते थे? क्रोध से उनके तन बदन में आग लग गई और वह पागल की तरह अखबार वाली गाड़ी पर टूट पड़े। गाड़ी को ताला लगा था इसलिए वह कोई विशेष हानि न पहुँचा सके। परन्तु पत्र बँटना कठिन हो गया ऐसी परिस्थति में। रशीदा बेधड़क बाहर निकल आई और उसने मर्दाना आवाज़ में कहा, "आप लोग क्या चाहते हैं?"

"हम लोग चाहते हैं कि इस अखबार में यहीं पर रखकर आग लगा दीं जाये।" कर्मचारियों के उन दो कॉम्यूनिस्ट नेताओं ने कहा।

"क्यों?" उसी प्रकार कड़क कर रशीदा ने पूछा।

"क्यों कि मज़दूरों की मांग पूरी किये बिना यह पत्र वितरित नहीं हो सकता।" उसी प्रकार उबल कर कॉम्यूनिस्ट भाषा में उन दो व्यक्तियों ने उत्तर दिया।

"आप लोग प्रेस के कर्मचारी हैं। प्रेस हमने उस समय तक के लिये बन्द कर दिया है कि जब तक आप लोगों की मागों का निर्णय न हो जाये। पत्र का आप लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिये मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप लोग अलग हट जायें और पत्र को सुचारू रूप से बँट जाने दें।" रशीदा ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"नहीं, नहीं, यह कभी नहीं होगा, यह एक से लाख तक नहीं होगा। यह पत्र हमारी लाशों के ऊपर बँट सकता है उसके अतिरिक्त नहीं। हम अपने अधिकारोंकी प्राप्ति के लिये अपने प्राण गँवा देंगे।" उन्हीं दो नेताओं ने कड़ककर कहा।

"आप लोग भ्रम में हैं। मैं कहती हूँ कि आप लोग धोखा खा रहे हैं और स्वार्थ के लिये अपनी और अपने कार्यालय की हानि कर रहे हैं। आपको चाहिये कि समझ बूझ से काम लें। पत्र को वितरित हो जाने दें और जो कुछ भी विचारणीय प्रश्न हैं उन्हें गम्भीरता पूर्वक बैठकर सोचें। मेरे विचार में आप लोग पाच आदमी आपस में से चुन लें, जो मिल बैठकर किसी निश्चय पर पहुँच सकें।" रशीदा गम्भीरता पूर्वक कह रही थी।

"हम इनके नेता हैं, चुने हुए हैं, आप हमसे कहिये क्या कहना है आपको? बिना अंतिम निर्णय हुए पत्र नहीं बँट सकता।" कॉम्यूनिस्ट नेताओं ने कहा।

"नहीं बंट सकता, नहीं बंट सकता" कर्मचारियों में से भी आवाज़ आई।

परिस्थिति गम्भीर हो चली। कर्मचारियों ने मोटर को घेर लिया और पत्र का बंटना असम्भव कर दिया। कुछ हॉकर भी ज़िद के कारण ज़बरदस्ती अखबार लेने पर तुल गये और एक अजीब संग्राम का रूप उपस्थित हो गया। रशीदा परेशान थी कि क्या करे? अमरनाथ जी अभी तक नहीं आये। उनकी अनुपस्थिति में उसको क्या क़दम उठाना चाहिये? शांति भंग होने की उसे पूर्ण आशा हो गई, इस लिये वह सीधी दौड़ कर अन्दर गई और पास के थाने को उसने फोन कर दिया "इन्सान-कार्यालय" पर जहाँ कई दिन से हड़ताल चल रही है, उपद्रव होने का भय है, क्योंकि कर्मचारी हॉकरों को पत्र तकसीम करने में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। आप शीघ्र आकर परिस्थिति को सँभालें नहीं तो हो सकता है कि कर्मचारियों तथा हॉकरों के बीच एक बड़ा उपद्रव हो जाये।"

रशीदा ने फ़ोन हाथ से रखकर ज्यों ही बाहर देखा तो वहां पर सन्नाटा था। बिलकुल शांत वातावरण! किसी प्रकार की चैं-चैं मैं-मैं नहीं हो रही थी। कारण समझ में नहीं आया। बाहर की तरफ़ लपकी तो धोती कुर्ता और चप्पल में रमेश बाबू हॉकरों तथा कर्मचारियों के बीच खड़े दिखलाई दिये। रशीदा की जान में जान आ गई और उसने हृदय से यह समझ लिया कि अब कार्य अवश्य ठीक हो जायेगा, कोई उपद्रव नहीं होगा। भगवान सब भला करेंगे।

"आप लोगों ने आज तक 'इन्सान-कार्यालय' में काम किया है। कुछ लोग आप में से ऐसे हैं कि जिन्हें मैंने उस दिन जुटाया था जिस दिन इस कार्यालय का केवल नाम और अभिलाषा ही वर्तमान थी। यह आप लोगों का घर है, होटल नहीं। होटल को छोड़ा जा सकता है घर नहीं छोड़ा जा सकता। याद रखो कि घर के रहने वालों के चले जाने पर घर तो वीरान हो ही जाता है परन्तु बेघर लोगों की भी दुनियाँ में कहीं कद्र नहीं होती, उन्हें भी आवारों के नाम से पुकारा जाता है। वे किसी के सम्मान के पात्र नहीं बन सकते।

"मैं पूछता हूँ कि आपमें से वह लोग सामने आयें जो अपना घर उजाड़ने के लिये तैय्यार बैठे हैं। मैं इस पत्र को उन्हीं के सामने डालता हूँ। वह इसमें आग लगा दें, इस प्रेस में आग लगा दें, इस बिल्डिंग में आग लगा दें।" यह कहते हुए रमेश बाबू ने लारी वाले को कहा कि मोटर का फाटक खोलकर अखबार की गड्डियां ज़मीन पर उन्हीं कर्मचारियों के सामने पटक दें। एक एक करके सब गड्डियां कर्मचारियों के सामने पटक दी गईं। इसके पश्चात् रमेश बाबू उन नेताओं की तरफ़ मुड़े और बोले, "क्यों खड़े हैं अब आप? अन्दर से जाकर

मिट्टी के तेल की बोतल ले आओ और लगाओ आग मेरे सामने इन अखबारों में।" सब शांत थे किसी के मुंह पर एक शब्द भी न आया। फिर भी वह कॉम्यूनिस्ट नेता किसी प्रकार साहस बटोर कर लड़खड़ाती जबानसे बोले, "पहिले हमारी मांगें पूरी होनी चाहियें। तब अखबार बंटेगा।"

"और यदि हुईं।" कड़क कर रमेश बाबू ने कहा, "तो तुम इस कार्यालय में आग लगा दोगे, यही बात है ना।" रमेश बाबू मुस्कुरा दिये और फिर गम्भीर स्वर में एक एक का नाम लेकर बोले, "क्यों भाई उस्ताद करीमखां तुम्हारी क्या मांग है?" मैशीन मैन से पूछा।

"बाबू जी हमें तो मालूम नहीं। जैसा सब ने कहा वैसा हम कर बैठे।" सचाई के साथ सीधेपन से उस्ताद ने कहा।

"और भाई रामधन, मनोहरा, शान्तिस्वरूप, अमीचन्द, मीरचन्द, तुम लोगों की क्या मांगें हैं?" रमेश बाबू ने फिर उसी गम्भीरता पूर्वक कहा।

"बाबू जी हमसे तो रामू और माँगे ने कहा था कि अगर तुम लोग भी हड़ताल करोगे तो तरक्की हो जायेगी।" सब एक स्वर में बोले।

भेद पता चल गया कि सब बीमारी की जड़ रामू और मांगे हैं। अब रमेश बाबू ने रामू और माँगे को ही लिया। "क्यों भाई रामू और माँगे आप लोगों की क्या मांगे हैं?"

"हमें तरक्की चाहिये।" दोनों बोले।

"आप ने कभी पहिले तरक्की के लिये प्रार्थना की?" रमेश बाबू ने पूछा।

"नहीं।" दोनों ने उत्तर दिया।

रमेशबाबू ने सब कर्मचारियों की तरफ मुंह करके कहा "देखिये, आप लोग सब देखिये कि इन दोनों व्यक्तियों ने पहिले कभी तरक्की के लिए प्रार्थना पत्र नहीं दिया और एकदम हड़ताल करने के लिये तुल गये। खैर मैं आज से अपने सब कर्मचारियों के मासिक वेतन में दस दस रुपये की तरक्की करता हूँ और इन दोनों व्यक्तियों को यह आज्ञा दी जाती है कि यह इसी समय कार्यालय से अपना चुकता हिसाब लेकर बाहर चले जायें। मैं कार्यालय में ऐसे व्यक्ति नहीं चाहता जो कार्यालय को अपना न समझें और फिर उस्ताद को आगे बुलाकर कहा "उस्ताद हॉकरों को अखबार तकसीम करो।"

कुछ देर तक कुछ लोगों में कानाफूंसी हुई और फिर सब एकदम प्रसन्न से दिखलाई देने लगे। उस्ताद ने आगे बढ़कर अखबार बाँटना प्रारम्भ कर दिया। अन्य सभी कर्मचारी अपने अपने कामपर जा लगे।

कुछ ही क्षण में हॉकर 'इन्सान आगया' की आवाज़ लगाते हुए बाज़ारों में दिखलाई देने लगे और कार्यालय की मशीनें खटा खट चल पड़ीं। रामू और मांगे को हिसाब मिल गया और उन्हें यह देख कर बड़ा ही खेद हुआ कि उनके साथियों ने जिनको उनके बलिदान स्वरूप दस-दस रुपये तरक्की मिली, उनका कुछ भी साथ नहीं दिया। वह सब जाकर अपने काम पर जुट गये।

थोड़ी देर पश्चात् जब पुलिस आई तो हाँकर लोग जा चुके थे और कार्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलना प्रारम्भ हो गया था। पुलिस को कार्यालय की सीढ़ियों पर से रामू और मांगे उतरते हुए मिले। उन्हीं से सबइन्सपैक्टर साहेब ने पूछा, "क्या यहां पर कोई उपद्रव का डर है?"

"जी हाँ था परन्तु अब तो वह समाप्त हो गया।" दोनों ने लम्बी आह भर कर कहा और फिर सिर झुकाये हुए यह सोच कर कि कमला ने उन्हें मरवा दिया, अपनी राह पर चल दिये। पुलिस इन्सपैक्टर अन्दर जाकर रमेश बाबू से मिला और यह जान कर बहुत प्रसन्न हुआ कि उन्होंने स्वयं ही व्यवस्था सँभाल ली।

शान्ता के घर दावत

(२८)

शांता एकांत में बैठी सोच रही थी कि कैसी कर्म-गति है? आज़ाद भय्या यहां आये भी और आकर एक ऐसे चक्कर में फंस गये कि मानो वह शांता को जानते ही नहीं थे। एक दिन के बाद फिर यहां आना भी उन्होंने उचित नहीं समझा। यह समय समय का फेर है अन्त में यही विचार कर किसी प्रकार शान्ता ने मन को समझाया।

फिर ध्यान कमला की तरफ़ गया और उसके विचारों की दशा तथा कर्मठता पर सोचा तो देखा कि वह एक पत्थर की भांति अडिग चट्टान है, जो कोई भी आकर उससे अटक गया, बस उसका हो गया। आज़ाद पर उसका वह जादू हुआ है कि वह मदारी के बन्दर की तरह उसके संकेत पर नाचता है। मन में भय हुआ कि कहीं कमला कभी अपने किसी कार्य की सिद्धि के लिये आज़ाद को खतरे में न डाल दे। कमला के सामने प्रेम कोई वस्तु नहीं, मोह का कोई अस्तित्व नहीं। वह जो कुछ सोचती है उसे करने में और तो क्या यदि अपने प्राणों तक की बाज़ी लगाने का भी अवसर आये तो पीछे हटने वाली नहीं। कमला इधर उधर की बातें नहीं जानती। एक मनुष्य के जीवन का उसके सामने

कोई मूल्य नहीं, क्योंकि वह सोचती है समस्त संसार की बातें। कभी-कभी शांता को कमला के इस छोटे से कलेवर में छुपी हुई समस्त संसार में कॉम्यूनिस्ट सत्ता स्थापित करने की भावना को स्मरण करके हंसी भी आ जाती थी, परन्तु जब वह कमला के दृढ़ संकल्प पर दृष्टि डालती थी तो उसका वह छोटा सा स्वरूप न जाने कितने रूपों में आकर उसके सामने उपस्थित हो जाता था। कमला को समझना शांता के लिये कठिन नहीं था क्योंकि उसके जीवन में कई प्रकार की प्रगतियों का सम्मिश्रण नहीं था। वह बिलकुल स्पष्ट, सीधी और तीखी थी। कमला चाहती थी अपने विपक्ष को चीर कर सामने बढ़ना और इसीलिये उसने अपना प्रोग्राम बनाया था कि वह पहिले अपने विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले पत्रों और पत्रकारों का मुंह बन्द करेगी।

'इन्सान' कार्यालय की हड़ताल के टूट जाने से शांता को हार्दिक प्रसन्नता अवश्य हुई परन्तु इसका जो प्रभाव कमला तथा आज़ाद पर पड़ा उसे देख कर उसके भय का अन्त न रहा। उसने देखा कि अब उन दोनों में मानवी प्रवृत्तियों के स्थान पर दानवी प्रवृत्तियों ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया है।

रमेश बाबू की योग्यता, यश और गाम्भीर्य के विषय में शांता ने रशीदा से जो कुछ सुना था उसकी पुष्टि इससे हो गई कि उन्होंने आते ही एक क्षण में हड़-ताल को समाप्त कर दिया और कार्यालय का कार्य फिर सुचारु रूप से प्रारम्भ हो गया। रमेश बाबू को देखने की एक प्रबल इच्छा शांता के हृदय में पैदा हो रही थी परन्तु वह वहां पर जाये किस बहाने से, यह वह नहीं सोच पा रही थी। कितना समय हो चुका था उसे रमेश बाबू से पृथक हुए ? कौन जाने आज़ाद की ही भांति रमेश बाबू भी शांता को वह पिछले दिनों का सम्मान अर्पित न कर सकें—फिर ऐसी दशा में वहां उसका जाना, क्या होगा ? जीवन का जो शेष अंश बाकी रह गया है नर्क हो जायेगा।

यह विचार कर फिर शांता को अपने मन की भावुकता पर लज्जा आई कि वह कितनी मूर्ख है जो उसने केवल रमेश बाबू उनका नाम होने से ही यह धारणा निश्चित कर ली कि यह वही उसके अपने रमेश बाबू हैं, कोई अन्य नहीं। ख़ैर कुछ भी सही परन्तु कुछ रहस्य इन रमेश बाबू में शांता को अवश्य प्रतीत हुआ और वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब उनका साक्षात्-कार शांता को हो सके।

संध्या समय शांता बैठी छोटी शांता की राह देख रही थी कि इतने में सामने से उसे रशीदा और अमरनाथ जी आते हुए दिखलाई दिये। दोनों का हाथ

एक दूसरे के हाथों में था और धीरे-धीरे मुस्कुरा कर आपस में बातें करते हुए इधर को चले आ रहे थे। उनकी गति में आज एक प्रकार का साहस और प्रसन्नता दिखलाई दे रही थी। शांता का हृदय भी उनके स्वागत के लिये उत्सुक हो उठा था और हो उठा था उत्सुक विशेष रूप से रमेश बाबू के विषय में बातें करने के लिये रशीदा से। रशीदा का भोलापन भी शांता के हृदय में घर कर गया था और वह उसे भी एक होनहार लड़की के रूप में प्यार करने लगी थी। रशीदा का सौंदर्य भी किसी प्रकार किसी से कम नहीं था परन्तु शांता, शांता की तो बात ही निराली थी। एक गुलाब के फूल के चारों ओर जिस प्रकार चमेली के फूल दिखलाई देते हैं वही दशा शांता के निकट रशीदा तथा कमला की होती थी, परन्तु चमेली के फूल भी तो कम सुन्दर नहीं होते। उनमें भी अपनापन होता है और कुछ ऐसे भी गुण होते हैं जो गुलाब में नहीं दिखलाई देते। शांता उन्हें प्यार करती थी परन्तु दुर्भाग्य वश वह अपना एक लम्बा-चौड़ा परिवार बना कर पारिवारिक सुख का आनंद-लाभ करना चाहती थी। यह उससे नहीं हो पा रहा था और उसके लिये विशेष खेद की जो बात थी वह यह थी कि उसके परिवार में इन राजनैतिक वादों ने एक ऐसी उथल-पुथल मचा दी थी कि उसके मस्तिष्क की समस्त शांति ख़तरे में पड़ गई थी। कभी-कभी शांता का हृदय कांप जाता था इन वादों के वाद-विवाद में पड़कर और वह कह उठती थी कि यह सब व्यर्थ की बकवासें हैं—परन्तु बकवास कैसी ? यही तो संसार की प्रगति के मूल में हैं। यदि वाद-विवाद न हो तो जीवन जीवन न रहे। यदि संघर्ष न हो तो विश्व शांति के महत्व को भूल जाये; यदि निर्दयता कहीं पर दिखलाई न दे तो दया को कोई जीवन में याद भी न रखे। मन फिर कह उठता, 'चलने दो; सब ठीक है जो हो रहा है। यदि कोई मूर्खता से अधिक आगे बढ़ जायेगा तो टक्कर खाकर अवश्य उसे पीछे लौटना होगा। समय की गति को मैं नहीं रोक सकती। मेरी शक्ति ससीम है असीम नहीं। मैं तो अपने को पाने में भी समर्थ न हो सकी।'

जब अमरनाथ जी और रशीदा ने दरवाज़े के सामने वाले वरांडे की छोटी सी तीन पग वाली सीढ़ी पर क़दम रक्खा तो शांता भी खड़ी हो गई और बहुत ही सस्मित स्वर में कहा, "आज कैसे इस जोड़ी ने भूल कर इस ग़रीब-कुटिया का मार्ग अपनालिया ?"

"आप जीजी ! इस प्रकार की बातें न करा करो बस। मुझे शर्म आने लगती है और आपके भय्या तो बस बेज़बान हो जाते हैं। अब मैं सच कहती हूँ कि तुम्हारे इतना कहने का इन पर यह प्रभाव पड़ा होगा कि यह जो कुछ भी वहां

से सोच कर आये होंगे कि शांता बहिन से यह बातें होनी हैं और शांता बहन से उस विषय पर परामर्श होगा, उसमें से कम से कम आधा तो भूल ही गये होंगे। अब कुछ बातें मुझे याद दिलानी होंगी और जो कुछ मेरे दिमाग़ से भी निकल गई होंगी वह तो सच-मुच रह ही जायेंगी।" रशीदा मुस्कुरा कर बोली।

"तब तो वास्तव में बहुत बड़ा अपराध किया है मैंने।" शांता ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"अपराध किया नहीं जीजी! करने जा रही हो। मैं कहती हूँ कि यह जो तुम इस प्रकार की बातें कह रहीं हो बस यही अपराध है।" कहकर दोनों मीठी हँसी-हँस दिये और शांता के गृह-आंगन में एक उल्हास का वातावरण उपस्थित हो गया। दो कमरे पार करके आंगन में शांता बहिन की एक छोटी सी मेज़ पड़ी थी और उस पर पड़ा हुआ था एक सुन्दर सा मेज़पोश। चारों ओर बेंत की चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। तीन कुर्सियों पर तीनों व्यक्ति बैठ गये। दिन गर्मी का था। इसलिये शांता बहिन ने पहाड़ी नौकर को तीन गिलास शर्बत लाने के लिये कह दिया और तीन गिलास शर्बत के आ गये।

मेज़ पर 'चित्रप्रकाश' की एक कापी पड़ी थी अमरनाथ जी नें उसे उठा कर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और यह दोनों आपस में इधर उधर की गप्पें छांटने लगीं। आगे पीछे के जीवन की कथायें प्रारम्भ होनें लगीं। शांता बड़ी चतुर थी इस मामले में। वह रशीदा से सब कुछ पूछ लेना चाहती थी बिना अपना कुछ बतलाये और वह अपने इस कार्य में सफल भी हो गई। रशीदा ने उसे वह सब कहानी कह सुनाई कि जिस प्रकार उसे उसके भय्या रमेश बाबू ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर बचाया था। उसने यह भी बतला दिया कि रमेश भय्या जिस दिन लाहौर से रवाना हुए थे तो उन्होंने कैसे वेश बदला था और फिर किस प्रकार उन्होंने भारतीय सीमा में आकर रशीदा के अब्बा की जान बचाई थी।

"अब्बा की जान बचाई!" शांता ने आश्चर्य से कहा।

"हां तभी तो मुझसे उनका परिचय हुआ और मैंने उन्हें कर्तव्य पथ पर देवताओं से अधिक दृढ़ पाया।" कहकर रशीदा का सीना गर्व से कई अँगुल ऊपर को उठ गया और वह अनुभव कर रही थी कि वह एक इतने बड़े व्यक्ति की बहन कहला सकी है।

आज शांता के मन में और भी दृढ़ हो गया कि वह रशीदा के रमेश भय्या हों न हों वही रमेश बाबू हैं, जो उसके जीवन का सर्वस्व हैं। लाहौर से आने

वाला व्यक्ति जो उस समय में भी इतना दृढ़ कि मुसलमानो को बचाकर लाये और कोई अन्य रमेश बाबू नहीं हो सकता। अब शांता ने रमेश बाबू के विषय में अन्य बातें करनी आरम्भ कीं और रशीदा भी अपने भय्या की कहानी अपनी इतनी घनिष्टतम जीजी से दिल खोल कर कहने लगी।

"रशीदा बहिन! यदि तुम बुरा न मानो तो तुम्हारे भय्या के विषय में एक गुप्त बात पूछूं।" शांता ने बड़े प्यार से मुस्कुराने का एक्टिंग करते हुए पूछा।

"यह भला बुरा मानने की बात है जीजी! इस प्रकार तो कोई अपना ही पूछ सकता है।" कुछ दीनता से बहुत अपनत्व दिखलाते हुए रशीदा बोली।

"अच्छा तो बतलाओ क्या तुम्हारे भय्या ने कभी किसी को प्यार नहीं किया?" अचानक एक ऐसा प्रश्न शान्ता बहन ने कर दिया कि रशीदा को एक दम गम्भीर हो जाना पड़ा और उसने एक आह भरते हुए कहना प्रारम्भ कर दिया, "इस विषय में कुछ न पूछो बस शान्ता बहन! मेरे भय्या के जीवन का यह पहलू बहुत ही अभाव पूर्ण है और उनका यही अभाव ऐसा अभाव है कि वह जीवन में अपनी उच्चतम सीढ़ी पर नहीं पहुंच सकेंगे। उन्हें एक सहारे की आवश्यकता है और वह उन्हें उपलब्ध नहीं है। वह कहा करते हैं कि लाहौर में उन्होंने अपना एक जीवन साथी चुना था परन्तु समय ने उनसे उसे छीन लिया। लाहौर में एक दिन रात्रि को अचानक कुहराम मचना प्रारम्भ हो गया। वह अपने घर से उतरे और किसी प्रकार उस मार काट मैं से होते हुए अपने उस साथी के घर पहुंचे। वहां पर उसका पिता, उसकी माता, और उसका नौकर तीनों मरे पड़े थे और उस साथी का कहीं पता नहीं था। सोचा कि शायद उनके साथी को वहां के गुन्डे उठाकर ले गये होंगे और मार डाला होगा परन्तु उनका मन कहता है कि वह उनका साथी कहीं पर जीवित है। अपने उस साथी के विषय में कुछ जानने के लिये एक बार अपने एक पाकिस्तानी मित्र के नाम उन्होंने पत्र भी लिखा था परन्तु कोई उत्तर नहीं आया।

"अपने उसी साथी के मिलने की आशा में रमेश भय्या अभी तक जीवित हैं। आप यह जान लीजिये शांता बहिन कि उनका आधा समय अपने उस साथी के विषय में विचारने में जाता है और आधा समय उनके अन्य कामों मैं" रशीदा अपनी झोंक में हृदय पर हाथ रखकर यह सब कह गई। उसकी आंखों में आँसू थे।

"क्या तुम बतला सकोगी रशीदा कि उनका वह साथी कोई स्त्री है या पुरुष?" शांता ने गम्भीरता पूर्वक पूछा।

"यह मैं निश्चय पूर्वक नहीं कह सकती क्योंकि यह पूछने का साहस आज तक मेरा भी नहीं हो सका परन्तु हां अनुमान इतना अवश्य कर सकती हूँ कि वह कोई बहुत सुन्दर आप जैसी सुकन्या रही होगी बहन !" इतना कहकर रशीदा मुस्कुरा दी मानो वह शांता को अपने भय्या रमेश बाबू के लिये पसंद कर रही थी।

"तो तुम मुझे सुन्दर समझती हो रशीदा !" मुस्कुरा कर शांता ने आज अपने जीवन में दस वर्ष बाद यौवन का अनुभव करते हुए कहा और शांता की आंखों के डोरों में एक सरल मस्ती का साम्राज्य छा गया।

"इसमें भी क्या कोई संदेह की बात है बहिन !" गर्व के साथ रशीदा ने उत्तर दिया और वह अपने शब्दों पर दृढ़ थी।

बातों का रुख़ फिर बदल गया। अमरनाथ जी जो सिनेमा-पत्र पढ़ रहे थे उन्होंने रशीदा से कई प्रश्न कर डाले और फिर शांता को उन्होंने एक दिन सिनेमा चलने के लिये निमंत्रण दे डाला। यह शांता को अधिक पसंद नहीं आया परन्तु यह भी नहीं विचार सकी कि उन्हें मना भी किस प्रकार करे। अन्त में बोली, "रशीदा मेरी तबियत आजकल ख़राब रहती है इसलिये मुझे डाक्टर ने बाहर जाने को मना किया हुआ है। तुम लोग दोनों ही हो आना।" और इस प्रकार अपना पीछा छुड़ाया।

इतने में शर्बत आ गया और पहाड़ी नौकर ने करीने से सजा कर मेज़ पर लगा दिया। सभ्यता में तीनों में से एक भी किसी प्रकार दूसरे से कम नहीं था। तीनों ने धीरे धीरे चुसकियाँ लगानी प्रारम्भ कर दीं।

शांता को इस समय पूर्ण निश्चय हो चुका था कि यह रमेश बाबू हों न हों वही शांता के अपने रमेश बाबू हैं जिनका ध्यान वह स्वप्न में भी नहीं भूलती। शर्बत पीती-पीती शांता यकायक फिर रशीदा से पूछ बैठी, "तो रशीदा बहिन तुम्हें एक बात और बतलानी होगी अपने रमेश भय्या के विषय में।"

"क्या" आश्चर्य से मुस्कुरा कर रशीदा ने पूछा और फिर मद भरी दृष्टि से शांता के मुख पर देखने लगी।

"तुम्हारे रमेश भय्या के गाल पर एक काला तिल है, काफ़ी मोटा बांई तरफ़, बोलो है न यही बात।" शांता ने कहा और अमरनाथ जी तथा रशीदा दोनों आश्चर्य के साथ शांता का मुंह देखते रह गये। एक शब्द भी उनके मुंह से न निकला। दोनों ही आश्चर्य चकित थे।

"क्यों आप लोग इतने विस्मय-ग्रस्त से कैसे हो गये ? मैं आजकल ज्योतिष

का अध्ययन कर रही हूँ। मेरा कथन ठीक निकला ना!" फिर निश्चय करने के लिये शांता ने गम्भीर मुद्रा करके पूछा।

"हां।" रशीदा ने कह तो दिया परन्तु उसे ज्योतिष वाली बात पर विश्वास न हुआ और कुछ ऐसा शक हुआ कि वह मुख से एक शब्द भी न बोल सकी। अमरनाथ जी उसी प्रकार अपना सिर झुकाये हुए बैठे रहे परन्तु कुछ-कुछ विचित्र सा उन्हें भी लगा।

शांता ने बातों का रुख यहां से एकदम ऐसा बदला कि सब मामला ही बदल गया। एकदम नई चहल-पहल दिखलाई देने लगी। कमला का विषय छिड़ गया और रशीदा भी शांता बहिन के साथ मिलकर अमरनाथ जी से चुटकियाँ लेने लगी।

"कमला पर यह आज भी प्राण देते हैं शांता बहिन! शायद आप नहीं जानतीं।" एक तिरछी नज़र अमरनाथ जी के मुख पर फेंक कर रशीदा बोली।

"जिसे एक बार जीवन में प्यार की दृष्टि से देखा हो रशीदा बहिन! उसे बिलकुल भुलाना असम्भव हो जाता है। कमला को एक दिन अमरनाथ भय्या के हृदय का सम्पूर्ण प्यार प्राप्त था।" गम्भीरता पूर्वक नयनों में उपहास की रेखा लेकर शांता ने कहा।

"तो शांता बहन तुम भी अब मेरे साथ......।"

"इसमें साथ की क्या बात है?" बीच ही में अमरनाथ जी की बात काट कर रशीदा ने कहा। सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है। फिर आप भी तो मना नहीं कर सकते इस बात को।" रशीदा बोली।

"मेरी बात कुछ न पूछो रशीदा! मेरे दिल में आज भी कमला के लिये स्थान है। जो स्थान वह बना चुकी है वह ज्यों का त्यों रहेगा, उसे हिलाया भी नहीं जा सकता। मेरे और कमला के विचारों में आकाश-पाताल का अंतर हो गया, यही कारण है कि हम दोनों का इस जीवन में मेल होना कठिन है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं उसका सम्मानन करूं या वह मेरा सम्मान न करती हो। जहां तक व्यक्तिगत सम्मान का सम्बन्ध है वह सर्वदा ज्यों का त्यों बना रहेगा परन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध के लिये सिद्धांतों का खून नहीं किया जा सकता। जीवन से सिद्धांत का मूल्य कहीं अधिक है। सिद्धांत एक बार बनता है और एक बार मिट कर फिर बन नहीं सकता परन्तु जीवन उस सिद्धांत की दीवार को खड़ी करने के लिये एक ईंट के समान है। एक दीवार में अनेकों ईंटें चुनी जाती हैं।" अमरनाथ जी बोले।

बातों ही बातों में इतनी गम्भीरता आजायेगी इसका ध्यान शांता को नहीं था। वह गम्भीर वातावरण को इस समय उपस्थित नहीं होने देना चाहती थी इसलिये एक दम बात बदल कर फिर कह उठी, "अच्छा रशीदा बहिन इन बातों को अब जाने दो। मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ कि यदि मैं तुम्हारे रमेश भय्या को एक दावत दूं तो क्या वह उसमें आना पसंद करेंगे?"

"क्यों नहीं? आपकी दावत में वह अवश्य आयेंगे।" रशीदा ने कहा और अमरनाथ जी ने भी अपनी अनुमति दी। दावत की तारीख़ के विषय में अनिश्चय रहा क्यों कि वह रमेश भय्या से पूछ कर ही निश्चत् की जा सकती थी।

इसके पश्चात् रशीदा और अमरनाथ जी ने बिदा ली और दोनों उसी प्रकार मुस्कुराते हुए जिस प्रकार आये थे, चले गये। शांता काफ़ी देर तक इन्हें अपने द्वार पर खड़ी देखती रही। अन्त में जब एक कोने वाले मकान की आड़ में यह लोग आ गये तो शांता भी कुछ गुन-गुनाती हुई अपने मकान के अन्दर चली गई।

(२९)

कमला और आज़ाद दोनों परेशानी की दशा में बैठे थे क्योंकि उनके सब करे धरे पर पानी फिर चुका था। हड़ताल टूट गई, रामू मांगे और करमसिंह को निकाल दिया गया और अब कार्यालय में कोई उनका अपनी आदमी न रहा। इस छोटी सी हड़ताल के टूट जाने से कॉम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ताओं पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और जो नये-नये पार्टी के मुल्ला मूंड़े गये थे उनके तो सब हौसले ही पस्त हो गये।

"मैंने इसीलिये तुमसे पहिले कहा था कमला! कि यदि हड़ताल में ही हाथ डालना है तो पहिले किसी बड़ी चीज़ पर हाथ डालो। दिल्ली क्लाँथ मिल्ज़ में हमारे काफ़ी कॉमरेड हैं। वहाँ सुगमता से सफलता मिल सकती है।" आज़ाद बोला।

"नहीं, नहीं, नहीं," झल्ला कर कमला ने कहा, "इन्सान-कार्यालय को मैं स्वाहा करके छोड़ूंगी। मैं इसे समाप्त कर दूंगी। जला कर ख़ाक कर दूंगी।" और उठ कर कमला कमरे में मारे रोष के इधर-उधर घूमने लगी।

आज़ाद ने शान के साथ अपना सिगार सुलगा लिया। दो लम्बे-लम्बे कश खींच कर चक्करदार धुँआ कमरे की छत की तरफ़ छोड़ा। वातावरण बिलकुल शांत था और दोनों में से एक शब्द भी कोई नहीं बोल रहा था। जब दोनों को इसी प्रकार मौन दशा में काफ़ी समय होगया तो आख़िर कमला ही बोली, "आप

ने दो दिन से खाना नहीं खाया और मुझे भी भूख लगी है। चलो खाना खा आयें। इस समस्या पर फिर बैठकर विचार करेंगे।"

"परन्तु खाना खाने चलेंगे कहाँ। पास तो एक पाई भी नहीं है।" आज़ाद ने मुस्कुराते हुए कहा।

"यह मैं जानती हूँ। आप उठिये तो सही, फिर विचार करेंगे कि कहाँ जाना है?" कमला बोली और फिर उसने शीशा लेकर पहिले अपने पट्ठे सँवारे और फिर ज़रा पाउडर का डिब्बा लेकर मुँह को चमकाया; होठों पर सुर्खी भी लगाई और बस पैंट पहन कर हैट लगा लिया।

कमला का यह वेश आज़ाद को बहुत प्रिय हो गया था और वह उसके हृदय की साकार प्रतिमा बन गई। फिर दोनों ने अपनी साइकिलें संभाल लीं। दिल्ली दरवाज़े से निकल कर इरविन हॉस्पिटल के सामने जब पहुंचे तो आज़ाद ने धीरे से पूछा, "क्या शांता बहिन के यहाँ चलना है?"

कमला ने धीरे से "हाँ" कह दी।

आज़ाद ज़रा ठिठका परन्तु फिर साइकिल के पैडिल उसी रफ़्तार से मारने शुरू कर दिये और दोनों थोड़ी ही देर पश्चात् माता सुन्दरी रोड को पार करके शांता बहिन के मकान पर पहुँच गये। दरवाज़ा बन्द था। कमला ने कुन्डी खट-खटाई तो पहाड़ी नौकर निकल कर आया। यह इन लोगों को देख कर एक दम सकपका गया क्योंकि पिछले ही दिन यहाँ पर इनकी तालाशी के लिये पुलिस आई थी और शांता बहिन इस समय इसी काम के लिये पुलिस स्टेशन पर गई हुई थीं।

"क्या बात है रे पहाड़ी?" कमला ने पूछा "तू इतना डर क्यों रहा है? काँपता क्यों है?"

"सरकार कल पुलिस आपकी तालाश में यहाँ आई थी। कोई सरदार करम-सिंह हैं उन्होंने यह सूचना पुलिस को दी थी कि आप आम तौर पर शांता बहिन जी से मिलने आती हैं। पुलिस के साथ सरदार करमसिंह भी था क्योंकि करमसिंह को पुलिस ने हिरासत में लिया हुआ था।" पहाड़ी ने उत्तर दिया।

"फिर!" आज़ाद ने ज़रा आंखें चढ़ा कर पूछा।

"फिर क्या सरकार! तमाम घरकी तालाशी ली और फिर पुलिस चली गई। हमने साफ़ मना कर दिया कि वह यहाँ पर एक अर्से से नहीं आतीं। शांता जीजी ने भी कह दिया कि वह पहिले अमरनाथ जी के साथ आया करती थीं परन्तु अब तो कितने ही दिन से उनके दर्शन नहीं हुए।" पहाड़ी बोला।

"अच्छा अब यह बतलाओ कि क्या तुम्हारे पास कुछ खाने के लिये तय्यार है ?" कमला ने शीघ्रता से पूछा।

"जी हां, आप लोग अन्दर आ जाइये, मैं द्वार बन्द किये देता हूँ। कहीं कोई आस-पास का व्यक्ति जाकर सूचना न दे दे।" पहाड़ी ने कहा।

दोनों अन्दर तो अवश्य आगये परन्तु कुछ भय उन्हें भी लगने लगा था इस स्थान पर। कमला ने पहाड़ी से कहा, "देखो जो कुछ भी बना है वह एक थाल में रख लाओ और हां देर न करना हमें बहुत शीघ्र जाना है।"

"जल्दी तो सरकार आपसे अधिक मुझे है।" कह कर वह दौड़ा हुआ रसोई घर में चला गया और आनन-फानन में एक थाल के अन्दर दो सब्ज़ी और बहुत सारी चपातियाँ ले आया। दोनों ने खूब पेट भर कर खाना खाया और चलते समय पहाड़ी नौकर से कह गये कि शांता बहिन से हमारा नमस्कार कहना और कहना कि दो दिन के भूखे थे दोनों केवल इसलिये यहां उन्हें कष्ट देने के लिये आना पड़ा।

शांता कमला और आज़ाद के चले जाने के पश्चात् घर लौटी। शांता का मन इस समय विचित्र प्रकार की परिस्थितियों में झूल रहा था। कभी-कभी उसके मन में आता कि उड़कर रमेश बाबू के पास पहुँच जाये परन्तु इस प्रकार उसका जाना उचित नहीं होगा इसीलिये वह अपने मन को मार कर शांत रह गई और प्रतीक्षा करने लगी उस शुभ घड़ी की कि जब रशीदा उसके पास आकर दावत की स्वीकृति की सूचना देगी।

एक दिन निकल गया रशीदा नहीं आई।

दो दिन निकल गये रशीदा नहीं आई।

तीसरा दिन भी व्यतीत होने ही वाला था कि संध्या समय शांता ने रशीदा को अकेले ही साइकिल पर अपने मकान की ओर आते देखा। शांता अपने को सँभाल न सकी और उस शुभ सूचना को लेने के लिये मकान से बाहर अपने छोटे से पार्क में आकर खड़ी हो गई।

"जीजी आज तो बस जान बच ही गई" साइकिल से उतर कर हाँपते हुए रशीदा ने कहा।

"क्यों ?" साईकिल संभालते हुए शांता ने पूछा और साइकिल एक तरफ़ रख कर रशीदा को प्यार से अपनी गोद में भर लिया और स्नेह पूर्वक पूछा "कहीं चोट तो नहीं आई रशीदा ?"

"बस यही गनीमत हुई। ड्राईवर बहुत ही होशियार था नहीं तो जीजी आज आपकी रशीदा बस गई थी, हमेशा के लिये।" रशीदा स्नेह पूर्वक शांता से लिपट कर बोली और इस प्रकार शांता से लिपट कर उसने इतना अपनापन अनुभव किया कि मानो वह अपनी मां के कलेजे से लिपट रही हो। वह इतनी भयभीत सी हो चुकी थी कि कितनी ही देर तक यों ही लिपटी रही और इसी प्रकार शांता उसे संभाले हुए लाकर पंखे के नीचे पलंग पर बैठ गई और फिर धीरे से रशीदा के माथे को सहलाते हुए पलंग पर लिटा दिया।

कुछ देर में जब रशीदा का मन स्वस्थ हुआ तो वह बोली, "आज पत्र निकलता है इसलिये उन्हें तो अवकाश मिला नहीं, मुझे अकेले ही आना पड़ा। मैंने सोचा कि साइकिल पर ही चली चलूं।" रशीदा बोली।

"तुम्हें उस दिन भी मैंने साइकिल पर लड़-खड़ाते देख कर कहा था कि तुम साइकिल पर मत चला करो परन्तु तुम इतनी ज़िद्दी हो कि मानती ही नहीं।" दुखी होते हुए प्यार से रशीदा के सिर पर हाथ फेर कर शांता ने कहा और फिर धीरे-धीरे उँगलियाँ डाल कर रशीदा के बाल सहलाने लगी। रशीदा ने भी प्यार में आकर कुछ क्षण के लिये आँखें मींच लीं और फिर वह स्वस्थ होकर अपने चंचलपन से एक दम उछलकर बैठी हो गई।

इस समय तक पहाड़ी नौकर चाय लेकर आ गया था और रशीदा ने एक-दम अपनी चाय बना कर प्याली होठों से लगा ली और फिर अपनी कटीली आंखें इधर-उधर मटका कर बोली, "अब जान में जान आई जीजी! अब जान में जान आई। पुराने ज़माने के लोगों के बीच में यदि बैठ जाओ जीजी! तो जितना जी चाहे चाय की बुराइयाँ सुन लो परन्तु आज के युग की तो यह प्राण बन गई है। तुम जानती हो भला जीजी कि इसका क्या कारण है?" रशीदा ने चपलता पूर्वक आंखें घुमाकर कहा।

"मैं तो यह सब कुछ नहीं जानती रशीदा!" गम्भीर सा मुँह बना कर एक कनखी से मुस्कुराते हुए शांता ने कहा।

"नहीं! आप जानती सब कुछ हैं शांता बहिन! परन्तु आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं कि इसका कारण मैं ही बतलाऊं। तो आप सुनिये मैं ही बतलाती हूँ। यदि आप मेरे विचार से सहमत न हों तो मेरी ग़लती को ठीक कर सकती हैं। प्रत्येक मध्यम वर्ग के व्यक्ति को खाने और पानी पीने के अतिरिक्त किसी ऐसे पेय पदार्थ की आवश्यकता होती है जो जीवन में कुछ उत्तेजना ला सके। प्राचीन काल का मध्यम वर्ग अपने बच्चों को, अपने मेहमानों को, और स्वयं

अपने परिवार को बहुत सुगमता पूर्वक दूध पिला सकता था, एक बार, दो बार और विशेष अवसरों पर तीन बार भी। मेरे अपने परिवार में यही सब कुछ होता हुआ मैंने देखा था जीजी ! परन्तु आज के युग में इस प्रकार प्रचुरता के साथ दूध नहीं मिल सकता। आज के युग की आय प्राचीन युग की आय से बहुत घट चुकी है, यदि जीवन में प्रयोग करने वाली सामग्रियों की मंहगाई की ओर ध्यान दें तब।

"बच्चे पैदा होना और मेहमानों का घरों पर आना इन दो बातों में कोई कमी नहीं हुई बल्कि निश्चित रूप से उन्नति ही हुई है इस आज के युग में। इसलिए ऐसी वस्तु की आवश्यकता इस मध्यमवर्ग को हुई जो रोटी और पानी के अतिरिक्त जीवन में प्रयोग की जा सके और इस वस्तु का स्थान मिल गया चाय को। चाय आज उसी स्थान पर प्रयोग की जाती है जिस स्थान पर आज से पंद्रह वर्ष पूर्व दूध का प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिये आप बारातों को ले लीजिये, दावतों को ले लीजिये, अपने जीवन के प्रातःकाल और सायंकाल को ले लीजिये, बच्चों के लिये ले लीजिये, यहां तक कि सबको चाय दी जाती है केवल उन दूध पीते बच्चों को छोड़ कर।" इन अवसरों पर पहिले दूध का ही प्रयोग होता था। कहती-कहती रशीदा एकदम चुप हो गई मानो उसे जो कुछ कहना था वह कह चुकी।

शांता जब कुछ देर तक कुछ नहीं बोली तो रशीदा ने उन्हें झंझोड़ कर कहा "क्यों जीजी ! क्या आपको मेरा चाय-प्रचार का विश्लेषण पसंद नहीं आया ?" और कह कर धीरे से मुस्कुरा दी।

"रशीदा !" कह कर शांता ने अपना एक हाथ रशीदा के सिर पर और दूसरा रशीदा की ठोड़ी पर रखा और हँस कर बहुत प्यार से बोली, "तेरी छोटी सी खोपड़ी में क्या कुछ भरा पड़ा है, मानो संसार की हर वस्तु तेरे लिये विश्लेषण की ही वस्तु है। किसी वस्तु को केवल देखकर भी आनंद लाभ कर लिया करो। हर वस्तु का विश्लेषण करना अच्छा नहीं होता। जीवन का लक्ष्य है आनंद, और मैं कहती हूँ आनंद ही ईश्वर है। आनंद और ईश्वर की प्राप्ति के लिये जानती हो प्रथम वस्तु है संतोष ! जब तक संतोष आदमी के पास नहीं है वह जीवन में सुखी नहीं रह सकता और यदि वह सुखी नहीं हो सकता तो उसके लिये सब सम्पदायें व्यर्थ हैं।"

"लेकिन मैं तो कॉम्यूनिस्ट नहीं हूँ जीजी ! फिर आप मुझे क्यों इस प्रकार की शिक्षा दे रही हैं ?" बहुत ही चतुरता से रशीदा ने शांता की भावना को

पहिचाना और जिस भाव को शांता व्यक्त करना चाहती थी जब उसने देखा कि रशीदा उसे पहिचान गई तो शांता को रशीदा के चातुर्य से अत्यंत आनंद मिला और वह एक दम गद-गद होकर रशीदा से लिपट गई, "तुम सचमुच बहुत चतुर हो रशीदा ! मैंने यह शब्द केवल इसलिये कहे थे कि मैं आज अपनी रशीदा के चातुर्य की परीक्षा लेना चाहती थी। मेरी रशीदा इस परीक्षा में पूर्ण अङ्कों से पास हुई इसके लिये उसे बधाई देती हूँ।" बहुत स्नेह पूर्वक शांता ने कहा।

शांता के इन मधुर शब्दों ने रशीदा के कानों, मन तथा हृदय में अमृत ढ़ाल दिया। शांता के मुख से अपनी योग्यता का प्रमाण-पत्र पाकर रशीदा आज फूली नहीं समा रही थी। उसका हृदय बार-बार अपनी विजय पर उछलने लगता था और उसे ऐसा लगता कि मानो उसने अपना लक्षित धन प्राप्त कर लिया। रशीदा का एक दम स्वप्न सा टूटा तो अपने को शांता की गोद में पड़ा हुआ पाया और शांता उसे प्यार से सहला रही थी।

"यह क्या हुआ जीजी ?" एक दम खड़े होते हुए रशीदा ने कहा।

"घबराओ नहीं," शांता ने प्यार से बोली। "तुम्हें यों ही चक्कर सा आ गया था और तुम कुछ स्वप्न सा देख रही थीं।" शान्ता बोली।

"यही बात है जीजी !" आँखें मलती हुई रशीदा बोली, "मुझे कुछ नींद की सी घुमेर आ गई थी और मैंने बहुत प्यारा सपना देखा।" रशीदा आँखें मलती हुई कहने लगी।

"तुम चाय पीती-पीती अचानक एक ओर को गिर गईं परन्तु मैंने तुम्हें प्यार से संभाल कर अपनी गोद में लिटा लिया और धीरे-धीरे तुम्हारे कोमल बदन को सहलाती रही।" शांता ने कहा।

रशीदा का रोम-रोम स्नेह में कंपायमान हो उठा ! उसके हृदय में एक ऐसे उल्हास की भावना भर गई कि मन-मयूर नाचउठा और जीवन संगीतमय हो गया

"हां मैं चाय पर बातें कर रही थी बहन शांता ! आपको पसन्द आया न मेरा विश्लेषण !" एक दम स्वस्थ होकर रशीदा बोली।

"हां पसंद आया।" शांता ने उत्तर दिया।

रशीदा ने चाय की एक प्याली और बनाई और फिर बोली "अच्छा बहन ! आज का बहुत सा समय तो यों ही व्यर्थ की बातों में निकल गया परन्तु आज मैंने आपके घर पर बहुत आनन्द लाभ किया, मैं सच कहती हूँ। ऐसा आनन्द लाभ मैं केवल अपने भय्या के घर पर ही कर सकती हूँ अन्य किसी स्थान पर नहीं।" रशीदा स्वाभाविक सरलता से बोली।

शांता ने मन ही मन कहा—रशीदा तेरी इच्छा पूर्ण हो।

"और अपनी बहन के घर नहीं ?" मुंह बनाकर शांता बोली।

"क्यों नहीं ? यह तो प्रत्यक्ष ही किया है। हां मुझे आपको अब वह सूचना देनी है जिसके लिये मैं आई हूँ। भय्या ने आपकी दावत का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है और वह कल संध्या को यहां आयेंगे।" रशीदा ने मुस्कुरा कर कहा ?

"कल संध्या को ?" एक बार दुहरा कर शांता ने पूछा।

"हां जीजी ! कल संध्या को छै बजे वह और रमेश भय्या आ जायेंगे। यदि आप कहें तो मैं कुछ पहिले आ जाऊँ।" रशीदा हंसकर बोली।

"अवश्य ! तुम्हें तो पहिले आना ही होगा। यदि तुम पहिले नहीं आओगी तो मेरे पास यहां प्रबन्ध करने के लिये और कौन है ? छोटी बच्ची को मैंने होस्टल में छोड़ दिया है क्योंकि यहां रहकर उसकी पढ़ाई नहीं हो पा रही थी।" शांता ने आत्मीयता पूर्वक कहा।

"तो अब मुझे आप आज्ञा दीजिये और मैं कल टीक दो बजे आजाऊँगी अन्धेरा पड़ चला है और यह साईकिल मेरी जान को है।" साईकिल की ओर संकेत करके रशीदा बोली।

"नहीं, इस साईकिल पर मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी। मैं इसे अपने चपरासी के हाथ भिजवा दूंगी और चलो तुम्हें बस पर बिठला दूं।" कहकर शांता स्वयं रशीदा के साथ बस तक जाने को उद्यत हो गई। रशीदा भी मना न कर सकी और धीरे-धीरे वह शांता के साथ हो ली। वह तो इस समय साइकिल से वैसे ही पिंड छुड़ाना चाहती थी।

रेलवे लाइन पार करके माता सुन्दरी रोड के किनारे पर जाकर दोनों खड़ी हो गईं। वहां भी जब तक बस नहीं आई इधर-उधर की बातें चलती रहीं। रशीदा का चंचलपन बार-बार एक मुस्कुराहट ला देता था शांता के होंठों पर। शांता का स्वभाव था कम बोलना और रशीदा का स्वभाव था खूब बोलना। रशीदा के सामने कुछ भी क्यों न आ जाये वह उस पर अपना रिमार्क पास किये बिना नहीं रहेगी और साथ ही यह भी असम्भव था कि कोई वस्तु सामने आकर उसकी दृष्टि से छुपी रह सके। यदि वह बाज़ार में चलती थी तो प्रत्येक दूकान की प्रत्येक विशेषता की ओर उसका ध्यान जाता था — किसी को कोट पहिनने का सलीक़ा नहीं तो किसी को साड़ी नहीं बाँधनी आती—यह रशीदा के साधारण रिमार्क होते थे परन्तु होते थे बहुत नपे-तुले। यदि कोई स्त्री सामने आई तो

उसके सिर की माँग से लेकर पैर के अँगूठे के नाखून तक की सुर्खी पर रशीदा की पनी दृष्टि जा पड़ती थी और कुछ न कुछ अपने उपहास के लिये सामग्री वह खोज ही निकालती थी।

इतने में बस आ गई और रशीदा लपक कर उसमें चढ़ गई। चलते समय रशीदा ने शाँता को नमस्कार कहा और शांता ने प्यार से नमस्कार का उत्तर नमस्कार से दिया। बस छूट जाने पर शांता अपने मकान पर लौट आई और आकर एकान्त में बैठ गई। न जाने कितनी रमेश बाबू की प्राचीन स्मृतियां उसके विचारों में आकर झूमने लगीं। शाता धीरे से अपने पलंग पर लेट गई और कुछ क्षण के लिये विचारों ही विचारों में उसकी आँखें मिच गईं।

शांता ने एक स्वप्न देखा कि वह और रमेश बाबू अनारकली वाले रमेश बाबू के कमरे में बैठे बातें कर रहे हैं। रमेश बाबू कह रहे हैं, "शांता! तुम्हारे पिता व्यर्थ का लोभ कर रहे हैं। अब लाहौर में अधिक रहना सम्भव नहीं हो सकता। तुम लोगों को शीघ्र लाहौर छोड़ कर दिल्ली चला जाना चाहिये। कमीशन की रिपोर्ट सुनाने से पूर्व ही लाहौर छोड़ देना उचित है।" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"परन्तु मैं क्या कर सकती हूँ रमेश बाबू? वह तो लाहौर छोड़ने पर राज़ी नहीं। कहते हैं—क्या है यदि पाकिस्तान भी बन गया तो पाकिस्तान में ही रह लेंगे? यहाँ पर कोई हब्शी तो नहीं रहेंगे, रहेंगे तो इन्सान ही। इन्सानों में इंसानियत कब तक न आयेगी?" शाँता ने मेज़ पर कोहनिया टेक कर अपनी ठोड़ी को अपने हाथों पर सँभालते हुए कहा।

"यह तो उनका विचार ठीक है शाँता! परन्तु अपने मिट जाने के पश्चात् यदि उनमें इंसानियत आई भी तो क्या लाभ? हम लोग साधारण शक्ति के व्यक्ति हैं। इस तूफ़ान का वेग सहन करना हमारी शक्ति की सीमा से दूर की बात है; इसे हम नहीं संभाल सकते। शक्ति वहाँ पर देखी जाती है जहां बराबर की जोट हो। यहाँ शक्ति आज़माना मैं नहीं समझता कि किसी प्रकार भी उचित है।" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा। वह चिन्तानिमग्न होकर बैठ गये और उसी रात्रि को वह काँड हुआ कि जिसने शांता को उसके माता-पिता, रमेश बाबू और सभी से दूर हटा कर दुनियाँ के एक कोने में अकेला लाकर पटक दिया और कहा कि शांता अब तुम्हें किसी का सहारा नहीं, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो, किसी के आश्रय की राह मत देखो, वरना जीवन में असफल रहोगी।

असफल शांता नहीं रह सकती। उसने अपना स्वतन्त्र मार्ग खोज निकाला और यहाँ भी एक ऐसा परिवार स्थापित कर लिया कि जिसमें वह अपनेपन का अनुभव कर सके। अपने जीवन के सभी अभावों की पूर्ति वह कर सकी परन्तु रमेश बाबू ......वह जीवन का वह अभाव था कि जिसकी पूर्ति करना शांता के लिए असम्भव था। न रमेश बाबू जैसा व्यक्ति ही कोई उसकी दृष्टि में आया और न हृदय का सौदा ही दो बार हो सकता था। शांता के जीवन में लाहौर से आने के पश्चात् यह नहीं कि कोई आदमी आया ही न हो परन्तु वह सभी शाँता को ऐसे मालूम पड़ते थे कि रमेश बाबू के सम्पूर्ण जीवन के एक कण मात्र भी नहीं थे।

जिस समय मेज़ के दोनों तरफ़ बैठे रमेश बाबू और शाँता यह बातें कर रहे थे तो उसी समय रमेश बाबू ने कहा "शाँता आज मेरा दिल न जाने कुछ अशुभ सोच रहा है। शायद जीवन में हम तुम फिर कभी न मिल सकें। इस लिये लो मैं यह अपना रुमाल तुम्हें भेंट स्वरूप देता हूँ।" और इतना कहकर रमेश बाबू ने शाँता के नेत्रों से टपकने वाले दो मोटे मोटे अश्रु बिन्दुओं को उस रुमाल में समेट कर रुमाल शाँता के हाथ में दे दिया। रुमाल पर लिखा था "रमेश शांता, शांता-रमेश।" साधारण काली स्याही में यह रमेश बाबू ने स्वयं लिख दिया था।

शांता ने भी अपने हाथ की अंगूठी, जिस पर शांता लिखा था, अपनी उंगली से निकाल कर रमेश बाबू की कनकी उंगली में पहना दी और एक शब्द भी मुख से नहीं बोले। इसके पश्चात् काफ़ी दूर तक रमेश बाबू शांता को छोड़ने गये और फिर तांगे में बिठला कर बोले, "अच्छा शाँता! लो नमस्कार! यदि भगवान ने चाहा तो फिर मिलेंगे।"

तांगा चल पड़ा और दो बार आंखों से टपकते हुए अश्रुओं को उसी रुमाल में बटोरते हुए रमेश बाबू ने देखा। रमेश बाबू भी उस दिन अपने अश्रु प्रवाह को न रोक सके। रमेश बाबू एक पत्थर की चट्टान के समान सख्त आदमी थे परन्तु आज के इस विछोह पर वह भी व्याकुल होकर द्रवित हो उठे। हृदय में एक पीड़ा का अनुभव किया और अनुभव किया कि वह जीवन अब एकाकी हो गया, आश्रय विहीन, ममता विहीन, करुणा विहीन और अन्त में साथी विहीन।

शांता की आँखें खुलीं तो वह पलंग पर अकेली लेटी हुई थी। द्वार खुले पड़े थे और चारों ओर अन्धकार छा चुका था। पहाड़ी नौकर ने अन्दर आकर

बत्ती जलाते हुए कहा "ओहो बीबी जी ! आप यहां सो रही थीं; मैं तो समझ रहा था कि आप उन्हीं के साथ कहीं घूमने चली गईं जो संध्या को आई थीं। खाना तय्यार है, यदि आज्ञा हो तो ले आऊं।"

"अभी नहीं।" आँखें मलते हुए शाँता ने कहा।

"और हां एक बात तो मैं आप से कहनी भूल ही गया था। आप के आने से पूर्व वह दोनों भी आये थे।" संकेत से पहाड़ी ने कहा।

"वह दोनों कौन रे ? कमला और..."

"हां बीबी जी।" बीच में ही पहाड़ी बोल उठा। "बेचारे दो दिन के भूखे थे। मैंने उन्हें बिठलाकर खाना खिला दिया।"

पहाड़ी की बातें सुनकर शाँता दंग रह गई और अन्त में मुस्कुराकर बोली, "तुमने बहुत अच्छा किया।" फिर करवट लेकर एक अंगड़ाई ली और तुरन्त ही पलंग पर से खड़ी भी हो गई।

घर से बाहर सन्नाटा था। सड़क पर म्यूनिसिपल बोर्ड की बत्तियाँ जल गई थीं और उनका प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। शांता घर से निकल कर बाहर सड़क पर आ गई और अपने मस्तिष्क की दशा को ठीक करने लगी। बाहर हवा अच्छी चल रही थी और शांता के अपने मकान में खड़ी हुई रात की रानी बहुत ज़ोर के साथ महक रही थी। उसकी सुगंधि हवा में मिल कर चारों दिशाओं को महका रही थी। इन मकानों के सामने वाली छोटी सी सड़क यह बिलकुल एकांत में है, मानो घूमने के ही लिये बनी है; क्योंकि इस पर कभी भीड़ तो हो ही नहीं सकती और ना ही इधर उधर के आदमी ही आ सकते हैं। आगे जाकर यह सड़क बन्द हो जाती है और इसका सम्बन्ध केवल इस पंक्ति के पांच मकानों तक सीमित है।

शांता ने इधर से उधर तक चारपांच चक्कर लगाये और फिर वह अपने घर के अन्दर चली गई।

(३०)

रमा को रमेश बाबू का अभाव बहुत खला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मंसूरी में अब उसका कोई परिचित ही नहीं रहा। कहां गया वह टेनिस खेलने जाना, कहां गया वह बिलियर्ड रूम में जाना, समाप्त हो गया वह स्केटिंग का प्रोग्राम भी, सिनेमा घरों को तो रमा के दर्शन भी दुर्लभ हो गये और संध्या समय शानदार रेस्टोरेन्टों में आने वाले मन चले नौ जवानों की तो मानो आंखें ही प्यासी तरसने लगीं।

अभी पिछले ही दिन कुछ युवक एक रेस्टोरेन्ट में बैठे बातें कर रहे थे विचित्र आकर्षण था उसमें। एक अनुपम सौंदर्य और यौवन की मादकता थी होटल में बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा।

"और सचमुच उसकी गति में किसी को भी अपनी ओर खींच लेने की क्षमता थी।" दूसरे ने कहा।

"लेकिन कुछ दिन से कहीं पर नज़र ही नहीं पड़ती। शायद वह लोग मंसूरी छोड़ कर देश चले गये हैं।" तीसरा तनिक और आगे बढ़कर बोला।

"हो सकता है।" चौथे ने कहा।

और फिर इधर-उधर की बातें छिड़ गईं क्योंकि आजकल के होटलों में इस प्रकार की लड़कियों की कोई विशेष कमी नहीं रहती।

रमा को अब घर से बाहर जाना अच्छा नहीं लगता। पिताजी के साथ भी बहुत ज़िद करने पर कभी-कभी घूमने चली जाती है, वह भी मौन, रास्ते भर एक शब्द भी बिना बोले। कभी जब पिता जी पूछ ही बैठते हैं कि "बेटा! रमेश बाबू ने कोई पत्र नहीं लिखा वहां जाकर" तो साधारणतया उत्तर दे देती है "किसी काम में फंस गये होंगे। काम पर जाकर आदमी को वैसा अवकाश कहां मिलता है जैसा यहां पर रहता है।" इसके उत्तर में डाक्टर साहेब फिर कहते "ठीक ही तो है बिटिया! तुम देखती नहीं थीं कि मेरा हर दम मरीज़ों के मारे नाक में दम रहता था।" और फिर दोनों मौन दशा में घूमते हुए दूर दूर आगे निकल जाते।

इसी प्रकार रमा की जीवन चर्या चल रही थी। किसी प्रकार धीमे धीमे मन को मार मार कर। जीवन में न उत्साह ही था और न वह पुराना ताज़ापन। यौवन की मस्ती इस विचार शैथिल्य में पड़ कर ऐसी हो गई थी कि मानो ताज़े उगे हुए लह-लहाते खेत को पाला मार गया हो। उभार ज्यों का त्यों क़ायम था परन्तु उस उभार में जवानी की मस्ती और मद होशी का जीवन नहीं था। फिर था क्या? कुछ नहीं। रमा एक मिट्टी का पुतला थी जिसे कलाकार ने खूब बनाया था, दर्शक केवल उसे देख कर यही कह सकता था।

आज रमा बड़ी ही बेचैनी से डाकिये का इन्तज़ार कर रही थी और डाकिया आया भी, पत्र भी लाया, वह पत्र भी रमेश बाबू का था और था भी उसके ही नाम परन्तु उस पत्र को खोल कर रमा को बहुत निराशा हुई और अंत में किसी

प्रकार मुस्कुरा कर रमा ने उसे मेज़ के किनारे पर रख दिया और स्वयं शांति के साथ पलंग पर लेट गई। रमा को इस समय केवल यही तसल्ली थी "कि चलिये उन्हें हमारी याद तो है।"

पत्र में लिखा था—

रमा
हड़ताल समाप्त हो गई।
पिताजी को नमस्ते।
रमेश—

पत्र क्या तार था और तार से भी कुछ अधिक ही कहा जाये तो अच्छा रहे। यह भी नहीं कि उसमें 'प्रिय रमा' ही लिख दिया होता या अन्त में केवल इतना ही लिखा होता कि 'तुम्हारा रमेश'। किस की रमा और किसके रमेश बाबू ? रमा ने समझ लिया कि उसने यह एक स्वप्न देखा था। कोई स्वप्न एक रात्रि की नींद में समाप्त हो जाता है, यह तीन महीने में समाप्त हो गया। कोई कोई स्वप्न जीवन भर साथ दे देता है परन्तु होता सब कुछ स्वप्न ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

रमा ने एक बार पत्र को फिर उठाया, उलट-पलट कर देखा, किनारा रगड़ कर देखा कि कहीं इसकी पीठ पर तो कुछ और नहीं लिखा है। कहीं यह पत्र दुहरा होकर चिपक तो नहीं गया है परन्तु नहीं, कुछ नहीं, वहीं सब कुछ था, केवल उतना ही पत्र रमेशबाबू ने लिखा था। पहिले तो रमा कुछ नहीं समझ सकी परन्तु वह इतनी चतुर थी कि संसार की प्रत्येक वस्तु को वह अपने लिये समझती थी और इसलिये उसने उस पत्र का अर्थ अपने ही रूप में लगाने का प्रयत्न किया। बहुत सुगमता के साथ उसे उस पत्र को इस प्रकार का होने का कारण मिल गया। रमा काफी देर तक रमेश बाबू के पत्र को हाथ में लेकर बार बार पढ़ती रही।

रमेश बाबू ने न 'प्रिय-रमा' लिखा और न 'तुम्हारा-रमेश' ही। यह सब क्यों ? क्योंकि वह अपनी रमा को पूर्ण रूप से स्वतंत्रता देना चाहता है कि वह अपने रमेशबाबू को जो कुछ भी अपना समझना चाहे बिना संकोच के समझ सके वह जो कुछ भी रमा को समझ चुके हैं वह हृदय की वस्तु है पत्र में लिखने की वस्तु नहीं। रमा को इस पत्र में से रमेश बाबू के महान होने की सूचना प्राप्त हुई और उसने एक क्षण के लिये आँखें मींच कर रमेश बाबू का ध्यान किया।

रात्रि में नित्य की भांति जब पिताजी ने पूछा कि क्या रमेश बाबू का कोई पत्र

आया तो रमा ने प्रसन्नता पूर्वक कहा, "आया है पिता जी ! और उसमें आपके लिये उन्होंने प्रणाम लिखा है।"

"ओह ! मेरे लिये ! अच्छा भाई प्रणाम रमेश बाबू ! तुम यशस्वी हो । लड़का बड़ा ही होनहार है, और बहुत समझदार है। जब बातें करता है तो मानो मुंह से फूल झरते हैं। हर समय हंस मुख, मैंने कभी उसे गम्भीर अथवा उतरे हुए मुख से देखा ही नहीं। क्यों बेटी ? तुम्हारा क्या विचार है ?" रमा के पिता जी ने अपनी छोटी गोल मेज़ के पास पड़ी आराम कुर्सी की पीठ से कमर लगाते हुए कहा।

"ठीक ही है पिता जी ! परन्तु आप उनके नाटकीय ढंग को देख कर शायद यह अनुमान कर गये कि वह हर समय प्रसन्न रहते हैं !" रमा ने पिता जी से प्रश्न करते हुए मुस्कुरा कर कहा।

"मेरा तो यही विचार है बेटी।" साधारणतया डाक्टर साहेब ने कहा। डाक्टर साहेब वास्तव में बहुत ही सीधे सादे धार्मिक वृत्तियों के पुराने चलन के जो कहना वही करना और जो करना वही समझने वाले व्यक्ति थे। जो बात जैसी कही जा रही है उसमें व्यंग्य खोज कर दूसरा अर्थ निकालने का उन्होंने जीवन में कभी प्रयत्न नहीं किया। उनका जीवन एक सरल जीवन रहा और उसी के शीशे में वह संसार को देखने का प्रयत्न करते थे। परन्तु रमा एक वर्तमान काल के कालेज में पढ़ी हुई योग्य, चतुर लड़की थी। जिसे समाज तथा देश, राजनीति तथा धर्म सभी का थोड़ा बहुत ज्ञान था। वह वर्तमान प्रगतिवाद पर भी पत्रों में लेख पढ़ती थी और क्रिकेट के मैच देखने का भी उसे शौक था। सिनेमा से भी प्रेम था तो ड्रामाघरों को भी कृतार्थ करती रहती थी। चतुर होने के नाते हर दिशा में अपना कुछ न कुछ दखल रमा रखती थी। कभी स्टेज पर जाकर यदि कुछ बोलना भी पड़े तब भी वह इस कार्य के लिये चतुर थी क्योंकि उसने अपने कालेज-काल में कई बार वाक् संघर्षों में पारितोष्कि प्राप्त किये थे।

"आपका विचार ग़लत है पिता जी ! रमेश बाबू के विषय में एक सबसे बड़ी बात यह है कि उनका मुख देख कर कोई यह नहीं बतला सकता कि उनके दिल में क्या राज़ है। जिस समय आप उनके मुख पर शांति का साम्राज्य देख रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके हृदय में वड़वानल सुलग रही हो। जिस समय आप उनके नेत्रों में मुस्कान पढ़ रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके नेत्रों में किसी को भस्म करने की शक्ति नृत्य कर रही हो और पल रही हो। जिस

समय तुम उनके नेत्रों में अश्रुधारा देखो तो हो सकता है कि उनके हृदय में आनंद का स्रोत उबल रहा हो। बस यह समझ लो पिता जी ! कि उनको समझना बहुत कठिन है, मैं समझने का प्रयत्न करने पर भी उन्हें इतने दिनों में नहीं समझ पाई।" गम्भीरता पूर्वक रमा ने कहा।

"हां हां यही तो मैं भी कह रहा हूँ बिटिया ! वह बहुत चतुर है, बड़ा योग्य है। मैंने कोई कुछ बुरा तो नहीं कहा उसके लिये।" पिता जी बोले।

पिता जी का यह वाक्य सुन कर रमा लजा गई और उसे यह अनुभव भी हुआ कि वह भावुकता में आकर पिताजी के सम्मुख रमेश बाबू की कितनी प्रशंसा कर गई। रमा का लज्जा के कारण मुख लाल होकर नीचे को हो गया और वह वहां से उठ कर सीधी अपने कमरे में चल गई।

आज रात्रि भर रमा को चैन नहीं आई और वह तुरन्त ही अगले दिन पिता जी से आज्ञा ले देहली के लिये रवाना हो गई। पिता के लाड़-प्यार की पली यह बेटी थी जिसकी स्वतंत्रता में कोई किसी प्रकार का प्रतिबन्ध पिता जी ने नहीं लगाया। रमा की माता की मृत्यु उसी समय हो गई थी जब इसकी आयु केवल तीन वर्ष की थी। तीन वर्ष के पश्चात् उसे जिस आया ने पाला था वही इस समय भी उनके घर में रहती थी।

सायंकाल तीन बजे गाड़ी देहली के स्टेशन पर पहुंची तो रमा ने अपना बिस्तरा कुली से उठवाया और सीधी प्लेफ़ार्म से बाहर निकली। रमेश बाबू का पता उसके पास था। इसलिये बाहर आते ही रमा ने एक टैक्सी ली, और 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट चलने के लिये आज्ञा दी। 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट का एक प्रसिद्ध स्थान था, इसलिये टैक्सी ड्राइवर ने चन्द मिन्टों में इन्हें लाकर 'इन्सान कार्यालय' के सामने खड़ा कर दिया।

गाड़ी ने जिस समय पोर्टिगो के अन्दर आकर हार्न दिया तो नौकर निकल कर बाहर आ गया। रमा ने कार से उतर कर उस नौकर से पूछा, "रमेश बाबू अन्दर है ?"

नौकर ने फिर इसके उत्तर में पूछा, "कौन से बाबू को कहती हैं सरकार ! क्या बड़े बाबू को ?" और इसके उत्तर में साधारणतया रमा ने कहा "हाँ बड़े बाबू को।"

तो नौकर ने कहा "जी अन्दर हैं।" यह जान कर रमा ने अपना कार्ड नौकर को दिया तो रमेश बाबू बड़ी ही उत्सुकता से अपनी लांग सँवारते हुए एकदम बिना चश्मा संभाले ही बाहर दौड़े चले आये। नंगे बदन इस प्रकार

बाहर चला आना रमेश बाबू की एक असाधारण घटना थी जिसे रमा ने भी अनुभव किया और विशेष रूप से अनुभव किया रशीदा बहिन और अमरनाथ जी ने। सब के सब भावुकता से बाहर निकल आये और रमा को सम्मान पूर्वक अन्दर लिवा कर लेगये।

अन्दर आकर सब ड्राईंग रूम में बैठ गये। रमेश बाबू के ड्राइंग रूम में केवल एक चित्र लगा हुआ था बहुत ऊंचे स्थान पर जो हर समय ढका रहता था। किसी का वहां पर इतना साहस नहीं था जो उस चित्र को खोल कर देख सके। खद्दर के कवर वाली छै सोफ़े की कुर्सियां थीं और बीच में साधारण सी मेज़ पड़ी हुई थी गोल जिस पर एक एशट्रे (सिग्रेट की राख डालने का पात्र) रक्खी हुई थी। एक तरफ़ एक चौकी बिछी थी जिस पर एक खद्दर की चादर और ऊपर चटाई बिछी हुई थी। रमेश बाबू इसी पर बैठते थे, और इनके सोने का स्थान भी यही सख्त तख्त था। रमा को रमेश बाबू ने प्यार और मान के साथ अन्दर ले जाकर अपने उसी तख्त पर बिठलाया।

वह तख्त रमेश बाबू का अपना स्थान है यह कमरे के एरेंजमेंट (कायदे) को देख कर रमा को पहचानने में देर नहीं हुई। रमा को लेजाकर अपने स्थान पर बिठलाना यह रशीदा और अमरनाथ जी ने प्रथम बार ही देखा था अपने जीवन में। रमा ने बैठते ही कहना प्रारम्भ कर दिया, "देखो भाई मैं आप लोगों के बीच में एक नई स्त्री आई हूँ। आपके मन में यह उत्कंठा होगी कि आप मेरे विषय में कुछ जानें और मेरे मन में यह उत्कण्ठा है कि मैं आपके विषय में कुछ जानूं।" सब ने सुनना प्रारम्भ कर दिया, "मैंने आप दोनों को पहिचान लिया परंतु आप मेरे विषय में कुछ नहीं जानतीं इस लिये आप मुझे नहीं पहिचान सकेंगी। मैं पिछले तीन महीने मन्सूरी में अमरनाथ जी और रशीदा बहन आपके भाई रमेश बाबू के साथ रही, साथीबनकर—बस यह मेरा परिचय है।" कह कर मुस्कुराते हुए रमा चुप हो गई। रमा के इतने स्पष्ट शब्द सुन कर अमरनाथ जी और रशीदा आश्चर्य चकित से रह गये।

रशीदा और अमरनाथ जी कुछ कुछ रहस्य को समझ भी गये और कुछ समझ भी न पाये। परन्तु कुछ पूछने का साहस उनका न हुआ और उन्हें आज ही अवसर मिला था रमेश भय्या को किसी बराबर वाले के साथ स्नेह पूर्वक बातें करते सुनने का। इस शुभ अवसर को भला वह दोनों कैसे गँवा सकते थे ? इसलिए दोनों शान्त होकर बैठ गये।

थोड़ी देर में रमेश बाबू ने मुस्कुराकर कहा, "बहुत शीघ्रता की आने में रमा !" और रमा का हाथ उटाकर अपने हाथ में ले लिया ।

"जी हां", रमा बोली, "परन्तु वहां दिल जो नहीं लगा ।" रमा ने तनिक आंखें तिरछी करके कहा ।

रशीदा और अमरनाथ जी मन ही मन यह शब्द सुनकर प्रसन्न हो रहे थे कि चलो अच्छा ही हुआ रमेश भय्या को भी दिल की बीमारी लगी ।

"वहां पिता जी अकेले ही रह गये । उनकी सेवा भला इस वृद्ध काल में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन करेगा रमा ! तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें वहां रहने के लिये कहता हे केवल इसी लिए मैं तुम्हें अपने साथ न ला सका था । संसार में कर्तव्य सबसे प्रधान वस्तु है रमा ! यह याद रखो और कर्तव्य से गिरा हुआ मनुष्य मनुष्य नहीं होता ।" रमेश बाबू बोले ।

रमा को जैसे लगा कि वह रमेश बाबू के जीवन में माया जाल बिछा कर नहीं आ सकती त्याग करके आ सकती है । रमेश बाबू के हृदय में कर्तव्य का स्थान प्रथम है । रमा को लगा कि उसका इस प्रकार भावुकतावश वहां चला आना उसकी भूल हुई । तब क्या उसे उसी समय वापस लौट जाना चाहिये ? रमा एक बार मन ही मन तिलमिला उठी परन्तु उसने तुरन्त अपने मन को सम्भाला और बोली, "खैर आप कुछ भी कहिये मैं अब चली आई, यदि कहें तो इसी समय उलटी लौट सकती हूँ !" गम्भीरता पूर्वक रमा ने मुंह बनाकर कहा ।

"तुम भी बड़ी ही विचत्र लड़की हो रमा ! जीवन में आने वाली अपने प्रकार की प्रथम ही लड़की हो तुम । तुम्हें अपना मतलब निकालना है मैं चाहे कुछ भी कहूँ तुम उसमें से अपना अर्थ निकाल ही लेती हो ।" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा और रमा भी मुस्कुरा दी ।

"अच्छा धन्यवाद आपकी हड़ताल वाली सफलता पर ।" रमा ने फिर मुस्कुराते हुए कहा ।

"उस में धन्यवाद की मैं कोई बात नहीं समझता रमा ! क्योंकि कुछ मेरे अपने ही आदमी भाग्यवश भ्रम में पड़ गये थे । उनका भ्रम दूर हो गया और हड़ताल समाप्त हो गई ।" गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू ने कहा ।

"तब क्या वही कारीगर काम कर रहे हैं ?" रमा ने पूछा ।

"हां सब वही, केवल दो को निकालना पड़ा । वह लोग कॉम्यूनिस्ट पार्टी

मैंबर बन गये थे और उपद्रव की जड़ थे। एक उपद्रव की जड़ को मेरे आने से पूर्व ही हमारी रशीदा बहन निकाल चुकी थी।" रमेश बाबू ने कहा।

"चलिये बहुत सुन्दर रहा, कार्य सुगमता से समाप्त हो गया।" रमा बोली।

"सुगमता से तो नहीं होता दिखलाई देता परन्तु हम भरसक प्रयत्न अवश्य करेंगे कि कार्य सुगमता से होता चला जाए, लोक हित के लिए।" रमेश बाबू ने कहा।

"लोक हित का नारा तो कॉम्यूनिस्ट भी लगाते हैं।" रमा ने प्रश्न किया।

"तुमने फिर पार्टी का झमेला छेड़ दिया रमा! आज इस डैमोक्रेटिक सरकार के विधान में यही तो है और क्या है? जो वाद अपने को अधिक संख्या में राय देकर साबित कर देगा वही वाद देश की शासन सत्ता को संभालेगा, और फिर मैं बतलाता हूँ कि शासन सत्ता को वही संभाल सकेंगे जो कर्तव्यों पर आरूढ़ रहेंगे। इसी लिये रमा! मैं जीवन में कर्तव्य-प्रधान रहना चाहता हूँ।

"यह सब कहने का मेरा तात्पर्य यह बिलकुल न समझना कि मेरे जीवन में भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका स्थान है और बहुत ऊँचा है।" रमेश बाबू बोले। रमेश बाबू का यह रूप आज प्रथम बार रशीदा, अमरनाथ जी और रमा ने देखा था।

फिर एक सनक सी में आकर रमेश बाबू कह उठे "चलो अच्छा ही हुआ आज तुम आ गई रमा! क्योंकि जब मैं किसी के यहाँ पर खना खाने जाता हूँ तो मुझे संभालने के लिए एक अन्य व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। पहिले रशीदा मेरी देखभाल कर लेती थी परन्तु आज मैं सोच रहा था कि कौन करेगी; सो तुम आगई।"

"क्यों मैं क्या कहीं चली गई थी भय्या! जो इस प्रकार कह रहे हो?" रशीदा ने मुंह बनाकर कहा। रशीदा का मुंह देखकर रमा मुस्कुरा दी और रशीदा के पास जाकर सोफ़े पर बैठते हुए उसके गले में स्नेह पूर्वक अपना हाथ डाल दिया।

रमेशबाबू कहने लगे "नहीं कुछ नहीं, रशीदा कुछ भी तो नहीं। तू तो नाहक बिगड़ जाती है।" लजाकर रशीदा चुप हो गई और रमेश प्रेम से मुस्कुरा दिये।

रमेश बाबू फिर कहने लगे, "अभी हम लोग एक दावत में चलेंगे। अच्छा हुआ तुम संभाले रहोगी क्योंकि तुमने व्यवस्था करनी मुझे सिखलाई है। कहीं वहाँ जाकर मेरा उपहास न हो। अमरनाथ जी की बहन ने दावत दी है।"

"ओह तब तो घर ही में दावत है।" रमा ने तनिक मुस्कुरा कर कहा और फिर रमेश बाबू के मुख पर देख कर प्रसन्नता से खिल उठी।

एक आनंद का वातावरण छा गया। दावत की प्रसन्नता रमेश बाबू, रमा, रशीदा और अमरनाथ जी के हृदय में समान रूप से थी। सत्य के साथ कुछ-कुछ भ्रम मिला हुआ था जिसके कारण दावत देने और पाने वाला अपनी शक्ति की पराकष्ठा तक नहीं पहुँच सकता था, फिर भी उत्साह दोनों ओर समान रूप से चलरहा था। रशीदा दावत से तीन घण्टे पूर्व ही शांता के घर जा चुकी थी जैसा कि रमेश बाबू जानते थे। रमेश बाबू को यह पता नहीं था कि वह शांता नाम की कोई स्त्री है जिसे अमरनाथ जी जीजी कहते हैं।

समय से पांच मिनट पूर्व कार में बैठकर तीनों व्यक्ति शांता के मकान पर पहुँच गये गये। द्वार पर रशीदा ने ही आकर उनका स्वागत किया और वह उन्हें बठक में ले आई। तीनों को ले जाकर तीन आराम कुर्सियों पर बिटला दिया। कमरा साधारण था परन्तु साफ़ और सुथरा। इसमें तीन कुर्सियां पड़ी थीं और एक कोने में हैडमिस्ट्रैस के काम करने की सुन्दर सी छोटी मेज़ थी। रङ्ग, रोगन, सफ़ाई के विचार से जब रमेश बाबू ने इस कमरे को देखा तो उन्हें अपना वह ड्राइङ्गरूम जिसमें सोफ़ा सैट पड़े थे इस बैठक के सामने तुच्छ प्रतीत हुआ। रमा और अमरनाथ जी बैठ गये परन्तु रमेश बाबू अभी खड़े हुए कमरे को चारों तरफ़ से देख रहे थे।

रमेश धीरे धीरे कमरे के एक किनारे से दूसरे किनारे तक न जाने क्या सोचते हुए गए और फिर वापस लौट आये और फिर सिर को पकड़ कर बैठ गये। शान्ता ने अन्दर से देख लिया था कि यह रमेश बाबू कोई अन्य नहीं उसके अपने वही रमेश बाबू हैं जिनके...बस वह आगे कुछ विचार न कर सकी।

शान्ता ने एक विशेष प्रकार के रसगुल्ले बनाये थे जैसे कि दिल्ली में नहीं बन सकते थे और जिन्हें वह स्वयं बनाया करती थी। रमेश बाबू उन्हें बहुत पसन्द करते थे। शांता को विश्वास था कि वैसा रसगुल्ला उससे बिछुड़ने के पश्चात् रमेश बाबू ने फिर नहीं खाया होगा।

खाना लाकर मेज़ पर सजा दिया गया और रशीदा ने सब के हाथ धुलवा दिये। रमेश बाबू के हाथ पोंछने को शान्ता ने पृथक रूमाल दिया और वह सीधे स्वभाव में हाथ धुलवाने के पश्चात् रशीदा ने रमेश बाबू के हाथ में दे दिया। रमेश बाबू ने साधारण रूप से रूमाल हाथों में ले लिया और हाथ पोंछ कर रूमाल को लिए आगे बढ़ गए। इस प्रकार कुछ भूल जाने की रमेश

बाबू की बान थी इसीलिए उनके साथ रहने वाला व्यक्ति इन्हें इसप्रकार की बातों से बचाता रहता था।

रमेश बाबू ने रूमाल से मुंह पूंछ कर कुर्सी पर बैठते हुए जब रूमाल पर देखा तो उसपर लिखा था 'रमेश-शान्ता, शान्ता—रमेश' रमेश बाबू ने मुट्टी ही मुट्ठी में पढ़ लिया और एमदम वह उचाट हो उठे। मन व्यग्र हो उठा किसी को देखने के लिए और हृदय व्याकुल परन्तु फिर भी रमेश बाबू ने अपनी शक्तियों का सन्तुलन किया और भावना पर विजय प्राप्त किए शान्ति के साथ बैठे रहे।

खाने की प्लेट का प्रत्येक रसगुल्ला कह रहा था कि यह शांता ने अपने हाथ से कढ़ाई में उतारा है। सब खाने के लिये तय्यार हो गये तो रमेश बाबू ने कहा, "अमरनाथ जी! हम लोग उस समय तक भोजन नहीं करेंगे जब तक कि दावत देने वाली आपकी बहन स्वयं आकर हमसे खाना खाने के लिये नहीं कहेंगी।"

जो शब्द इस समय अमरनाथ जी को सम्बोधित करके कहे गये बिलकुल वही शब्द उस समय लाहौर में आज़ाद भय्या को सम्बोधित करके कहे जाते थे। एक शब्द भी कम नहीं था, उन शब्दों में शांता ने निखरे रूप से स्मरण कर लिया।

शान्ता को अन्दर आना पड़ा। वही सीधा सच्चा साधरण वेश। सादी खद्दर की सुफ़ैद धोती परन्तु बहुत बारीक खद्दर की। सुफ़ैद सीदा-सादा जम्पर और पैरों में साधारण चप्पल परन्तु सौन्दर्य—वह तो उमड़ा पड़ रहा था इस तीस वर्ष की अवस्था में भी। यौवन फूटा पड़ रहा था और रक्त शरीर में ऐसा दिखलाई देता था कि मानो आधिक्य के कारण अब बहा। यह नंगा सौन्दय था बिना बनावट का अपने देश का, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता से भी पूर्ण परिचित,अपरिचित नहीं। जीवन के सभी पहलुओं को समझकर एक निश्चित मार्ग निर्धारित कर चुकने के पश्चात् जो मनुष्य बनता है वह यह शान्ता थी।

रमेश बाबू शांता को देखकर अपने ही स्थान पर खड़े हो गये और मौन उसी प्रकार चित्र लिखित सी शान्ता खड़ी हो भी गई परन्तु वह अपने को अधिक संभाल न सकी और गिरने ही वाली थी कि रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शांता को अंक में भर कर संभाल लिया शांता कुछ क्षण के लिये रमेश बाबू की गोद में पड़ी रही और रमेश बाबू ने सब को कमरे से बाहर जाने को कहा।

जिस समय शान्ता के नेत्र खुले तो वह रमेशबाबू की गोद में लेटी हुई थी। शान्ता ने शीघ्रता से पलक मलकर इधर उधर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ क्षण और शान्ता लेटी रही। शान्ता के नेत्रों से बहकर निकलने वाले गर्म जल ने रमेश बाबू की सारी गोद को भिगो दिया।

"काश पिताजी उस दिन आपका कहना मान जाते।" शान्ता ने भारी मन से कष्ट के साथ कहा। रमेश बाबू बराबर प्यार के साथ शान्ता के सिर पर हाथ फेरते हुए गम्भीरता पूर्वक बोले, "समय की गति को हम नहीं बदल सकते थे शान्ता! हम दोनों के जीवन में एक तूफ़ान आ गया। उस तूफ़ान ने हम दोनों को एक दूसरे से उठा कर दूर-दूर फैंक दिया। कौन जानता था कि जीवन में इस प्रकार फिर भेंट हो जायेगी? मैं तो आशा ही खो चुका था परन्तु मैंने जीवन में अपने कर्तव्य को निभाया है। तुम्हारा जीवन देख कर मैं यह पूछने की आवश्यकता नहीं समझता। अब और बातें फिर होंगी।" रमेश बाबू ने कहा "तुम्हें चक्कर आ गया था। अब संभल कर खड़ी हो जाओ। तुम्हारी दावत के सब मेहमान बाहर खड़े हैं।"

रशीदा कभी कभी मक्कारी से शीशे के अन्दर से झांक कर देख लेती थी। परन्तु रशीदा, रमा और अमरनाथ जी बहुत दूर से इस नाटकीय दृश्य को देख रहे थे।

शान्ता ने खड़े होकर द्वार खोल दिया और फिर सबको बड़े प्यार से अन्दर बुलाया। खाना मेज़ पर सजा हुआ था। सब चारों ओर पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये और सबके बैठने पर रमेश बाबू ने आज अपनी पुरानी जीवन कथा पर प्रकाश डाला। शांता के कमरे में जो चित्र लगा हुआ था वह रमा ने पर्दा हटाकर खोल दिया और वह रमेश बाबू का अपना चित्र था और उसी प्रकार शान्ता का चित्र रमेश बाबू के कमरे में भी लगा हुआ था।

शान्ता के हाथ के बनाये हुए रसगुल्ले खाकर आज रमेश बाबू के आनन्द का पारावार नहीं था। रमेश बाबू ने प्यार से रमा के कान में पूछा "कैसे लगे रस गुल्ले?"

"रसगुल्लों से रसगुल्लों वाली अधिक अच्छी लगी।" मुस्कुरा कर आंखें मटकाते हुए रमा ने कहा। यह सुनकर शांता भी मुस्कुरादी।

रशीदा और अमरनाथ जी ने आज दावत में वह आनन्द लिया कि वैसा उन्होंने जीवन में कभी नहीं लिया था। यह दावत ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो रमेश बाबू के विवाह की दावत है। केवल शहनाई बजने की कसर थी।

दावत खाकर सब लोग पत्थर की मूर्ति बने बैठे रहे। किसी को समझ में न आया कि क्या कहें? अन्त में रमा को ही खड़ा होकर कहना पड़ा "आज की यह दावत जिस आनन्द पूर्वक समाप्त हुई उसका श्रेय मैं अमरनाथ जी को देती हूँ कि जिन्होंने सात वर्षों की इस बिछुड़ी हुई अनमोल जोड़ी को फिर से, न जाने समाज का क्या बड़ा भारी उपकार करने के लिये, मिला दिया! मैं उनकी हृदय से कृतज्ञ हूँ।" और इतना कहकर रमा ने शान्ता से भेंट करके अपना परिचय दिया और बोली, "अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिये मुझे संध्या की गाड़ी से देहरादून जाना है, फिर मन्सूरी अपने पिता के पास।"

"यह नहीं हो सकेगा रमा बहन! आज आप नहीं जा सकेंगी। अब तक आप रमेशबाबू की मेहमान रहीं और कल आपको मेरे यहां मेहमान बनना होगा—देखिये आप ना नहीं कर सकेंगी" और वास्तव में रमा ना नहीं कर सकी। दावत के पश्चात् सब तो विदा हो गये परन्तु रमा यहीं पर शांता के पास ठहर गई।

आज शान्ता ने अपना इच्छित सुख प्राप्त किया और रमेश बाबू ने भी। दोनों उतने प्रसन्न थे जितने वह हो सकते थे। रमा एक विचित्र प्रकार की स्वतन्त्र विचार वाली स्त्री निकली जिसके हृदय में नारी-डाह नाम मात्र के लिये भी नहीं था। शान्ता से मिलकर उसे वास्तव में सुख तथा आनन्द मिला। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो वह अपनी बड़ी बहन से मिलरही हो।

अन्तिम आज्ञा

(३१)

"आपको कोई चिंता नहीं आज़ाद बाबू! हमारी सब स्कीमें 'इन्सान' कार्यालय को बन्द करने की असफल होती जा रही हैं। हमने जो-जो भी प्रयास किया वह असफल सिद्ध हुआ। हड़ताल असफल हो गई। उस दिन काग़ज़ के गोदाम में आग लगाने वाली स्कीम पकड़ ली गई उस दिन मैशीनें तोड़ देने वाली स्कीम का राज़ खुल गया, उस रोज़ टाइप चोरी कराने का सब प्रबन्ध ठीक समय पर खत्म हो गया। कोई भी तो प्लाट पूरा नहीं उतरा। अवश्य कोई ऐसा भेदिया है जो हमारे सब राज़ ले जाकर उनको देता है।"

"मेरे चिंता करने से क्या बनता है कमला! चिंता करने के लिये तुम क्या कम हो! मैंने तुम्हें एक बार कह दिया कि मैं सैनिक हूँ और आज्ञा पालन करना जानता हूँ। हां यह प्रयोग करना मुझे शक्ति का अपव्यय सा अवश्य लगरहा है।"

"कमला इतना सुन कर आग बबूला हो गई और उसके क्रोध का पारावार

न रहा। शरीर का रक्त वैसे ही गर्म हो रहा था अपनी हर प्रकार की पराजय पर मन में एक बार आया कि वह आज़ाद को कुछ अच्छी बुरी सुना जाये परन्तु फिर अपने को पहिचान कर रह गई और एक बार आंखें मीच कर शांत हो गई।

कमला के हृदय में एक लगन थी वह लगन बिलकुल स्वार्थ रहित थी। इसी लिये वह सब निर्भीकता पूर्वक करती थी जो कुछ भी करना चाहती थी। कमला अपना सर्वस्व अपनी ज़िद पर लगाने के लिये उद्यत थी। वह यह नहीं देख सकती थी कि यह 'इन्सान-कार्यालय' जो कॉम्युनिस्टों का शत्रु है और उनके खिलाफ़ प्रति सप्ताह आवाज़ उठाता है किसी भी प्रकार दिल्ली में अपना अस्तित्व क़ायम रख सके।

'इन्सान' का नाम सुन कर ही कमला के हृदय में जलन होने लगती थी और रमेश बाबू के तो नाम से भी उसे चिढ़ थी। कमला ने रमेश बाबू का नाम कभी आज़ाद के सामने नहीं लिया था। आज़ाद एक सच्चा सैनिक था अपने नायक का, चाहे जिस दिशा में भी उसका नायक उसे ले जाये। वह अच्छा बुरा कुछ नहीं जानता, वह जानता है कुछ करना। कमला के नेतृत्व में इस समय उसने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। प्राणों के रहते वह अपने उस पथ पर से हटने वाला नहीं था।

रात्रि में जब एकांत में केवल कमला और आज़ाद बैठे थे तो कमला ने आज़ाद से कहा, "बस एक ही उपाय है।"

"वह क्या?" उत्सुकता से आज़ाद ने पूछा।

"खून।" दृढ़ता पूर्वक कमला ने कहा।

"परन्तु किसका?" आज़ाद ने पूछा।

"'इन्सान कार्यालय' के संचालक का। पत्र बन्द हो जायेगा, कार्यालय बन्द हो जायेगा।" दृढ़ता पूर्वक कमला ने कहा।

"फिर किसके सपुर्द है यह काम?" गम्भीरता पूर्वक आज़ाद ने पूछा।

"आपको करना होगा यह काम।" दृढ़ता पूर्वक कमला ने कहा और रिवालवर निकाल कर आज़ाद के हाथों में दे दिया।

"आज़ाद ने रिवालवर अपने हाथों में ले लिया और एक बार इसे चूमा। एक बार रिवालवर को चूम कर फिर आज़ाद ने कमला को प्रेम पूर्वक देखा और नेत्रों में अमिट विश्वास लेकर बोला, "अच्छा लो कमला अब हम चले। शायद फिर कभी जीवन में भेंट न हो सके। यह अंतिम भेंट है जो कहना हो सो कह सुन लो, फिर समय नहीं मिलेगा।"

"आप बैठो ! मैं चाय बना लाती हूँ। कल से कुछ नहीं खाया। वह डबल रोटी भिगाकर आधी-आधी खा लेंगे तो कुछ पेट का सहारा हो जायेगा।" कह कर कमला चाय बनाने चली गई और आज़ाद खर्राटे की नींद सो गया मानो उसे चिंता ही नहीं कि कहां और किस काम से जाना है।

कमला ने जगा कर चाय पिलाई और फिर कहा, "समय हो गया अब आपको जाना चाहिये।"

इस प्रकार आज़ाद को वहाँ पर जाते हुए एक सप्ताह हो गया परन्तु अवसर ही नहीं मिल सका। आज़ाद नित्य जाता था और जाकर पहरेदार से बच कर कोठी में प्रवेश करने का प्रयत्न करता था परन्तु अन्त में उनका प्रयत्न निष्फल होजाता था।

कमला की कॉम्यूनिस्ट पार्टी का ताना बाना कुछ ढीला पड़ चुका था। एक तो चीन के कॉम्यूनिस्ट होने की बात पुरानी पड़ चली थी और दूसरे वर्मा तथा इन्डोनेशिया में जो कॉम्यूनिस्ट उपद्रव हुए उन्हें वहां की सरकारोंने दबा दिया था। इसका प्रभाव भारत की कॉम्यूनिस्ट पार्टियों पर बहुत बुरा पड़ा। भारत के सभी प्रांतों में यों तो कॉम्यूनिस्ट उपद्रव होने की सम्भावना न रही थी परन्तु विशेष रूप से देहली इत्यादि के आस-पास के प्रदेश में तो काफ़ी छान-बीन के पश्चात् कॉम्युनिस्ट कार्य कर्त्ताओं को पकड़ लिया गया था और जो कुछ भी बच पाये वह भाग कर और वेश बदल कर ही बचे थे।

कमला और आज़ाद के नामों पर वारंट थे, परन्तु यह लोग गुप्त रूप से कार्य कर रहे थे। जब से कमला का बिल्लीमारान वाला होम समाप्त हुआ उस था समय से उसकी व्यवस्था संभलने नहीं पाई। यों बाद में कमला ने न्यूज़ ऐजेन्सी की व्यवस्था की परन्तु उसका राज़ भी पुलिस के गुप्त विभाग से छिपा न रह सका और उस पर भी प्रतिबन्ध इत्यादि लगा कर सरकार ने उसे समाप्त कर दिया।

इस प्रकार कमला का सब आर्थिक सहारा सरकारी नीति ने समाप्त कर दिया; परन्तु कमला, वह अटल थी अपने निश्चय पर प्राण रहते चलने के लिये। कमला अडिग थी; अजेय थी, साहस की उसमें कभी कमी नहीं आती थी और आज तो उसने अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु भी अपने सिद्धांत पर भेंट चढ़ा दी।

कमला की दृष्टि में जीवन का मूल्य कुछ नहीं, मूल्य जो कुछ भी वह कर्त्तव्य का है। कर्त्तव्य-पालन की दृढ़ता में कमला रमेश बाबू से किसी भी प्रकार कम न थी परन्तु दोनों के कर्त्तव्यों और उनकी पूर्ति के साधनों में आकाश-पाताल

का अंतर था। एक की नीति विध्वंसात्मक थी तो दूसरे की निर्माणात्मक; एक विस्फोट था तो दूसरा शांति का अथाह समुद्र; एक आग था तो दूसरा पानी।

कमला शांति पर विजय प्राप्त न कर सकने पर बार-बार खिसियाई बिल्ली की तरह झल्लाती थी परन्तु कुछ कर सकने पर असमर्थ रह जाती थी। भारत की जनता को कमला ने बिलकुल धूर्त पाया। कमला ने परीक्षा करके भली प्रकार देख लिया कि भारतीय जनता का कोई चरित्र नहीं, वह ढुल-मुल यकीन व्यक्ति हैं, जिधर का पलड़ा भारी देखते हैं उधर को ही लुढ़क जाते हैं। यह लोग अंगरेज़ी कालमें अंगरेज़ों के पिट्ठू बने रहे, कांग्रेसी काल में आकर कट्टर कांग्रेसी बन गये, यदि कल सोशलिस्ट राज्य भारत में हो गया तो इन्हें अपने को सोशलिस्ट बनाने में कोई संकोच नहीं होगा और यदि कुछ दिन पश्चात् कॉम्यूनिस्टों का भी यहां पर दौर-दौरा हो गया तो इन लोगों को कॉम्यूनिस्ट बनने में भी देर नहीं लगेगी। तभी तो यह लोग आपस में मिलकर कहा करते हैं, "भाई समय के साथ चलना चाहिये। अपने राम तो समय के साथ चलते हैं, बस इसीलिये जीवन में मार नहीं खाते।"

कमला इस सिद्धांत के मानने वालों को घृणा की ही दृष्टि से ही नहीं देखती वरन उन्हें पहिले दर्जे का धोखेबाज़, दग़ाबाज़, बदमाश और लुच्चा समझती है वह कहती है कि इस प्रकार के व्यक्ति समाज और देश के लिये कलंक हैं, इन्हें मर जाना चाहिये, जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।" परन्तु खेद की बात है कि उन लोगों से जीवन-हक छीनने का अधिकार कमला को नहीं है।

सरकार की कड़ी नज़र होने से कॉम्यूनिस्ट प्रचार दिल्ली में एकदम बन्द सा हो गया और प्रगति रुक गई। कोई रास्ता कमला की समझ में नहीं आ रहा था। सरकार की नीति भी अजीब ही थी। कॉम्यूनिस्ट पार्टी को खिलाफ़ क़ानून क़रार नहीं दिया परन्तु काम्यूनिस्ट पार्टी के दफ़तर में झाड़ू लगाने वाला चपरासी भी शक की दृष्टि से देखा जाने लगा और परिस्थिति यहां तक गम्भीर बनी कि दफ्तर में चपरासी तक मिलना कठिन हो गया, दफ्तर को ताला लगा देना पड़ा दफ्तर पर लगा हुआ झंडा गल कर गिर पड़ा तो कमला के पास नया झंडा लगाने को कपड़ा नहीं जुट पाया।

कमला और आज़ाद केवल दो ही प्राणी अब दिल्ली में बचे थे जो कि कॉम्यूनिस्ट पार्टी के प्राण थे, परन्तु यह भी कितने दिन तक बकरे की माँ कब तक खैर मनाये और फिर अब कमला ने आज़ाद की ड्यूटी लगा दी ऐसे काम पर कि उनमें से एक का स्वर्गवास हो जाना तो निश्चित ही हो चुका था।

कभी-कभी कमला रात भर पड़ी सोचा करती थी कि यह उसने सब कुछ क्या कर लिया ? अपने जीवन के साथ ही साथ एक नवयुवक के जीवन को भी उसने किस मार्ग पर लगा दिया—परन्तु फिर उसका आदर्श, उसका कर्त्तव्य आकर उसके सामने खड़े हो जाते और उससे कहता कि 'नहीं तुम्हें अपने कर्त्तव्य से नहीं गिरना है चाहे समस्त संसार गिर जाये। तुमने समस्त संसार के मज़दूरों को संगठित करके पूंजीवाद का अन्त कर देने का निश्चय किया है। तुम सरमायेदारों के शत्रु हो। इस प्रकार रुपये के बल पर मज़दूरों को प्रलोभन देकर तोड़ी गई हड़ताल कभी नहीं चलेगी कभी नहीं चलेगी। यह प्रेस नहीं चलेगा, यह पत्र नहीं चलेगा।' दृढ़ता पूर्वक कमला ने विचार किया।

संगठन के लिये कमला के पास अब कार्यकर्त्ता तथा पैसा दोनों का ही अभाव हो चुका था और यही कारण था कि अब उसे अपना मार्ग धुँधला प्रतीत होने लगा था। यह सब की सब चिंतायें केवल कमला के ही मस्तिष्क के लिये थीं; आज़ाद इन सबसे मुक्त था। वह तो केवल अपना काम भर करना जानता था, और बस फिर पैर फैलाकर सोता था चिंता आज़ाद को मानो होती ही नहीं थी।

कमला का क़दम पीछे नहीं हटेगा—यह कमला का दृढ़ संकल्प था। वह दृढ़ थी अपने विचारों पर। पैसे के अभाव में कमला समझती थी कि यह सब कुछ हो रहा था। एक दिन कमला ने एक मोटे सेठ पर डोरे डाल कर उससे दस हज़ार रुपया ऐंठ लिया। सरमायेदार का रुपया किसी भी प्रकार ऐंठ लिया जाये उसमें कोई हानि कमला नहीं समझती। क्योंकि धन किसी की बपौती नहीं है। धन है प्रयोग करने वाले का। जो व्यक्ति उसे प्रयोग नहीं करना जानता और दाब कर रखता है उसका धन पर कोई अधिकार नहीं। धन मज़दूर के काम आना चाहिये क्योंकि यह उसके गाढ़े पैसे की कमाई है। मज़दूर का हक़ है कि वह छल से फ़रेब से, धोखे से, प्रलोभन से जिस प्रकार भी कर सके पैसे वाले का रुपया उससे लेकर अपने काम में लगाये।

"सब को उसी प्रकार जीने का अधिकार है जिस प्रकार यह कारों में घूमने वाले मोटी तोंद के लाले घूमते हैं। एक व्यक्ति सुबह से शाम तक कुछ नहीं करता और अच्छे से अच्छा खाना खाता है और दूसरा सुबह से शाम तक कठिन परिश्रम करके भी पेट भर अन्न नहीं जुटा पाता—यह सब क्या राज्य है, कैसी शासन व्यवस्था है ? इस व्यवस्था को मिट जाना होगा। राज्य को चाहिये कि वह समाज के ऐसे लुटेरों को जो बिना परिश्रम हलवा, पूरी उड़ाते हैं उनकी सब सम्पत्ति छीन कर कर्त्तव्य करना सिखलाये। भारत का प्रत्येक व्यक्ति समझे कि अब बिना किये

खाने को नहीं मिलेगा। फिर देखना है कि भारत में उत्पादन की किस प्रकार कमी होती है ?" कमला ने कहा।

"यह तुम्हारा विचार बिलकुल ठीक है कमला ! मैं भी कभी-कभी यह सोचा करता हूँ कि यह क्या राज्य व्यवस्था है ? लोग कहते हैं राज्य बदल गया, क्रांति हो गई, परिवर्तन हो गया, परन्तु मुझे तो कहीं पर भी कुछ दिखलाई नहीं दे रहा। न कोई क्रांति है और न कोई परिवर्तन। वही पुराना ढर्रा है जो किसी प्रकार चल रहा है। सरकार आय-कर लगाना जानती है हानि-कर देना नहीं जानती। जिस सरकार को आप पर कर लेने का अधिकार है उसका यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने देश की बेकारी का सुप्रबन्ध करे। मोटे-मोटे वेतनों को समाप्त करके छोटे-छोटे वेतन वाले अधिक से अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाये।" आज़ाद बोला।

"मोटे-मोटे वेतनों की बातें कर रहे हैं आप ?" मुस्कुराते हुए कमला ने कहा "भारत का रुपया अय्याशी में लुटाया जा रहा है, बदमाशी में। यह सरकार खुदगर्ज़ है, बदमाश है। इसके सिरपर सरमायेदारों का उल्लू चढ़ा हुआ है। यह लोग कठपुतलियाँ हैं उनके हाथों की। नाचते हैं जैसा वह नचाना चाहते हैं और नाचें भी क्यों नहीं। वह जो चाँदी का जूता है सोने की मेखों से जड़ा हुआ वह सब कुछ करा देता है। क्या अटेल-पटेल, जवाहर-ववाहर सब........" कमला ने व्यंग्य से कहा।

"यहां तक तो नौबत नहीं आई है कमला देवी ! जिस दिन यहां तक नौबत आ जायेगी उस दिन यह व्यवस्था समाप्त हो जायेगी। फिर एक दिन नहीं टिकेगा यह गोरख धंधा।" आज़ाद ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"यह गोरख धंधा तो अधिक दिन चलने वाला नहीं, यह मैं कहे देती हूँ। इसके मिटने के लक्षण स्वयं पैदा हो चुके हैं। जनता में बेरोज़गारी और असंतोष पैदा हो रहा है। देश स्वयँ काम्यूनिज्म की ओर खिंच रहा है। प्रवृत्तियाँ हमारे अनुकूल होती जा रही हैं। मज़दूरों का संगठन किसी न किसी रूप में हो ही चुका है। बारूद तय्यार है, कभी भी किसी भी समय विस्फोट हो सकता है। यह वर्त-मान राज्य लिया है खद्दर की किश्ती नुमा टेढ़ी टोपी लगाने वाले धोखे बाज़ों ने और अब यह सत्ता पहुँचेगी है देश के मज़दूरों के हाथों में, देश के किसानों के हाथों में। घूस ख़ोरी नहीं चलेगी, काला बाज़ार नहीं चलेगा, रिश्वत नहीं चलेगी, बाप-दादे की कमाई पर ऐश नहीं होगी, व्यक्तिगत सम्पत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी और बस इस प्रकार बेईमानी और बदमाशी की जड़ ही मिट जायेगी। व्यक्तिगत

सम्पत्ति न रहने पर कोई यदि बेईमानी या काला बाज़ार करने का विचार भी करेगा तो किसके लिये ? धन, माल, रुपया, पैसा, ज़मीन, घर, दफ्तर, फैक्ट्री, मिल, बैल, भैंस, सोना, चांदी सब सरकार के होंगे, सरकार जनता की होगी । राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की ज़िम्मेदार सरकार होगी, हर पैदा होने वाले बच्चे की व्यवस्था सरकार करेगी, मां-बाप मुक्त होंगे देश का उत्पादन बढ़ाने के लिये ।

"अच्छा खाने और अच्छा पीने का सबको अधिकार होगा । व्यर्थ के लिये शरीर पर चांदी, सोना लपेटने का किसी को अधिकार नहीं रहेगा । सब सोना चांदी सरकार के पास जमा रहेगा । गले पर मोटी-मोटी हंसलियां और नितम्बों पर सौ-सौ तोले की तगड़ियां लटकाने का किसीको अधिकार नहीं होगा । किसी व्यक्ति को ऐसा जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं होगा कि दूसरा उसे देख कर रीझे और अपने को हीन अनुभव करे ।

"बस कांम सबको करना होगा, बिना काम किये खाने का टिकट नहीं दिया जायेगा ।" कमला ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "यह होगा और अवश्य होकर रहेगा । आज नहीं कल, समय आ चुका है । मैं मर कर भी अपने इस आदर्श की पूर्ति करूंगी । संसार की कोई शक्ति मुझे मेरे मार्ग से नहीं हटा सकती । भूख नहीं, प्यास नहीं, कपड़े की कमी नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं मैं अपने आदर्श पर अटल रहूँगी ।" और इतना कह कर कमला ने कमरे में घूमना प्रारम्भ कर दिया ।

इसी समय किसी ने कमरे का द्वार खटखटाया । आज़ाद ने खड़े होकर द्वार खोला तो बहुत आश्चर्य हुआ उसे शांता को देख कर । कमला भी इस प्रकार शांता को यहां देख कर सकपका गई क्योंकि उसे विश्वास था कि उनके इस स्थान को केवल उन दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता ।

शांता के अन्दर आने पर द्वार बन्द कर दिया गया । एक तरफ हीटर रखा हुआ था, उस पर चाय बन रही थी । शांता आकर चटाई पर बैठ गई और कमला भी सामने आ बैठी । कमला मुस्कुरा कर बोली, "हमारी यह ख़राब दशा देख कर कोई कमज़ोरी का उपदेश न देना जीजी ! हम आत्म विश्वास के साथ सुखी हैं अपनी इस कठिन परिस्थिति में भी ।"

"मैं कठिन परिस्थिति देख कर कभी विचलित नहीं होती कमला ! क्योंकि मैं स्वयँ इससे भी कठिन परिस्थितियों में रही हूँ । सन् ४२ के आन्दोलन में मैंने जो कष्ट सहे हैं उनका आज अनुमान भी नहीं किया जा सकता । आज़ाद भैया इस बात के साक्षी हैं ।" शांता कह रही थी ।

"यही बात है कमला !" सिर हिलाते हुए आज़ाद ने कहा ।

"मैं कभी-कभी विचलित हो उठती हूँ तुम्हारे प्रोग्रामों पर जो मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकती हूँ कि कभी-कभी बिलकुल बे सिर पैर के होते हैं।" शान्ता बोली।

"क्या ?" ज़रा त्यौरी चढ़ा कर कमला ने कहा। "मेरे प्रोग्राम बिना सिर पैर के जीजी!—नौनसैन्स, ईडियोटिक—यह नहीं हो सकता, हो नहीं सकता। मेरे प्रोग्राम सब व्यवस्थित और समयानुकूल होते हैं। मैं जान गई कि आप आज मेरी परिस्थिति और असफलताओं का उपहास उड़ाने आईं। मैं कहे देती हूँ शांता जीजी! कि मैं अपने मार्ग से नहीं हट सकती, नहीं हट सकती और मैं अब इस विषय पर एक बात भी सुनना नहीं चाहती!" कमला क्रोध से आग बबूला हो रही थी और उसकी आंखों के डोरे लाल हो चुके थे।

"अच्छा आज़ाद भय्या नमस्कार! भगवान आप दोनों की रक्षा करे। मैं चली ?" इतना कह कर बिना कुछ कहे शांता खड़ी हो गई, कुछ भारी पन अपने मन में लिये। आज़ाद ने बैठने के लिये भी कहा परन्तु कमला कुछ नहीं बोली। शायद यदि कमला शांता को रुकने के लिये कहती तो वह एक दो मिनट और बैठ जाती परन्तु नहीं; वह चल ही दी उठ कर।

आज़ाद द्वार तक उठकर आया और बोला, "जीजी, क्षमा कर देना कमला को, तुम जानती ही हो इसका स्वभाव जैसा है।"

शांता मुस्कुरा दी और मुस्कुरा कर दो शब्दों में कहा, "मेरा भाई मुझसे छिन गया, मुझे यही खेद है। अच्छा नमस्कार" और इतना कह कर शांता की आंखों से आँसू बह निकले। आज़ाद का दिल भी भारी हो आया परन्तु आज़ाद के सिर पर जो कर्त्तव्य का पहाड़ रखा हुआ था उसे सिर से उतारना इस समय उसकी शक्ति में नहीं था। वह मौन पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा रहा और उसके देखते-देखते शांता उसकी नज़रों से ओझल हो गई।

"गई शांता बहिन!" आज़ाद के अन्दर आने पर कमला ने पूछा।

"गई।" आज़ाद ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्यों, दिल भारी हो आया भाई बहिन का ? कर्त्तव्य-पथ पर चलने से पूर्व यही दशा होती है। यह आंसू कमज़ोरी की निशानी है, धोखा है।" कमला बोली।

"परन्तु शांता बहिन तो धोखा नहीं दे सकतीं।" आज़ाद ने कहा।

"वह मोह हो सकती हैं और मोह भी धोखे का ही दूसरा नाम है।" गम्भीरता पूर्वक कमला ने कहा और वह इतना कहकर शांत हो गई।

आज़ाद कुछ नहीं बोला। कमला का ऊंचा व्यक्तित्व उसके हृदय में घर कर चुका था उसके सामने किसी भी प्रकार का प्रलोभन उस पर असर नहीं कर सकता था। आज़ाद उद्यत था अपने कर्त्तव्य-पथ पर निर्भीक चलने के लिये।

कमला की किसी से शत्रुता नहीं थी। वह रमेश बाबू को नहीं जानती थी और न उसने कभी उन्हें देखा ही था। कमला थी 'इन्सान' पत्र की शत्रु क्योंकि वह कॉम्यूनिस्ट पार्टी के खिलाफ़ ज़हर उगलता था। 'इन्सान' को बन्द करने के जब सब साधन असफल सिद्ध हो चुके तो अंतिम साधन रमेश बाबू को समाप्त करने का कमला ने विचारा था। यह सब सिद्धांत की बात थी कमला के व्यक्तिगत लाभ अथवा हानि की नहीं। कमला का व्यक्तित्व समाप्त हो चुका था और वह अब थी पार्टी की एक कॉमरेड जिसका तन, मन, धन सब कुछ पार्टी के ही लिये था।

(३२)

रमेश बाबू के कमरे में जो चित्र लगा था रमा ने उसे उतार कर बहुत सावधानी से साफ़ किया और फिर उसी स्थान पर टांग दिया। इसके पश्चात् रमा ने तमाम कमरे की सफाई की। जिस दिन से रमा आई है रमेश बाबू का बहुत कुछ कार्य उसने अपने हाथों में ले लिया। रमेश बाबू की प्रत्येक आवश्यकता से वह परिचित थी और यहा आकर तो उसने पत्र व्यवहार का कार्य भी अपने ही हाथों में ले लिया। आधी से ज़ियादा डाक रमेश बाबू को देखने की आवश्यकता नहीं रही थी, रमा उनका उत्तर स्वयं दे देती थी। एक सप्ताह में ही रमेशबाबू को ऐसा लगा कि मानो उसके सिर का न जाने कितना भार हलका हो गया।

रशीदा का भी बोझ बहुत हलका हो गया और उसे नई जिम्मेदारी निभाने में सुगमता हुई और घूमने के लिये भी समय मिलने लगा। रशीदा को घूमने का पहिले से ही बड़ा शौक था। पहिले वह अपने बूढ़े पिता के साथ घूमने जाया करती थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् कभी-कभी रमेश बाबू भी रशीदा को घुमाने अवश्य ले जाते थे परन्तु रमेश बाबू को घूमने का बिलकुल शौक नहीं था और जब कभी वह जाते भी थे तो केवल रशीदा के लिये। जब से रशीदा को अमरनाथ जी का साथ मिला उस समय से रशीदा की यह इच्छा पूर्ण होने लगी और वह अब बहुत प्रसन्न थी।

प्रेस-संचालन के कार्य में रशीदा इतनी चतुर थी कि उसका मुक़ाबिला प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता था। हर प्रकार की व्यवस्था करना वह जानती थी और छपाई का तो उसे बहुत ही अच्छा ज्ञान था। क्या मजाल कि किसी फर्मे में दाब

घट जाये या बढ़ जाये। बाज़-बाज़ मर्तबा तो वह उस्ताद लतीफ़खां के भी कान काटने लगती थी और आखिर लतीफ़खां उस्ताद को यही कहना होता था, "हां हां ठीक है। इतनी देर तो हो गई इम्प्रेशन बनाते हुए। अब मशीन को चलने भी दोगी या नहीं। यह टाइप पुराना हो गया है इसलिये नया बदलवाने की चिंता करो।" यह सुन कर रशीदा मुस्कुरा देती और कहती "जी ! नाचना आये ना आंगन टेढ़ा वाली बात है आपकी तो उस्ताद।" और बस इस पर उस्ताद बिगड़ बैठते और कहते "मैं नाचना नहीं जानता। तुम तो कल की लड़की हो। मेरे हाथ के सिखलाये हुए छोकरों ने आज दिल्ली भर के प्रेस संभाले हुए हैं। बड़े-बड़े प्रेस।" और बस रशीदा मुस्कुरा कर चली आती।

शांता का स्कूल उन्नति करके कालेज बनगया और शांता थी उसकी प्रिंसिपल। शांता को कॉलिज के काम में इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि वह हर समय रमेश बाबू से मिलने की इच्छा रखते हुए भी कार्यभार के कारण वहां नहीं जा पाती थी और अंत में संध्या को जाने के लिये तैय्यार होती तो देखती कि रमा का हाथ में हाथ लिये स्वयं रमेश बाबू ही उसकी ओर लपके चले आ रहे हैं।

"यह कालेज मेरी जानको बवाल हो गया है रमेशबाबू" रमेशबाबू तथा रमा को बिठलाते हुए शांता बोली। "कितनी भी प्रयत्न चाहे क्यों न करूं शीघ्र निबटने की परन्तु अन्त समय कुछ न कुछ काम ऐसा आकर अटकता है कि बस दो घंटे यों ही चले जाते हैं और रोज़ आपको ही कष्ट करना पड़ता है इधर आने के लिये।"

"कष्ट करना पड़ता है।" मुस्कुरा कर मेश बाबू ने कहा "मुझे तो कोई कष्ट नहीं होता, हां तुम्हारी बहिन मा को होता हो तो इनसे पूछ लो भाई।"

और फिर तीनों में आनंद पूर्वक गप्पें छिड़ जातीं। शांता और रमेश बाबू ने अपना गया हुआ जीवन फिर से वापस पा लिया।

शांता की बातें और दिन की अपेक्षा आज कुछ अधिक उखड़ी-उखड़ी हो रही थीं यह रमा ने अनुभव किया और वह यह समझ गई कि शांता बहन अकेले में रमेश बाबू से कुछ कहना चाहती हैं। यह ताड़ते ही रमा एकदम खड़ी होती हुई बोली, "हां रमेश बाबू मैं तो भूल ही चली थी। मुझे तो अभी बाज़ार से भी बहुत सा सामान खरीदना है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कैनॉट प्लेस से जाकर कुछ चीज़ें ले आती हूँ—केवल आधे घंटे का अवकाश चाहिये।"

"यहां अवकाश शांता से मांगना होगा रमा !" मुस्कुरा कर रमेश बाबू ने कहा।

"शांता बहन से ही आज्ञा मांग रही हूँ !" मुस्कुराते हुए सरल स्वभाव से रमा बोली।

"परन्तु चाय पीकर तो जाती रमा !" शांता ने कहा।

"चाय बनते-बनते तो मैं लौटकर आ जाऊंगी जीजी ! मेरे आने से पहिले ही कहीं अपनी मीठी चाय समाप्त न कर देना।" तीनों प्यार से मुस्कुरा दिये और रमा अपना बैग उठा कर धीरे से एक ओर का द्वार खोल कर बैठक से बाहर निकल गई।

रमा के चले जाने पर शांता ने ऐसा अनुभव किया कि अब वह राज़ की बात रमेश बाबू को बतला सकती है। शांता ने कहना प्रारम्भ किया, "रमेश बाबू आप समझ रहे होंगे कि मैं आज बहुत सुखी हूँ परन्तु ऐसा नहीं है। शायद यह बात सुन कर आपको भी कष्ट होगा इसलिये मैं आपको बतलाने में आज सात दिन से संकोच कर रही थी। आप शायद नहीं जानते कि यह काम्यूनिस्ट नेता 'आज़ाद' जिसे पकड़ने के लिये दिल्ली की पुलिस पागल हुई फिर रही है कौन है ?"

"क्या मेरा आज़ाद है यह शांता ?" एकदम बात को समझते हुए शीघ्रता से रमेश बाबू बोले।

"हां ! यह आपका आज़ाद है, परन्तु आज पागल हो रहा है सिद्धांतवाद के चक्कर में पड़कर एक नादान बालिका के संकेत पर।" गम्भीरता पूर्वक शांता ने कहा और एक लम्बी गहरी दुःख भरी श्वांस ली।

रमेश बाबू शांता के मुख पर इस प्रकार देख रहे थे कि मानो वह उसमें से कोई अपनी पुरानी खोई हुए वस्तु खोजना चाहते थे। शांता की आंखों की पुतलियों में रमेश बाबू ने आज़ाद की प्रतिमा देखी और वह आज़ाद से मिलने के लिये व्याकुल हो उठे।

"मैं आज़ाद को बचाने के लिये अपना सब कुछ बलिदान करने को उद्यत हूँ रमेश बाबू ! क्योंकि उन्होंने मेरी इज्ज़त आबरू एक दिन गुंडों के हाथों से बचाई थी, परंतु क्या करूं ? मेरा जादू नहीं चलता उस सैनिक की बुद्धि पर।" दुखी होकर शांता ने कहा।

"वह सचमुच एक सच्चा और वीर सैनिक है शांता ! मैंने उसके व्यक्तित्व को बनाने में तपस्या की है, वह हीरा है। मैं उसे पाने का पूर्ण प्रयत्न करूंगा।" रमेश बाबू गम्भीरता पूर्वक बोले।

रमेश बाबू के यह शब्द सुनकर शांता के चित्त को शांति कुछ हुई क्योंकि इस प्रकार के शब्द रमेश बाबू के मुख से निकलना कोई साधारण बात नहीं थी। जिस वस्तु को रमेश बाबू पाना चाहें और वह उसमें सफल न हों यह शांता ने अपने पिछले जीवन में कभी नहीं देखा था।

"परन्तु समस्या इतनी सरल नहीं है रमेश बाबू! गांठ इतनी मज़बूत बन चुकी है कि उसे खोलने में मेरा प्रयास निष्फल सिद्ध हो चुका है।" शांता ने फिर कहना प्रारम्भ किया। "आज़ाद भय्या को यह नहीं मालूम कि 'इन्सान' कार्यालय का संचालक उसका अपना ही रमेश बाबू है। कमला के सब प्रयास इस कार्यालय को समाप्त कर देने के लिये निष्फल सिद्ध हुए और अन्त में अब उसने ठानी है खून करा देने की।" कुछ भयभीत होकर शांता ने कहा।

"खून करा देने की।" आश्चर्य के साथ रमेश बाबू ने कहा, "परन्तु किसका? मेरा खून करने की?" कहकर रमेश बाबू मुस्कुरा दिये। इस समय रमेश बाबू की मुस्कुराहट ऐसी प्रतीत हुई कि मानो कोई गहन गम्भीर बादल में बिजली चमकी हो। फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने कहना प्रारम्भ किया, "आज यह वादों का युग कहा जाता है। वाद का सूक्ष्म अर्थ मत है। मत का सम्बन्ध शक्ति से उतना अधिक नहीं है शांता जितना आत्मा से है। मैं कहता हूँ कि वह दिन अवश्य आयेगा जब यह सब शस्त्र आत्मिक शक्ति के सामने रखे रह जायेंगे। किसी को मार डालने से उसके विचारों का नाश नहीं होता बल्कि फैलाव और अधिक बढ़ता है। महात्मा ईसा को मार कर ईसाई धर्म समाप्त नहीं हुआ। गांधी जी को मारने से कांग्रेस की जड़ें पाताल को चली गईं, कांग्रेस की डांवांडोल परिस्थिति को बल मिला।

बस यही दशा मेरे मरने के पश्चात् मेरे कार्यालय की भी होगी। यह पत्र मैंने इन्सानियत के नाम पर निकाला है और कोई भी व्यक्ति जिसमें दबे रूप में भी इन्सानियत वर्तमान है वह मुझे नहीं मार सकता; और फिर आज़ाद! वह तो अपना बच्चा है, एक नादान बच्चा, जिसके दूध के दांत भी अभी नहीं टूटने पाये शांता!"

शांता ने यह शब्द घन-गर्जन के समान सुने और देखा कि उसका पांच वर्ष पुराना रमेश बाबू अपनी महानता में कितना आगे बढ़ गया है? कितना ज़बरदस्त आत्म विश्वास था रमेश बाबू में। शांता एक क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी, "आज़ाद का मैं सात दिन से बराबर रात्रि भर पीछा कर रही हूँ..."

"और मैं तुम दोनों को घूमते देखता हूँ परन्तु पहिचान नहीं पाया था ।" मुस्कुरा कर रमेश बाबू ने कहा और शांता का सिर मेज़ पर लग गया। रमेश बाबू ने प्यार भरे अपने दोनों हाथ शांता के सिर पर रख दिये और फिर धीरे से शांता की ठोडी दो उंगलियां से ऊपर उठा कर कहा, "शांता! तुम्हारा रमेश जब आज तक नहीं मर सका तो इन कीड़ों में इतनी सामर्थ्य कहाँ जो उसे मार सकें। इन्हें तो मैं अपने हाथों का खिलौना समझता हूँ। यदि विश्वास न हो तो मैं चल सकता हूँ तुम्हारे साथ अकेला उनके निवासस्थान पर ।"

शांता को रमेश बाबू पर विश्वास न होता यह भला किस प्रकार सम्भव था, परन्तु हा आज़ाद पर से अब उसका विश्वास उठ चुका था। हो सकता है कमला के पीछे पागल बना हुआ आज़ाद, जो शांता को भूल सकता है, वह रमेश बाबू, को भी भूल चुका हो। शांता डरी कि कहीं उसने भूल तो नहीं की है रमेश बाबू को आज़ाद का इस प्रकार ज्ञान कराकर परन्तु अन्त में मन ने यही कहा, "नहीं सब टीक ही है जो कुछ हुआ ।"

शांता ने कहना प्रारम्भ किया, "कमला बड़ी ही दुष्ट लड़की है रमेश बाबू-वह इतनी नटखट है कि मैं उसे प्यार करने लगी हूँ। परन्तु कुछ दिन से पता नहीं क्यों उसके मस्तिष्क पर कुछ पागलपन का सा प्रभाव मैं देख रही हूँ। उसकी दशा अवश्य ख़राब हो जायेगी। वह जीवन में जितनी भी गम्भीर बनती जा रही है मैं उसे उतनी ही उपहास की पात्र मानती जा रही हूँ और मुझे यही डर है कि कहीं वह इसी गर्मी में पागल न हो जाये ।" शांता सरल स्वभाव से बोली।

"तो तुम्हारी दया की पात्र कमला भी है।" रमेश बाबू ने पूछा और शांता के जीवन की विशालता की मन ही मन अनेकों बार सराहना की। रमेश बाबू! सोचने लगे कि "वाह यह भी नारी का कितना सुन्दर स्वरूप है? इस नारी के लिये संसार में सभी अपने हैं और सबके लिये दया और हृदय में स्थान है। कितना व्यापक प्रेम है इसका कि जिसमें पराया कोई है ही नहीं।"

"एक दिन कमला ने मुझे दुतकार दिया अपने द्वार पर रमेश बाबू! मैंने उस दिन समझ लिया कि आज यह वास्तव में पागल हो गई है क्योंकि उस दिन उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा था कि वह यह पहिचान सके कि वह किससे बातें कर रही है? झूठ नहीं कहूँगी रमेश बाबू! कि वह मेरा इतना सम्मान करती थी जितना शायद उसने कभी अपनी मां का भी न किया हो परन्तु उस दिन मुझे दुत्कार दिया। मैं चुपचाप चली आई परन्तु उसका स्नेह ज्यों का त्यों मेरे हृदय

मे वर्तमान है। उस बावली छोकरी को भी कोई औषधि आप ही दे सकते हैं रमेश बाबू ! मैं तो हार चुकी हूँ उसे समझा-समझा कर।" शांता बोली।

रमेश बाबू की समझ काम नहीं कर रही थी इसलिये उन्होंने इस समय इस विषय को स्थगित करने के लिये कहा और विचारने के लिये एक लम्बा विराम लगा दिया। बातें समाप्त हो ही रही थीं कि रमा कुछ फल लेकर सामने खड़ी दिखलाई दी।

"अरे यह क्या ?" शांता ने रमा से कहा, "तुम यह सब भला क्यों ले आई ? यहां क्या कोई बच्चा है जो इन्हें खायेगा ? छोटी शांता है सो वह स्कूल के होस्टल में ही रहती है।"

"अरे ! यह छोटी शांता कौन है शांता ! तुमने यह रहस्य तो बतलाया ही नहीं।" रमेश बाबू ने पूछा।

"यह आज़ाद भय्या की दी हुई निशानी है रमेश बाबू ! लाहोर में उन्होंने सौंपी थी कि तुम हिन्दुस्तान चली जाओ मैं सब खर्चा भेजता रहूँगा ! यह भी मेरी ही तरह एक अनाथ कन्या है जिसे उस लाहोर के हत्याकांड से आज़ाद भय्या ने बचाया था ?" शान्ता बोली।

"समझा !" रमेश बाबू ने कहा, "तो आज़ाद का यह रूप देहली में ही आकर बना। यहां आते ही यह स्टेशन से कमला के पल्ले पड़ गया। कमला इसे अपने होम में ले गई और इस नाटकीय ढंग से उसके सामने प्रकट हुई कि उसने उसे देवि समझकर पूजना प्रारम्भ कर दिया। पथभ्रष्ट पथिक को एक सहारा मिल गया परन्तु मिल गया ग़लत मार्ग का, यही खेद रहा। योग्यता और वीरता आज़ाद में पर्याप्त थी, ही, पार्टी में जान आगई। परन्तु यह सब कुछ बुरा ही हुआ शांता।" रमेश बाबू बोले।

"जो कुछ भी हुआ वह सब हुआ परिस्थितियों से टकराकर ही। टक्कर खाकर किसी का रास्ता क्या बनता है यह पहिले से कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता। यही दशा आज़ाद भय्या की भी हो सकती है। पाकिस्तान इन्हें छोड़ना पड़ा इस अपराध में कि इन्होंने दो मुसलमानों को मार कर दो हिन्दू लड़कियों को बचाया था। उसी व्यक्ति का आज वारंट है इस अपराध में कि वह कॉम्यूनिस्ट है और उपद्रवकारी बातें फैलाता है। शहर का शांतिपूर्ण वातावरण दूषित करता है।" शान्ता ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

रमेश बाबू भी कांग्रेस सरकार से मत-भेद रखते थे परन्तु वह मत-भेद सुधारात्मक होता था केवल छीछालेदर करने या बुरा भला कहने मात्र के लिये

नहीं। रमेश बाबू एक पत्रकार हैं और पत्रकार के नाते सब कुछ देखते और अध्ययन करते हैं परन्तु आज़ाद का जीवन तो उस सांचे में नहीं ढला। वह तो सिपाही है, हुक्म चाहता है। विचारने के लिये उसके पास मस्तिष्क नहीं।

रमा सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गई और उसने पंखे का रुख अपनी तरफ़ करते हुआ कहा, "आपके सामने तो मैं भी बच्ची ही हूँ। कहिये नहीं हूँ क्या? फिर इन फलों को आपके द्वारा दिये जाने पर मैं भला क्यों नहीं खा सकती शांता बहिन?" मुस्कुराकर रमा कह रही थी।

रमा की इस बात पर शांता और रमेश बाबू दोनों ही मुस्कुरा दिये। इसके पश्चात् रमा ने चाय बनाई और तीनों ने आनंद पूर्वक पी। चाय पर और कुछ इधर-उधर की गप्पें चलती रहीं और फिर रशीदा तथा अमरनाथ जी की आपस की नोकझोंकों का सिल-सिला शुरू हो गया। शांता बोली, "मैंने सुना है कि आजकल रशीदा बहिन अमरनाथ जी से बहुत नाराज़ हैं।"

"जी हां" रमा ने मुस्कुरा कर कहा, "लेकिन मियाँ बीवी का भी क्या झगड़ा, आज हुआ कल सफ़ा। नहीं तो भला गाड़ी कैसे चले?"

"परन्तु मैंने सुना है कि इस बार बोल-चाल–हड़ताल को हुए पांच दिन हो गये हैं।" शान्ता ने पूछा।

"जी हां" गम्भीरता पूर्वक रमा ने कहा, "यही बात है। अब मैं समझती हूँ कि रशीदा पर भी कुछ-कुछ कॉम्यूनिस्टों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है।"

"और अमरनाथ जी पर?" रमेश बाबू ने पूछा।

"उनके विषय में आपको बतलाना होगा।" रमा ने उत्तर दिया।

"मेरा विचार है कि वह अब ज्ञानी बनते जा रहे हैं, दुनियां से दूर, संसार के परे।" रमेश बाबू बोले।

"यही बात है। वह एक हीरे की क़द्र नहीं कर सके?" रमा बोली।

"या यों कहो कि हीरा ग़लत हाथों में जा पड़ा।" रमेश बाबू बोले।

"तब क्या आप रशीदा के हाथों को ग़लत बतला रहे हैं?" रमा ने पूछा।

"नहीं रमा! तुम नहीं जान पाई कि यह दोनों ही हीरे हैं। अमरनाथ जी के साथ विवाह करने के लिये एक देहाती सीदी-सादी लड़की की आवश्यकता थी जो खाना बना कर खिला दे और बस फिर अमरनाथ जी को विचार करने के लिये छोड़ देती। धनकी इच्छा रखने वाली स्त्री भी इनसे मेल नहीं खाती। फिर रही रशीदा की बात उसके लिये चाहिये था आज़ाद जैसा एक अपटुडेट नौजवान

जो हर समय हवाई घोड़े पर सवार रहे। दोनों हीरे हैं परन्तु एकदम ग़लत स्थान पर जीवन में फ़िट हो गये हैं।" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा ?

रमा चुप थी और शांता ने कुछ बोलना नहीं चाहा। जब रशीदा और आज़ाद के जीवनों पर शांता ने दृष्टि डाली तो उसे एक वास्तविक जीवन के सुखमय समन्वय की भावना मिली और मन कह उठा कि हां अवश्य यदि आज़ाद और रशीदा का विवाह हो गया होता तो एक आदर्श जोड़ा बनता। कितना मेल खाता उन दोनों का स्वभाव ?

तीनों ने बड़े प्रेम से चाय पी और फिर रमा तथा रमेश बाबू वहां से विदा हुए। शांता ने दूसरे दिन संध्या को पांच बजे रमेश बाबू के यहां आने का वचन दिया।

पगली कमला

(३३)

कमला की दशा दिन प्रतिदिन ख़राब होती जा रही थी। उसकी शारीरिक का दम घुटने लगा था परन्तु वह थी अटल अपने विचारों पर। उसे विश्वास था कि हो सकता है उसे इस समय अपने उद्देश्य में सफलता न मिल सके; क्यों कि परिस्थितियां इस समय स्पष्ट होती जा रही थीं, परन्तु एक न एक दिन वह समय अवश्य आयेगा जब भारत के कोने-कोने में कॉम्यूनिज्म छा जायेगा। हो सकता है कि उसने जो कुछ भी किया हो वह समय से पूर्व हो और यही कारण हो उसकी असफलता का, परन्तु जन-साधारण की अंक में पलते हुए कॉम्यूनिज्म को वह स्पष्ट देख रही थी।

कमला के जीवन में संतोष के लिये कोई स्थान नहीं, कल के लिये कोई स्थान नहीं, अकर्मण्यता के लिये कोई स्थान नहीं और अंत में भय के लिये कोई स्थान नहीं। यह थी एक निर्भीक बालिका जिसका बचपन चांचल्य में व्यतीत हुआ, परन्तु इस अवस्था अर्थात् यौवन-काल में उसने संसारभर के मज़दूरों का दर्द अपने दिल में छुपा लिया था ! छोटा सा दिल, भार इतना बड़ा, साहस प्रशंसनीय अवश्य है परन्तु बोझा अधिक होने के कारण सफलता के लिये कम स्थान था।

कमला और आज़ाद आजकल सारा-सारा दिन एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं परन्तु कभी-कभी तमाम दिन कोई बात नहीं होती। आज़ाद कमला को हर प्रकार का आश्वासन देता है कि वह अपने कार्य में एक न दिन अवश्य सफल

होगा परन्तु कमला के चित्त को शांति नहीं मिलती। एक न दिन जब कमला को आज़ाद ने अधिक दुखी देखा तो वह बोला, "अच्छा कमला! मैं अभी इसी समय दिन में जाता हूँ और सीधा जाकर उस पाजी का काम तमाम कर दूंगा जिसने मेरी कमला की यह दशा कर दी है। तुम खड़ी हो और चाय बनाने की तय्यारी करो। बस तुम्हारे हाथ का एक कप चाय पीकर मैं आज तुमसे अंतिम विदा लूंगा।" और इतना कहकर आज़ाद ने कमला का हाथ अपने हाथों में लेकर उसे खड़ा करने का प्रयत्न किया।

कमला पागल की तरह आज़ाद से लिपट गई और अस्पष्ट से शब्दों में बोली, "नहीं! नहीं! इस समय नहीं। मैं इस समय आपको नहीं जाने दूंगी। आप देख रहे हैं कि मैं पागल हो चली हुँ। मुझे अपनी सुधि कभी-कभी घंटा तक नहीं रहती। मैं स्वप्न में देखा करती हूँ कि भारत भी कैसा सुन्दर रूस बन गया है? यहाँ की अब हर चीज़ ताज़ा है, किसी में गली-सड़ी बदबू नहीं आती, हर वस्तु अपनी है, सरकार अपनी है, बच्चे अपने हैं, देश के हैं, राष्ट्र के हैं, राष्ट्र अपना है। राष्ट्र अब पत्थर के स्टैचू के समान नहीं है बल्कि अधिकार पूर्ण है। समाज मे कोई बड़ा या छोटा नहीं, सब बराबर हैं। सब काम करते हैं और पेट भर कर अच्छा खाना खाते हैं। सब एक साथ बैठ कर एक मेज़ पर खाते हैं। जैसा होम मैंने तैय्यार किया था उसी प्रकार के होम हिन्दुस्तान के हर शहर और हर गाँव में बन गये हैं, और वर्तमान घरों का तरीक़ा ही बदल गया है। मैं वास्तव में पागल हो गई हूँ आज़ाद बाबू! आप मुझे छोड़ कर मत जाना।" कमला कहती गई।

आज पहिली बार यह कमज़ोरी की बात, जाने या अनजाने रूप में, कमला के मुख से निकली। आज़ाद समझ गया था कि यह पागल हो चुकी है और अब वह क्या करे, यह स्वयं उसी की समझ में नहीं आ रहा था। किसी भी वस्तु को विचारना आज़ाद का काम नहीं था। वह केवल कर सकता था परन्तु आज कराने वाले की भी दशा बदल चुकी थी।

आज़ाद चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया और उसे कुछ समझ में न आया कि वह क्या करे? बहुत देर मौन रहने के पश्चात् कमला ने फिर कहना शुरू किया "आज़ाद बाबू! समय ने साथ नहीं दिया, परिस्थितियां विपरीत होती चली गईं। भारत की जनता अभी कॉम्यूनिस्ट-विचारों को भली प्रकार नहीं समझती। तुम में भी समझने की शक्ति कम है और विकास के लिये सुविधायें भी उपलब्ध नहीं

हैं। मैं इसे अपनी हार नहीं मान सकती और न अपने उद्देश्य की ही हार मानती हूँ। मेरा उद्देश्य अटल है, अविचल है। संसार को कॉम्यूनिस्ट बनना होगा एक दिन। एक दिन वह अवश्य आयेगा जब लाल झंडे पर हँसिया और हथौड़ा दिखलाई देगा। समस्त संसार में एक राज्य होगा, एक सत्ता होगी, एक शिक्षा होगी, एक वाद होगा और वह होगा कॉम्यूनिज्म।" कहता कहती कमला चुप हो गई।

"अवश्य होगा" आज़ाद ने उसी गम्भीरता के साथ कहा। "पूंजीवाद का सर्वनाश होगा। मज़दूर की सत्ता होगी और उसी का अधिकार होगा राष्ट्र का सब शक्तियों पर। मज़दूर का पथ प्रदर्शक मज़दूर होगा, मज़दूर का शोषक नहीं, सरमायेदार नहीं। धन के बल से मानव नहीं खरीदा जा सकेगा। धन से खरीदे जाने वाले व्यक्तियों के लिये राष्ट्र में कोई स्थान नहीं होगा। उन्हें गोली से उड़वा दिया जायेगा।" दृढ़ता पूर्वक आज़ाद बोला।

"एक्सीलैन्ट, बहुत खूब, आज़ाद बाबू बहुत खूब!" उछल कर कमला ने कहा, "बस यही तो मैं कहना चाहती थी। मेरा विश्वास अटल है। पूंजी पूंजी पतियों के हाथों में से जिस प्रकार भी हो सके छीन लेनी चाहिये। वह उस थाती को संभालने के योग्य नहीं। धरोहर वह संभाल सकता है जिसके मन में ईमानदारी, हो बेईमान सरमायेदार नहीं। वह मज़दूर का रक्त चूसना चाहता है अपने धन की पिचकारी लगाकर। अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, असम्भव है। यह क्रांति का युग है। इस देश में भी क्रांति होकर रहेगी।

"गत महायुद्ध का प्रभाव अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है। मज़दूर की मांगें ज्यों की त्यों अटल हैं। वह कम नहीं हो सकतीं। बेरोज़गारी फैलती जा रही है, काम की कमी है, पैसा देखने को भी नहीं रहा। आज भारत की परिस्थिति बहुत गम्भीर बन चुकी है आज़ाद बाबू! माल है, परन्तु उसका मूल्य देने को पैसा, नहीं। ऐसी दशा में आप जानते हैं क्या होगा? मूल्य न मिलने पर माल मज़दूरों का हो जायेगा स्वयँ अपने आप समय अब दूर नहीं रहा है कि जब मिलवाले कहेंगे कि हम मिल नहीं चला सकते, हमारे पास पैसा नहीं है। मज़दूर कहेंगे हम चला सकते हैं, हमें पैसा नहीं चाहिये। हम राष्ट्र का कारखाना बन्द नहीं होने देंगे, तुम दूर हटो, यह कारखाना राष्ट्र का है और इसे बन्द करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। चलाओ या चलाने दो। मज़दूरी बढ़ जाने पर मिल चलाना सरमायेदार के बूते बात नहीं रहेगी और अन्त में उसे चलायेगा मज़दूर।

यह दिन भारत के कोने-कोने में आ चुका है, मैं जानती हूँ, परन्तु कुछ समय लगेगा इस ज्वाला को प्रज्वलित होने में।"

आज़ाद पूर्ण रूप से सहमत था कमला के विचारों से। आज़ाद क्या है इसे समझना अब अधिक बाक़ी नहीं रहा परन्तु इतना अवश्य है कि सैनिक होने के नाते उसके जीवन के कुछ भावुक अंग अधिक प्रस्फुटित नहीं हो पाये। आज़ाद के हृदय में भावुकता की कमी नहीं थी। वह कमला को प्रेम करता है और अन्य भी किसी सुन्दर लड़की को कर सकता है यदि वह उसके जीवन में आ जाये। औरत आज़ाद के जीवन की एक बड़ी कमज़ोरी है जो उसे खींच कर कहीं भी ले जा सकती है, जिसके लिये आज़ाद सब प्रकार का बलिदान दे सकता है।

शांता के लाहौर से चले आने के पश्चात् आज़ाद का मन नहीं लगता था वहां, उसका कारण केवल वहाँ का वातावतण ही नहीं था वरना शांता का अभाव भी उसका प्रधान कारण था।

आज़ाद ने शांता को दिल से प्रेम किया था। भाई वह उसे कहती है और कहती थी परन्तु यदि अवसर आ सकता तो आज़ाद उसे अपनी प्रेमिका के रूप में भी लेने के लिये तय्यार हो जाता। भारत में आने पर कमला ने वह कर्तव्य और प्रेम का जाल आज़ाद पर बिछाया कि वह एक प्रकार से शांता को ही क्या दुनिया को भूल गया। आज़ाद के सामने कमला ने वह दुनिया बसा दी कि जिसकी चकाचौंक में उसे अपना भी ध्यान न रहा कि वह कहां पर है और क्या कर रहा? वह जो कुछ भी करता था कमला उसकी आंखों के सामने रहती थी। जिस दिन से वह दिल्ली आया था उसने कमला का ही रूप देखा था और कुछ देखा ही नहीं; शांता देखी परन्तु वह उपलब्ध नहीं थी।

आज़ाद का जीवन एक धागे के समान कमला की सूई के नकवे से होकर निकलता था। उसमें अपनापन नहीं रह गया था परन्तु जब से कमला के मस्तिष्क की दशा बिगड़ने लगी थी आज़ाद भी अपने पुराने जीवन की तरफ़ कभी-कभी दृष्टि डाल लेता था। वैसे तो पिछला जीवन काफ़ी भूल में पड़ चुका था और परिस्थितियां भी उसमें लौटने के बिलकुल प्रतिकूल थीं परन्तु फिर भी कभी-कभी उसकी छाया आकर आज़ाद के नेत्रों में घूम जाती थी।

आज़ाद अब एक पर कटे हुए पक्षी की भांति था। 'इन्सान' कार्यालय के संचालक का पीछा उसने नहीं छोड़ा था। उसका विचार था कि यदि वह उसे समाप्त कर देगा तो शायद कमला की दशा फि सुधर जायेगी। वह नित्य रात्रि

में उधर जाता था परन्तु वहां पर पहरा इतना व्यवस्थित रहता था कि अन्दर घुसना उसके लिये एकदम असम्भव हो जाता था।

सरदार करमसिंह कमला के प्रति आज भी वफ़ादार था इस माने में कि वह रोज़ नियम पूर्वक दो डबल रोटियां लाकर यहां दे जाता था। कुछ दिन परेशान करके करमसिंह को पुलिस ने छोड़ दिया था परन्तु करमसिंह निकला काफ़ी मजबूत। उसने पुलिस को अपना कोई राज़ नहीं दिया और न कमला तथा आज़ाद का पता ही पुलिस को मिल सका। रामू और मांगे भी छुप-छुप कर कभी आते थे; पुलिस की नज़रों से बच-बच कर। उन्होंने अब एक और प्रेस में नौकरी करली थी। कारीगर आदमी थे काम की उनके लिये कमी नहीं थी। रामू और मांगे एक आदमी के राशन से अपना दोनों का गुजारा करते थे और एक का राशन लाकर कमला को दे जाते थे। यह वास्तव में अपना कर्तव्य निभाने वाले सच्चे मज़दूर थे। मज़दूर करमसिंह भी था परन्तु उसकी डबलरोटियों में उसकी कमज़ोरी छुपी हुई थी, वही कमज़ोरी जिसके बल पर आज़ाद किसी के प्राण लेने को इस समय उतारू था।

आज़ाद की इस कमज़ोरी को, रमेश बाबू भली प्रकार पहिचानते थे और इसीलिये सन् ४२ के आंदोलन में रमेश बाबू ने शाला को आगे रखकर आज़ाद से वह कार्य कराये कि जिन्हें सुनकर भी आज रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रमेश बाबू आज़ाद की नस-नस को पहिचानते थे और वही नस आज़ाद की कमला ने पहिचन ली थी। यही कारण था कि कमला आज़ाद से आज तक काम लेती रही और सफलता पूर्वक। वह आज़ाद को जो कुछ भी बनाना चाहती थी उसने बना लिया था।

आज़ाद कमला से खेल रहा था और कमला आज़ाद से। यह जीवन का खेल था दोनों के लिये परन्तु मार्ग रुक जाने के कारण वह खेल भी समाप्त हो गया और जीवन भार स्वरूप प्रतीत होने लगा। कुछ करने वाले व्यक्ति के लिये काम चाहिये। आज़ाद काम के बिना नहीं रह सकता था। इस प्रकार व्यर्थ पड़े-पड़े जीवन खोना उसे अच्छा नहीं लगता था और कमला में अब वह सामर्थ्य नहीं थी कि वह आज़ाद का पथ-प्रदर्शन कर सके।

आज़ाद राजनीति का कीड़ा बन चुका था। वह दुनिया के और सब कामों के लिये अपूर्ण और अयोग्य था। उसका राजनीतिक क्षेत्र अब अवरुद्ध था। फिर वह आख़िर करे क्या? क्या दिन भर बैठा-बैठा उस पगली कमला के बालों में

ऊँगलियाँ डाल कर सहलाया करे और कभी-कभी सनक में आकर जो वह व्याख्यान देती है उन्हें कानों में उँगलियां डाल कर सुना करे।

कमरे की बन्द क़ैद से पंछी उड़ने के लिये पर फड़फड़ाने लगा परन्तु उसका तो पुलिस के पास वारंट था। यदि इधर-उधर घूमता मिल गया तो पुलिस उसे हवालात में बन्द कर देगी और फिर कमला का क्या होगा?

कभी-कभी आज़ाद को कमला के ऊपर बहुत क्रोध आता और वह यह सोचने लगता कि जाकर स्वयँ पुलिस को सूचना दे डाले कि 'हम दोनों यहां पर हैं पकड़ कर ले जाओ' परन्तु फिर पर कटे पक्षी की तरह तड़प कर रह जाता था। कभी-कभी आज़ाद यह भी सोचता था कि कमला ने व्यर्थ के लिये उसे कॉम्यूनिज्म के जंजाल में फसा दिया। सन् ४२ में तो रमेश बाबू ने रगड़ा और चैन से नहीं बैठने दिया। कांग्रेस का राज्य हुआ तो हमें रास्ता दिखलाने के लिये मिल गई यह कमला देवी और वह महाशय रमेशबाबू रफ़ूचक्कर होगये। कमला ने मुझे कॉम्यूनिस्ट बना लिया और कॉम्यूनिस्ट क्या बना लिया बल्कि यों कहो कि बिना पैसे का अपना ज़र ख़रीद गुलाम बना लिया। दिन भर बैठा इनकी ख़िदमत किया करूं और रात को जाकर "इन्सान-कार्यालय" का चक्कर लगा आऊं। आज आठ दिन हो गये इसी कार्यक्रम को।

कभी-कभी आज़ाद को जब अधिक क्रोध आता तो वह यह भी सोचने लगता कि चलो क्या है? अब तो कॉम्यूनिस्ट बन ही गये। यदि उस मूजी को मौत के घाट उतार कर भी बच गया तो फिर मैं क्रांतिकारी कॉम्यूनिस्ट के नाम से पुकारा जाऊंगा। मेरा भय चारों ओर छा जायेगा और फिर किसी भी कारख़ाने या मिल को बन्द करा देना मेरे लिये चुटकियों का काम होगा। मिल वाले मुझसे घबराने लगेंगे और मेरा आतंक फैल जायेगा। उस परिस्थिति में कमला फिर चहचहाती हुई बुलबुल की तरह फुदक-फुदक कर मेरे सामने आयेगी और जीवन का यह रूखापन फिर समाप्त हो जायेगा।

दिन भर आज़ाद इसी उत्साह को लिये कमला की सेवा में संलग्न रहता और रात्रि को अपना पिस्तौल लेकर 'इन्सान' कार्यालय की तरफ़ चल देता।

अपनी अपनी राह पर

(३४)

शांता आज प्रथम बार 'इन्सान-कार्यालय' में आ रही थी इसलिये चारों ओर सफ़ाई कराई गई। सड़कें साफ़ हुईं। कार भी आज धुलवा कर रशीदा ने साफ़,

कराई। गमलों में पानी दिलवाया जा रहा था और कोठी के सामने वाले लॉन में ही बैठने के लिये कुर्सियाँ डलवाई गईं।

आज शांता ठीक समय पर कालेज से चली आई और कुछ काम जो रह भी गया था उसे मेज़ की दराज़ में दूसरे दिन करने के लिये बन्द कर दिया। गर्मी का मौसम था इसलिये अपने मकान पर आकर पहिले स्नान किया और फिर अपनी वही खद्दर की सुफ़ैद साड़ी बांधी जिसमें कन्नी भी नहीं थी; परन्तु कितनी सुन्दर शोभा देती थी वह शांता के शरीर पर—सौंदर्य को बनावट की आवश्यकता नहीं, वह तो यों ही प्रस्फुटित होता था। सुफ़ैद ही ब्लाउज़ पहिना। सिर में सीधी मांग थी और माथे पर छोटी सी गोल बिंदिया—साधारण परन्तु विशेष आकर्षक। पैरों में वही, पुराने नहीं आज नये, कालेज टाइम में ही कॉलेज के चपरासी को भेज कर मँगाये गये; चपल सुफ़ैद साबर के थे।

शांता की प्रतीक्षा में रमेश बाबू पहिले से ही लॉन की एक कुर्सी पर आकर बैठ गये थे और रमा रसोईये के पास कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करा रही थी। रशीदा का विचार था कि शांता बहिन किसी तांगे पर आयेंगी, सो उसकी दृष्टि हर उधर से गुज़रने वाले ताँगे पर पड़कर निराश हो जाती थी। जिस समय घड़ी ने पाँच बजाये और रमेश बाबू ने अपनी क़लाई की घड़ी पर दृष्टि डालकर दरवाज़े की तरफ़ देखा तो शांता को पैदल अन्दर आते हुए पाया। शांता को देखकर रमेश बाबू खड़े होकर स्वागत के लिये आगे बढ़े और एक कमरे में से अमरनाथ जी भी, जो कि न जाने कब से खिड़की के रास्ते द्वार पर दृष्टि फैलाये बैठे थे, बाहर निकल आये। रशीदा भी सामने आ गई और तीनों शांता को लिवा कर लॉन में ले आये।

अमरनाथ जी और रमेश बाबू कुर्सी पर बैठ गये। रशीदा खड़ी रही और शांता कुछ इधर-उधर देखती रही।

"आप की आंखें जिसे खोजना चाहती हैं वह यहीं हैं। आज तुम्हारे आने की उन्हें इतनी प्रसन्नता है कि सुबह से यह समय आ गया तय्यारी करते हुए। उन्होंने पता नहीं क्या समझा है कि शांता जाने क्या-क्या खा जायगी?"

"बड़ी पगली है रमा।" शांता ने मुस्कुरा कर बैठते हुए कहा। परन्तु बैठते ही फिर खड़ी होकर रशीदा से बोली, "चलो ज़रा मैं भी तो देखूं वह क्या कर रही है?"

रशीदा और शांता दोनों अन्दर को चल दीं रमेश बाबू तथा अमरनाथ जी को वहीं पर छोड़कर। रशीदा ने सम्पूर्ण कार्यालय शांता जीजी को दिखलाना

प्रारम्भ किया। मशीनें भी दिखलाईं और अन्त में वह रमेश बाबू के कमरे में शांता को ले गई। कमरा बिलकुल सादा था इस समय। उसके अन्दर जो सोफ़े पहिले पड़े रहते थे उन्हें भी रमेश बाबू ने निकलवा कर साधारण बैंत की कुर्सियाँ डलवा दी थीं और अपने लिये वही तख्त था लकड़ी का, सख्त, बिलकुल सख्त, जिस पर एक दरी और ऊपर खद्दर की सुफ़ैद चादर के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

शांता ने देखा कि तख्त के ऊपर दीवार पर एक चित्र लगा हुआ था और वह चित्र शांता का अपना चित्र था। शांता एक क्षण के लिये खड़ी रह गई। शांता और चुप-चाप रशीदा खड़े इस चित्र को देख रहे थे। शांता का समस्त शरीर रोमाञ्चित हो उठा, आंखें बन्द हो गईं और उनमें छा गई रमेश बाबू की मधुर मूर्ति। इसी समय उसने अनुभव किया कि किसी ने पीछे से आकर उसके दोनों कंधों पर अपने दोनों प्यार भरे हाथ रख कर कहा, "केवल यही तो मैं पाकिस्तान से बचा कर लासका था शांता! मेरे उजड़े हुए जीवन की यही सम्पत्ति मेरे पास शेष बची थी।" शांता प्यार में चुप चाप खड़ी थी कि अचानक रमाके आने से उसका स्वप्न भंग हो गया।

"सम्पूर्ण कोठी में आपको केवल अपना ही चित्र देखने योग्य वस्तु मिली शांता जीजी!" बड़ा ही नुकीला मज़ाक करते हुए रमा ने मुस्कुराकर कहा।

शांता लजाई नहीं प्यार भरे मीठे शब्दों में कहना प्रारम्भ किया, "रमा! यह चित्र जिस परिस्थिति में खींचा गया था, मुझे आज चित्र देखकर वह समय याद आगया। हम लोग उस दिन चार दिन के भूखे थे। जो कुछ पैसे थे वह इस चित्र पर लगा दिये रमेश बाब ने इसलिये कि हम उस दिन ऐसे कार्य को एक दूसरे से विदा हो रहे थे कि जीवन में फिर मिलने की आशा समाप्त हो चुकी थी। रावी नदी के उस किनारे पर खड़े होकर मैंने यह चित्र रमेश बाबू को दिया था और फिर मैं पानी में कूद गई थी।"

"ऐसा क्यों किया था जीजी?" आश्चर्य से रमा और रशीदा ने पूछा।

"क्योंकि पुलपर पुलिस का कड़ा पहरा था। रमेशबाबू का शहर में किसी रूप में भी घुसना सम्भव नहीं था। एक सूचना हमें अनारकली में एक नियुक्त स्थान पर ले जाती थी। सूचना न पहुँचने पर देश के चार वीर सपूत फाँसी के तख्ते पर झूल सकते थे। रावी अपने पूर्ण बहाव पर थी; बरसात का मौसम था। एक छोटी सी लकड़ी का सहारा लेकर मैं पानी में घुस गई।

"रात्रि का समय था। चारों ओर अंधकार ही अंधकार। प्राणों की आशा छोड़ कर ही मैं पानी में घुसी थी परन्तु ईश्वर की दया से मैं सुबह चार बजे बहुत दूरी पर जाकर लग गई। वहाँ अंधे ा था, मैंने अपने शरीर के वस्त्र उता कर निचोड़े और फिर उन्हें किसी प्रकार हिला-डुला कर अधसुखा करके पहिन लिया और..... ।"

"और क्या बस काम हो गया" रमेश बाबू ने पीछे खड़े हुए कहा।

तीनों ने आश्चर्य के साथ देखा कि पहिली पंक्ति में रशीदा, शांता और रमा जिस संलग्नता के साथ यह सब सुन रहे थे उसी प्रकार पीछे वाली पंक्ति में रमेश बाबू और अमर नाथ जी खड़े थे।

रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शांता के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा "तुम्हारे इस चित्र ने मेरा बहुत साथ दिया है शांता ! मैं सच कहता हूँ कि इस समय मैं तुमसे अधिक तुम्हारे इस चित्र का आभारी हूँ।"

शांता कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कान भरी दृष्टि से उसने एक बार रमेश बाबू के मुख पर देखा और फिर गर्दन झुका ली। शांता के अंग प्रत्यंग से आनंद की आभा झलक उठी। उसका हृदय गद्-गद् हो उठा।

"और हां वह तुम्हारी अंगूठी भी कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। एक दो बार यह मेरे हाथों से जाती रहती परन्तु भाग्य से मिल गई। तुम मेरा जीवन जानती ही हो कि कितना अव्यवस्थित हो जाता है बिना आश्रय के। इसी दशा में मैं मंसूरी चला गया। वहाँ एक दिन सचमुच ही वह खो जाती, सो मैंने उस दिन उसकी रक्षा का भार रमा को सौंप दिया।" रमेश बाबू फिर बोले।

रमा ने अपना हाथ आगे करते हुए कहा, "यही है ना वह अंगूठी जीजी ! मैं इसे बहुत प्यार से रखती हूँ और आशा करती हूँ कि यह आप अब मुझसे वापस नहीं मांगेंगी।"

"वापस माँगने का तो अधिकार भी मेरे पास नहीं है रमा !" प्यार से रमा को बगल में भरते हुए शांता ने कहा, "परन्तु हां इतना मैं अवश्य कर सकती हूँ तुम्हारे लिये कि अधिकारी से सिफ़ारिश कर दूं कि वह तुमसे वापिस न मांगे।"

रमा शांता की आंखों में आंखें डाल कर मुस्कुरा दी और फिर दोनों ने एक साथ रमेश बाबू के मुँह पर देखा परन्तु इस प्रेमालाप का मधुर आनंद-लाभ आज रशीदा और अमरनाथ जी न कर सके क्योंकि आपस में उन दोनों के गाल फूले

हुए थे। इनकी बोल चाल हड़ताल को तुड़वाने का प्रयत्न अभी तक रमेश बाबू ने भी नहीं किया था और हो सकता है कि शायद इसकी गम्भीरता का भी रमेश बाबू ने अनुभव नहीं किया हो परन्तु उन दोनों के मन में यह प्रश्न उठ चुका था कि क्या वास्तव में वह दोनों एक दूसरे के लिये उपयुक्त नहीं है ? रशीदा तर्क द्वारा अपनी उपयुक्तता सिद्ध करके हार चुकी थी और अब अपनी उपयुक्तता का अधिक स्पष्टीकरण करना उसे बुरा मालूम देने लगा था। कभी कभी वह एकांत में बैठ कर बहुत ही दुखी होती थी और सोचती थी कि क्या यह इसी बात का कुपरिणाम है कि उसने भय्या से बिना अनुमति लिये यह सब किया। जो अमरनाथ व्यवहार में एक हीरा था आज की परिस्थिति में पत्थर बन गया था, न उसमें चमक थी और न जीवन। निर्जीव मशीन की तरह वह काम करता था परन्तु काम में कभी कोई अन्तर उसके नहीं आया। जीवन नीरस होने पर भी काम में सरसता स्पष्ट दिखलाई देती थी। अमरनाथ जी की लेखन कला को जंग नहीं लगा था। उसमें वही तीखापन और इधर कुछ दिनों से हड़-ताल के बाद तो उसमें और भी सजीवता आगई थी।

इसके पश्चात् रमेश बाबू ने शांता को अपने पत्र की फ़ाइल दिखलाते हुए कहा "शान्ता यह है मेरी दिल्ली आने के बाद की जमा की पूंजी।"

"यह फ़ाइल मेरे पास भी आपसे कम पूर्ण नहीं हैं।" रमेश बाबू के मुख की तरफ़ देखकर शांता ने कहा "पहिले अंक से लगाकर आज तक जितने भी अङ्क प्रकाशित हुए हैं, सभी सुरक्षित हैं।"

रमेश बाबू का सीना गर्व से कई अंगुल ऊपर को हो गया। शान्ता की सम्मति का वह पहले से ही बहुत मान किया करते थे और सच बात तो यह थी कि किसी भी साधारण वस्तु को व्यर्थ के लिये हाँ हाँ करके सम्मान देना शान्ता को नहीं आता था। किसी का दिल दुखाने वाला प्रश्न उसके सामने नहीं रहता था, जब वह समालोचना-पथ पर उतरती थी। रमेश बाबू के कुछ अङ्कों की भी बहुत कटु आलोचनायें शान्ता ने लिखकर रखी हुई थीं परन्तु अपने को कभी भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न शान्ता ने नहीं किया। वह तो थी रचनात्मक कार्य करने वाली एक जीदार भारत की बालिका। इसीलिये उसने अपना क्षेत्र चुना शिक्षा-विभाग जहां से वह कुछ सुयोग्य बालिकायें भारत को दे सके।

"पूरा फ़ाइल बनाकर भी तुमने कभी उसपर अपने विचार प्रकट नहीं किये शान्ता!" अमरनाथ जी ने उत्सुकता पूर्वक पूछा। अमरनाथ जी ने शान्ता का आज वह रूप देखा जो स्वप्न में में भी नहीं विचारा था।

"आप नहीं जानते कि मैं कभी पत्रों में प्रकाशनार्थ कोई चीज़ भेजना पसंद नहीं करती। इसी लिए आलोचना या समालोचना सब मेरी डायरी में सुरक्षित हैं। बहुत गम्भीरता पूर्वक शान्ता ने कहा।

रमा चुपचाप खड़ी यह सब सुन रही थी। अब उससे और अधिक न रहा गया क्योंकि उसने सुबह से जो परिश्रम किया था उसका मज़ा इस प्रकार की बातों में व्यर्थ के लिए नष्ट हो रहा था। परन्तु इतने दिन के बिछुड़े हुए दो प्रेमियों के भावुकता पूर्ण सम्मिलन में किसी प्रकार की बाधा भी वह उपस्थित नहीं करना चाहती थी। एक ओर को शान्ता का मुँह करके रमेश बाबू की तरफ देखते हुए बोली, "मैंने कहा कि आप लोगों को क्या कुछ मेरे परिश्रम का भी ध्यान है ? चलिये बाहर लॉन में चलिए, अब इस प्रकार की बातें वहीं पर बैठकर होंगी। 'इन्सान' पत्र की समालोचना शान्ता बहन ने क्या लिखी होगी जो मैं और रशीदा बहन बैठकर लिखेंगे।" रमा की बात सुनकर सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े और रमेश बाबू यह कहते हुए कमरे से बाहर लॉन की तरफ़ चल दिये "बहुत अच्छा रमा देवी ! बहुत अच्छा रमा देवी !" और उनके साथ ही साथ सब लॉन (घास का मैदान में पहुँच गये

सब ने आश्चर्य के साथ देखा कि वहां का तो नक्शा ही बदला हुआ था। शान्ता भी इस प्रबन्ध को देखकर दङ्ग रह गई कि रमा उनके साथ ही थी और उनका प्रबन्ध इतनी कुशलता पूर्वक हो रहा था।

"देखा शान्ता !" रमेश बाबू से कहे बिना रहा गया, "यही तो है रमा की ख़ूबी। हमें मालूम भी न हुआ और यहां पर सब प्रबन्ध भी हो चुका ! रमा बहुत ही कुशल है इन कामों में। आज मैं तुम्हें एक बात और बतलाता हूँ शान्ता ! कि रमा हमेशा की ऐसी नहीं थी। जब मैं मन्सूरी में पहुँचा तो उस समय यह बहुत नटखट थीं। एक दिन तो इन्होंने मुझे वह ज़ोर की टक्कर दी कि मैं कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा।" रमेश बाबू कहते जा रहे थे और शान्ता ध्यान पूर्वक बड़ा ही आनन्द लेकर सुन रही थी। रमा कुछ प्रबन्ध कार्य से अन्दर गई हुई थी। "बस उसी दिन मेरी और इनकी प्रथम भेंट हुई। इनकी कोठी मेरे बिलकुल बराबर थी। फिर नित्य का आना जाना प्रारम्भ हो गया। रमा को शौक था, टेनिस खेलने का, बिलियर्ड खेलने का, सिनेमा देखने का, होटलों में जाने का, मित्रों के साथ घूमने का—यह सब शौक मानो इनके मेरे सम्पर्क में आते ही काफूर होते चले गये और रमा ने अपने उन शौकों को

बड़ी ही कुशलता पूर्वक मेरी अपूर्णताओं को पूर्ण करने में लगा दिया। जीवन की व्यवस्था मैंने रमा में देखी और उसमें तुम्हारी व्यवस्था की छाया पाई। सच कहता हूँ शान्ता कि मैंने रमा को शान्ता का रूप देकर जीवन में स्वीकार कर लिया था। यह तुम मेरी क़मज़ोरी समझो या......" कहते कहते रमेश बाबू का गला रुक गया और मुंह में शब्द नहीं आये।

"आपने ठीक ही किया रमेश बाबू !" मुस्कुराते हुए अविचल भाव से शान्ता ने कहा। "रमा वास्तव में इसी योग्य लड़की है और योग्य को सम्मान देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। यदि मेरे जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति आता तो कोई कारण नहीं था कि मैं उसका सम्मान न करती।" और यह कहते हुए शान्ता ने रमेश बाबू की गर्म हथेली अपने हाथ में ले ली। दोनों बराबर कुर्सियों पर बैठे थे। सामने से रमा आती दिखलाई दी। शान्ता ने रमा को देख कर कहा "रमा तुम बहुत बुरी हो। इतनी देर हो गई और तुम अन्दर ही जाकर बैठ गई।"

"ख़ैर मैं बुरी ही सही।" मुस्कुरा कर रमा ने कहा, "परन्तु आप लोग इन चीज़ों को खराब करने पर क्यों तुले हैं ? आपने खाना क्यों नहीं प्रारम्भ किया ?"

"तब क्या यह सब कुछ हम दोनों के ही लिये है ?" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा।

"फिर नहीं तो क्या ? प्रबन्ध सब के लिए है परन्तु खाने के स्थान पृथक् पृथक् हैं।" रमा बोली।

"और तुम्हारा स्थान कहां है" शान्ता ने पूछा।

"आप नहीं जानतीं कि प्रबन्ध कर्त्ता का स्थान कब और कहां होता है शांता बहन ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा।

"यह नहीं होगा। यदि इस प्रकार की बातें करोगी तो मैं चली" कहकर झूठमूठ ही शांता ने उठने का प्रयास किया परन्तु रमा उन्हें बिठलाती हुई बोली, "अच्छा जीजी ! मैं भी बैठती हूँ।" कहकर सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई और उठा कर एक मोटा रसगुल्ला मुंह में रख लिया। उसे खा कर बोली, "लो खाना भी पहिले मैंने ही प्रारंभ कर दिया। अब तो आप लोग अपना अपना व्रत खोलिये।" रमेश बाबू और शांता ने भी मुस्कुराकर खाना प्रारंभ कर दिया। खाने के पश्चात् शान्ता और रमेश बाबू के बीच आज़ाद का प्रसङ्ग छिड़ गया और शान्ता कह उठी, "आपने आज़ाद भय्या के विषय में क्या सोचा रमेश बाबू ?"

"हां ! मैं तो तुमसे कहने को ही था; मैंने आज़ाद का पूरा पता निकाल लिया है। चलो मैं और तुम उसके पास चलते हैं।" बहुत ही साधारणतया रमेश बाबू ने कहा।

"जैसा आप उचित समझें, परन्तु परस्थिति की गम्भीरता पर विचार कर लीजिये।" शान्ता बोली।

"मैं विचार कर चुका।" चलो सब कुशल ही होगा साहस के साथ रमेश बाबू ने कहा और फिर रमा की तरफ़ मुंह करके रमेश बाबू बोले, "अच्छा रमा हम जाते हैं और लौटने में कुछ देर हुई तो चिन्ता न करना।" इतना कह कर शांता और रमेश बाबू दोनों चल दिये। मार्ग में चलते हुए रमेश बाबू बोले, "और हां अपनी शान्ता बहन के लिये भी अपने कमरे में सोने का प्रबन्ध कर रखना।"

"उसकी आप चिन्ता न करें, परन्तु अपने कमरे में या आपके कमरे में ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा और तिरछी नज़र से शांता के मुख पर देख कर मुंह फेर लिया। शान्ता और रमेश बाबू भी मुस्कुरा दिये।

शान्ता और रमेश बाबू जाकर गाड़ी में बैठ गए। रमेश बाबू कार स्वयं चला रहे थे और शान्ता अपने आनन्द के स्वप्नलोक में, रमेश बाबू के पास वाली सीट पर बैठी, विचरण कर रही थी। शान्ता देख रही थी कि उसका जीवन यौवन, उसका आनन्द, उसकी अभिलाषा, उसकी मनोकांक्षा, उसके सपने, सब सजीव होकर उसके सामने आ रहे हैं। तेज़ चलती हुई मोटर में शान्ता के घुंघराले बालों की अलकें इधर उधर को स्वच्छन्दता पूर्वक उड़ रही थीं शांता जीवन का बिछुड़ा हुआ आनन्द लाभ कर रही थी और रमेश बाबू किसी विचार में निमग्न थे। अचानक रमेश बाबू कह उठे शांता, "मैं नहीं समझ सकता था कि मेरा आज़ाद इतना पागल भी हो सकता है।"

"यही मैं भी विचार करती थी परन्तु कमला ने वास्तव में उसे पागल बना दिया है रमेश बाबू ! मैं सच कहती हूँ आपसे कि वह कमाल की लड़की है। बड़े काम की लड़की है। उसके सिर पर यह कॉम्यूनिज्म का जो फ़ितूर सवार हुआ है बस इसने ही उसे ख़राब कर दिया है वरना हीरा लड़की है हीरा। मैं कहती हूँ कि आपकी लाखों में एक भी लड़की कमला जैसी नही मिल सकती।"

"यह बात है।" आश्चर्य से कमला की प्रशंसा सुनकर रमेश बाबू ने कहा।

"बिलकुल यही बात है। वह आपके बहुत काम की लड़की हो सकती है, बशर्ते कि उसके दिमाग़ से कॉम्यूनिज्म का भूत निकल जाये।"

"तुम तो कॉम्यूनिज्म से बहुत चिढ़ती हो शान्ता शायद ।" रमेश बाबू ने शान्ता के मुख पर मुस्कारान भरी दृष्टि डाल कर कहा।

"नहीं ! मैं उनके सिद्धान्तों को उतना बुरा नहीं समझती जितना उनके तरीकों को, जो कि वह अपने सिद्धान्तों को सफल बनाने के लिये प्रयोग करते हैं ! और देशों का मुझे ज्ञान नहीं, पुस्तकों का ज्ञान अपूर्ण रहता है, परन्तु भारत में जो कुछ मैं देख रही हूँ वह मुझे अच्छा नहीं लगता। हुल्लड़बाज़ी और गुंडा गर्दी का नाम तो कॉम्यूनिज्म नहीं कहा जा सकता। केवल हड़ताल कराने से ही तो मज़दूरों का हित नहीं हो सकता, विपक्षी का गला घोंट कर ही उसकी आवाज़ को बन्द नहीं किया जा सकता, और भी तो अच्छे मार्ग खोजे जा सकते हैं। हो सकता है रूस में यह मार्ग सफल रहा हो परन्तु भारत में भी यह सफल ही होगा इसके विषय में तो सन्देह है।" शान्ता गम्भीरता पूर्वक यह कह रही थी कि गाड़ी एक मोड़ पर मुड़कर सीधे हाथ वाली गली में घुस गई और केवल पांच द्वार आगे बढ़ कर रुक गई।

"क्यों क्या यहीं आना था हमें ?" शान्ता ने पूछा।

"हां" रमेश बाबू ने गम्भीरता पूर्वक कहा और फिर बोले, "तुम यहीं गाड़ी में बैठी रहो शांता !" और स्वयं कार का दरवाज़ा खोलकर सड़क पर उतर पड़े। शान्ता रुक न सकी और साथ ही साथ दूसरी ओर का द्वार खोलते हुए बोली, "नहीं रमेश बाबू मैं आपके साथ अवश्य चलूँगी, अकेला आपको नहीं जाने दूंगी।" और साथ साथ हो ली।

रमेश बाबू ने आगे बढ़ कर द्वार खटखटाया और एक क्षण पश्चात् एक व्यक्ति ने आकर द्वार खोला। द्वार खोलने वाला व्यक्ति सरदार करमसिंह था। वह रमेश बाबू को इस प्रकार वहां देख कर हक्का-बक्का रह गया और उसे इतनी चेतना भी न रही कि वह क्या करे ? एक टक रमेश बाबू का मुँह ताकता रहा मानो उसने कोई रमेश बाबू का बड़ा भारी अपराध किया है और अब इस प्रकार चोर की भांति पकड़े जाने पर उसके पैरों के नीचे की ज़मीन निकली जा रही थी। रमेश बाबू ने अधिक इन्तज़ार नहीं किया और वह दमदमाते हुए अन्दर घुस गये। शांता उनके पीछे-पीछे थी।

वहाँ की दशा बहुत विचित्र थी। आज़ाद एक तरफ़ पड़ा था, शायद बुखार था उसे और कमला एक तरफ़ बैठी थी। दोनों की शक्लें देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि शायद इन दोनों में कुछ खटपट हो गई है। रमेश बाबू ने आगे बढ़कर बहुत स्थिर आवाज़ में कहा "आज़ाद !" और आज़ाद एकदम रमेश बाबू

का शब्द कानों में पड़ते ही उठकर बैठा होगया। आज़ाद को ऐसा लगा कि मानो डूबते का सहारा मिल गया। वह भाग कर रमेश बाबू से लिपट जाना चाहता था परन्तु रमेश बाबू ने कहा, "अभी नहीं आज़ाद ! पहिले तुम्हें अपना कर्तव्य पूरा करना होगा।"

आज़ाद वहीं पर सहम गया। कमला भी यह दृश्य बड़ी उत्सुकता से देख रही थी। फिर रमेश बाबू ने कमला की तरफ़ मुँह किया और उतनी ही गम्भीर आवाज़ में बोले, "कमला देवी ! आपने मुझे नहीं पहिचाना होगा, और न आप पहिचान ही सकती हैं परन्तु मैं आपको पहिचानता हूँ !"

इतना कह कर रमेश बाबू ने अपनी जेब से एक रिवालवर निकाला और उसे आज़ाद और कमला के बीच में फेंकते हुए कहा, "यह लीजिये रिवालवर और जिस काम को करने के लिये आप लोग इतने दिन से परेशान थे उसे कर डालिये। मैं ही हूँ 'इन्सान-कार्यालय' का संचालक 'रमेश' इतना कह कर रमेश बाबू ने अपने कुर्ते के बटन खोल दिये। "गोली मारिये आपके सिद्धांतों की पूर्ति होगी।" गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू एक क़दम आगे बढ़कर बोले।

कमला और आज़ाद ठगे से रह गये। कमला ने इतना बड़ा व्यक्तित्व अभी तक नहीं देखा था इसलिये वह सहम कर अपने ही स्थान पर बैठी रह गई और बैठे-बैठे उसकी आंखें पथराने लगीं। कमला की दशा ख़राब थी। स्वास्थ्य उसका बहुत खराब हो चुका था। वास्तव में वह आधी पागल हो गई थी ! रिवालवर की तरफ़ एक दृष्टि उसने डाली और फिर रमेश बाबू की तरफ़। पीछे शाँता खड़ी थी। उसे कुछ न सूझा और वह चिल्ला कर "शांता बहन !" कहती हुई खड़ी होकर शांता से लिपट गई। शांता ने भी स्नेह से कमला को संभाला और उसके अचेत होकर गिरने से पूर्व ही उसे अंक में भर लिया। आज़ाद "रमेश भय्या" कह कर रमेश बाबू के पैरों से लिपट गया।

यह दृश्य अभी पूरी तरह समाप्त भी न हो पाया था कि अचानक पुलिस ने इस मकान को घेर लिया और कमला तथा आज़ाद दोनों को ही बन्दी बना लिया गया। बन्दी होने में किसी को भी कुछ संकोच होने का प्रश्न नहीं था। आज़ाद ने विदा होते समय कहा, "अच्छा भय्या रमेश ! फिर मिलेंगे, अब चले" और कमला को अचेतन अवस्था में ही पुलिस ले गई। शांता भी कमला के ही साथ चली गई, इसमें पुलिस ने कोई आपत्ति नहीं की।

कमला की दशा ख़राब थी और दिन प्रति दिन ख़राब ही होती जा रही थी।

इसलिये रमेश बाबू की ज़मानत पर उसे मुक्त कर दिया गया। आज़ाद भी ज़मानत पर छूट अवश्य गया परन्तु मुक़दमा उस पर बराबर चलता रहा।

शांता कमला को अपने मकान पर ले गई और वहां कमला की सेवा का भार अमरनाथ जी ने अपने हाथों में ले लिया। सरदार करमसिंह जी भी नियमित रूप से उसे देखने आते थे और दो चार बार उजागरमल जी भी आये परन्तु कमला की दशा में कोई तबदीली नहीं हो रही थी। कमला के घरवालों ने कई बार उसे अपने घर ले जाने का आग्रह किया परन्तु कमला नहीं मानी और वह शांता के ही मकान पर रही।

एक दिन एकांत में जब शांता अपने कॉलेज को गई हुई थी तो कमला ने अमरनाथ जी का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "अमरनाथ जी क्या वास्तव में आप मुझे आज भी उतना ही प्यार करते हैं?" इतना कहकर कमला की आंखों से दो गर्म-गर्म आंसू की बूंदें निकल कर अमरनाथ जी की गोद में गिर पड़ीं।

"प्रेम कहने की बात नहीं कमला! अनुभव करने की वस्तु है। मैंने तुम्हारे मार्ग को ग़लत समझते हुए भी तुमको अपनी नज़रों से नहीं गिराया। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारे सिद्धात को नहीं। व्यक्ति से सिद्धांत बड़ी चीज़ है इसीलिये हम दोनों को अपना-अपना जीवन-पथ बदलना पड़ा। मैं जानता था कि तुम अपनी हठ छोड़ने वाली लड़की नहीं हो इसीलिये मैंने जीवन-नौका को भाग्य के सहारे छोड़कर जीवन को नैराश्य के हाथों में सौंप दिया।" गम्भीरता पूर्वक कमला के बालों में उंगलियां डालकर सहलाते हुए अमरनाथ जी बोले।

"और रशीदा!" कहकर कमला ने प्रश्न सूचक दृष्टि से अमरनाथ जी के मुख पर दृष्टि डाली।

"रशीदा एक योग्य और चतुर लड़की है। उसने अपने को मेरे योग्य साबित करने में कुछ भी उठा नहीं रखा परन्तु मैं उसे प्यार करने का प्रयास करने पर भी उसे प्यार न कर सका। मैंने जीवन में अभिनय करने का प्रयत्न किया परन्तु वह मैं कर न सका और मेरा प्रयत्न असफल रहा।" अमरनाथ जी बोले।

कमला का ढांचा एक बार प्यार से सजीव हो उठा और अमरनाथ जी ने भी फिर कमला को, "मेरी कमला कहकर प्यार से अंक में भर लिया।" आज के पश्चात् कमला का स्वास्थ्य सुधरने लगा। रमेश बाबू ने अमरनाथ जी को एक मास की छुट्टी देकर देहरादून रहने के लिये भेज दिया। उस दिन से कमला ने राजनीति की ओर से गृहस्थ की ओर अपना मन लगाया और एक मास बाद जब वह देहली लौट कर आई तो रमेश बाबू ने देखा कि कमला

में वही चपलता थी जो उन्होंने लक्ष्मी रेस्टोरेन्ट में प्रथम बार देखी थी । वही जीवन था, वही मादकता, जिसकी प्रत्येक थिरकन के सम्मुख सरदार करमसिंह जी और उजागरमल जी अपने भावुक हृदयों को मसोस कर रह जाते थे । राजनीति कमला के लिये कोई घृणा की वस्तु नहीं हो गई थी परन्तु उसका जीवन केवल राजनीति के ही लिये हो ऐसी बात नहीं र॰ ॰ई थी । आज कमला का जीवन था आनंद पूर्वक दुनियाँ को दुनियाँ मान कर जीने के लिये । कमला के विचारों ने अमरनाथ जी की लेखनी को वह तीखापन प्रदान किया कि अमरनाथ जी की लेखनी चमक उठी । जहाँ पहिले केवल रमेश बाबू के ही लेखों के कारण 'इंसान' पत्र की मांग होती थी वहाँ अब अमरनाथ जी के लेखों के वास्ते भी यह पत्र कम संख्या में नहीं बिकता था । कमला के मिल जाने से अमरनाथ जी के लेखों में अपनापन आ गया और पाठकों ने स्पष्ट रूप से देखा कि पत्र दो तीव्र धाराओं में पहिले से भी अधिक सजीवता के बह रहा है ।

रमेश बाबू ने अमरनाथजी की यह प्रगति स्पष्ट रूप से देखी और उन्हें शांता के वह शब्द याद आगये जब उसने कहा था कि—कमला उनके लिये कितने काम की लड़की हो सकती है । रमेश बाबू मान गये कि शांता भी किसी व्यक्तित्व के अध्ययन में अपना विपक्षी नहीं रखती । जो मत किसी व्यक्ति के विषय में शांता ने दे दिया बस अटल है, सत्य है और उसमें कोई ग़लती नहीं हो सकती । अमरनाथ जी के विचारों की प्रगति से रमेश बाबू बहुत संतुष्ट थे परन्तु फिर भी वह सर्वदा ही अमरनाथ जी को सीमा उलंघन करने से रोकते रहते थे और अमरनाथ जी का यह स्वभाव बनता जा रहा था कि यों साधारणतया वह रमेश बाबू के पथ पर चलते थे और इनके कथन का उल्लघन करने में उन्हें कष्ट होता था परन्तु फिर भी कठोर सत्य पर परदा डालना अमरनाथ जी की शक्ति से बाहर की बात थी । अमरनाथ जी अब कभी-कभी रमेश बाबू के मत का खंडन भी कर डालते थे परन्तु रमेश बाबू को कभी उन्होंने क्रुद्ध होते नहीं पाया । रमेशबाबू जब कभी यह समझते कि अमरनाथ जी का यह मत ग़लत है तो हंसकर टाल देते थे, और वह भी समझने पर कि उनका मत गलत है तो निर्विकार रूप से अपनी ग़लती मानने के लिये उद्यत हो जाते थे ।

'इन्सान' पत्र अब बहुत शान के साथ चल रहा था अपनी स्वतंत्र विचार धारा को लेकर । न उसमें कांग्रेस की ग़लतियों पर लीपापोती ही होती थी और न कॉम्यूनिस्टों की ध्वंसात्मक नीति का ही अनुसरण मिलता था । सोशलिस्टों का बच पना भी उसमें नहीं था । वह था भारत की राजधानी से निकलने वाला एक ऐसा

ठोस पत्र जिसका मुख्य उद्देश्य भारत को पार्टीबाजी के बखेड़े में फँसाना न होकर भारत की जनता को एक ठीक और सही मार्ग दिखलाना था। इस पत्र में प्रत्येक ग़लत चीज़ की समुचित आलोचना की जाती थी और इस आलोचना से सरकार भी बच कर निकल जाती हो ऐसी बात नहीं थी। अमरनाथ जी के प्रखर लेखों की भारत में धूम मच गई और पत्र की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

आज़ाद बाब जिन्हें पिछले अभियोगों में छः मास की सज़ा हो गई थी जब लौट कर आये तो वह रमेश बाबू के पैर पकड़ते हुए बोले, "भय्या मुझे माफ़ करना। मैं जो पाप करने जा रहा था वह बिलकुल अज्ञानवश था।"

"मैं जानता हूँ आज़ाद! परन्तु मुझे खेद है कि मैं तुम्हें प्रयत्न करने पर भी जेल जाने से न बचा सका, कमला का मस्तिष्क ठीक न होने के कारण मैं उसे बचाने में सफल हो गया।" यह कहते हुए रमेश बाबू ने आज़ाद को उठा कर छाती से लगा लिया।

"अब मैं भय्या यहां से कहीं नहीं जाऊंगा"। सामने कुर्सी पर बैठते हुए आज़ाद ने कहा।

"जो तुम चाहोगे वही होगा आज़ाद!" गम्भीरता पूर्वक रमेश बाबू बोले, "और मैंने तुम्हारे लिये एक सुन्दर सी दुलहन खोज रखी है।" मुस्कुराकर रमेश बाबू बोले।

आज़ाद ने भी मुस्कुरा कर सिर नीचा कर लिया। रशीदा आज़ाद को पहिले से ही पसंद थी और रशीदा भी पहिले से ही आज़ाद को पसंद कर चुकी थी। रमेश बाबू ने आज़ाद और रशीदा का विवाह आपस में कर दिया।

शांता के पास कॉलेज का काम इतना अधिक था कि वह उसे छोड़कर विवाह का भार सिर पर लेने के लिये उद्यत नहीं थी और रमेश बाबू के ऊपर भी 'इन्सान' का उत्तरदायित्व कम नहीं था। रमा किसी समय भी याद करने पर आने का शांता और रमेश बाबू से वायदा करके अपने अकेले पिता जी की देख भाल के लिये मंसूरी चली गई। रमा के चलते समय शांता और रमेश बाबू दोनों की आंखों में आंसू थे। तीनों व्यक्ति अपनी अपनी राह पर चल दिये।